तुलसी का अन्तर्जगत्

तुलसीदास की अनुभूतियों, आस्थाओं
और काव्यकला का एक नवीन अध्ययन

देवेन्द्र सिंह
सी० एम० पी० डिग्री कालेज,
(प्रयाग विश्वविद्यालय)

प्रस्तावना

जीवन और काव्य, अनुभूति और अभिव्यक्ति में जो सामंजस्य तुलसी की कृतियों मे पाया जाना है वह समस्त साहित्य मे दुर्लभ है। जिस नितनूतन रस और अक्षय आनन्द के गीत वह अपनी रचनाओं मे गाता है उसी की खोज में उसने अपना जीवन बिताया और इस खोज के अतिरिक्त उसके जीवन में न किसी यश कीर्ति की लालसा थी न भौतिक सफलता की महत्वाकांक्षा। उसका जीवन यदि साधन धाम था तो उसका काव्य भी एक साधना थी उस रस, जीवन और आनन्द को काव्य में मूर्तिमान करने की, जिसमें वह आत्मविभोर था। उनकी कृतियों में एक नितनूतन जीवन की जो खोज है, उसकी भावनाओं में जो व्यापकता और गहराई है, उसकी कविता मे जो सहजता, सृजनात्मक अभिव्यक्ति की जो प्रामाणिकता है, उसकी थाह केवल वाह्य विश्लेषण द्वारा—परिस्थितियों, परम्पराओं, प्रवृत्तियों की छानबीन करके नही मिल सकती, उसका कुछ भी आभास पाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम उस दिव्यदर्शन से परिचय प्राप्त करें जो कवि ने पाया है और जिससे उसका अन्तर्जगत् आलोकित है क्योंकि इस दिव्यदर्शन के आलोक में ही उसकी कविता निखरती है। साथ ही साथ हमको यह न भूलना चाहिए कि तुलसी ने अपनी अनुभूतियाँ भावना के स्तर पर प्राप्त की थी, तार्किक पिष्टपेषण के स्तर पर नहीं, और यही कारण है कि उसकी अनुभूतियाँ काव्य के माध्यम के लिए इतनी उपयुक्त हैं और उसके काव्य मे एक नैसर्गिक सहजता है।

प्रस्तुत पुस्तक के 'भाव जगत्' शीर्षक प्रथम खण्ड के सात अध्यायों में हमने उन अनुभूतियों और आस्थाओं की ओर ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की हैं जिनसे परिचय प्राप्त किये बिना हम तुलसी मनमन्दिर के प्रवेशद्वार तक नहीं पहुँच सकते। इन अनुभूतियो और आस्थाओं का उसकी रचनाओ पर गहरा असर है, साथ ही साथ यह अनुभूतियाँ और आस्थाएँ ऐसी भावपूर्ण, मर्मस्पर्शिनी, रससिक्त हैं, उनमे रूप और सौन्दर्य की ऐसी खोज है, उनमे एक ऐसी मानवीयता और आत्मीयता है कि तुलसी काव्य का रस विशेष और सभी काव्यो से गहरा, निराला, मानव मन को अन्तः सुख देने वाला है। पुस्तक के 'काव्य जगत्' शीर्षक दूसरे खण्ड के सात अध्यायों मे हमने कवि की विविध रचनाओ की समीक्षा इस रस विशेष की ओर ध्यान दिलाने के लिए ही की है क्योंकि मेरा विश्वास है कि इस रस मे मानव जीवन को सार्थक और अर्थपूर्ण बनाने का अनुपम गुण है।

—देवन्द्र सिंह

विषय-सूची

खण्ड १

भाव जगत्

पहला अध्याय

एक दिव्य दर्शन और उसकी रूपरेखा

सृजनात्मक साहित्य के स्रोत, तुलसी साहित्य का बीजमंत्र, प्रवेशद्वार, भ्रान्ति मूलक धारणाएँ, एक अनिर्वचनीय अनुभूति, विश्लेषणात्मक आलोचना की विशेषताएं, साधन और साध्य, कवि की खोज, अभिव्यक्ति की समस्या, काव्य के क्षेत्र मे एक अनूठा प्रयोग परम्परायें और प्रतीतियाँ, मानसकार का महासंकल्प, एक शक्ति संचारित वातावरण और उसका आकर्षण। १—१४

दूसरा अध्याय

एक गाँठि कई फेरे

एक विचित्र बात, भारतीय विचार धारा की विशेषता, सत्य अनुभवगम्य है, तुलसी का अपना ढग, तुलसी युग की प्रचलित विचार धाराएं, दार्शनिक दृष्टिकोण और जीवित अनुभूतियां, सगुण निर्गुण चर्चा का रहस्य, नाम और रूप, एक विशद् व्याख्या, दार्शनिक दिग्दर्शन और एक आध्यात्मिक आत्मकथा, परिवर्तनकारी जीवन ज्योति। १५—३५

तीसरा अध्याय

प्रभु मूरति

रूप की खोज, समन्वय या सहज प्रवृत्ति ? केन्द्रीय अनुभव और उपयुक्त कहानी, राम कवन ?, चरित्रचित्रण या प्रभुमूर्तिदर्शन ?, सूक्ष्म अनुभूतियो के सजीव रूप, शिव की चेतावनी, राम तत्व की विस्तृत और विशद् व्याख्या, जो नृप तनय त ब्रह्म किमि ?, सती मोह चर्चा के अर्थसंकेत, कल्पित दीवारें और मुक्ति के द्वार, कवि का वास्तविक उद्देश्य, उसकी पूर्ति के साधन, उन्मुख और विमुख आत्माओं की विशाल चित्रशाला, विविध प्रसङ्गो के अर्थसंकेत, भय और इच्छा रहित जीवन, रामचरणरति का प्रभाव नए मूल्य, नई आस्थायें, सकल सुकृत कर बड़ फल एहू, राम सीय पद सहज सनेहू। प्रभु मूरति के उद्घाटन कर्त्ता भरत, अनन्यता और आत्मसमर्पण से प्रकाशस्तम्भ। ३६—६२

चौथा अध्याय

प्रीतिरीति और संशय, द्वन्द्व, संघर्ष

प्रभुमूर्ति पूरी और प्रत्यक्ष, स्वरूप के उद्घाटन में भक्त और विरोधी समान

रूप से सहायक, जन की विविध श्रेणियाँ और स्थितियाँ, व्यापक सत्ता, संशय-ग्रस्त आत्माएँ उनके आचरण में एक अद्भुत साम्य और मोह निवारण में भी, प्रीति की रीति, अहंकार उन्मूलन, अविरल भक्ति विगत मोह आत्माओं की मनोदशा, प्रीति और प्रतीति सृजनात्मक क्षण, साक्षात्कार की झाँकी, मुनियों का मन, एक अनूठी गली, निशाचरों की परिस्थिति, सत्य की झलकियाँ, प्रेम और घृणा एक सीधा संघर्ष, पशुबल का बाहुल्य, विजय के मूलमंत्र, दो विरोधी दृष्टिकोण और एक स्पष्ट निष्कर्ष, राममय जीवन ।

पाँचवाँ अध्याय

राममय दर्शन

आनन्दमय जीवन की खोज, चरित चर्चा और भक्ति निरूपण का उद्देश्य, सूचियों और परिभाषाओं की भूल-भुलैया, नवधा भक्ति जो शबरी को बताई गई जो लक्ष्मण को बताई गई, वाल्मीकि के अनुसार राम के निकेतन, विविध विवेचनों की तह में कवि का अपना दृष्टिकोण, एक विश्लेषण और उसका निष्कर्ष, राममय जीवन की रूपरेखा, राममय जीवन और नैतिक जीवन का संबंध, मन के विकार और उनकी प्रबलता, ज्ञान का मार्ग, तुलसी का विश्वास, विरति का प्रश्न, तुलसी की विरति एक उच्चतर रति का सहज परिणाम, प्रयास और अभ्यास, जोई बाँध्यो सोइ छोरै, राम की कृपा, राममय जीवन के प्रवेशद्वार, कल्पित कठिनाइयाँ, आदर्श मानव और आदर्श भक्त, अपित जीवन के लक्षण, एक अगमग, वास्तविक जीवन तुलसी साहित्य का सच्चा सन्देश ।

८२—१०५

छठवाँ अध्याय

सत्संगति

साधनों में एक साधन सत्संग, सत्संग क्या है तुलसी के अपने निजी अनुभव, सत्य की व्यापक सत्ता, संतों के लक्षण, नारद को बताए गए, भरत को बताए गए, भक्ति के लक्षण और संत के लक्षण, संत और गुरु और सज्जन, गुरु शिष्य संबंध एक अर्थपूर्ण प्रसंग, और एक सुन्दर रूपक, सत्संग का प्रभाव, सद्यः फलदायक अनुभूति, कुछ उदाहरण, साधु असाधु, गुणदोष, एक मौलिक निष्कर्ष और एक गहरी आस्था, सकल राममय, सत्य से संयुक्त दृष्टि, सत्संगति की प्राप्ति, हरिकृपा; संत और अनन्त, सत्संगति और दिव्य दृष्टि, तुलसी साहित्य की अद्भुत एकरसता । १०६-१२६

सातवाँ अध्याय

दीपशिखा और मणिप्रभा

तार्किक दृष्टिकोण और तुलसी की स्थिति, ज्ञान और भक्ति की गुत्थी,

गुत्थी सुलझाने की आवश्यकता, एक महान रूपक, ज्ञान रूपी दीपशिखा, दीपक जलाने के लिए आवश्यक सामग्री और तैयारी, विविध बाधाएँ, इन्द्रियो के देवताओ के छलबल, ज्ञान पंथ कृपान कै धारा. भक्ति के विषय मे कवि का दृष्टिकोण, भक्तिमणि और उसका स्वरूप, स्वयंधन रूप. मानस रोग के उपाय, मणि की खोज, खोज करने वाले के लिए आवश्यक भाव, पद्धति नही जीवन, पुरुष ज्ञान और भक्ति नारी, ज्ञानी और भक्त मे अन्तर, भक्ति और मुक्ति, वाक्य ज्ञान और सरल समर्पित जीवन। १२७—१३६

खण्ड २

काव्य जगत्

आठवाँ अध्याय

अनुभूति और अभिव्यक्ति

अनुभूति और कृति, कलाकारी और कविता, हरि प्रेरित काव्य, ऐसे काव्य की सृजनात्मक सम्भावनाएँ, भक्ति और काव्यशक्ति, काव्यशक्ति का सदुपयोग और दुरुपयोग, अर्पित काव्य, कवि की वैयक्तिक स्वतंत्रता का प्रश्न, अनुभूति के प्रति ईमानदारी, कविता और लोकरंजन, तुलसी का दृष्टिकोण जग मंगल गुन ग्राम राम के, सृजन के क्षण, प्रेषणीयता की माँग, पाठक और श्रोता की पात्रता, काव्य और कथावस्तु, सृजन कारी काव्य की चरम सीमा, जन भाषा में काव्य रचना का निश्चय, इस निश्चय के पीछे क्रियाशील प्रवृत्तियाँ, हरि प्रेरित काव्य की रूप रेखा, सृजन की प्रक्रिया, हृदय और बुद्धि, भाव और भाषा। १४३—१६१

नवाँ अध्याय

मानस : परम्पराएँ और काव्य रूप

राम कथा की प्राचीनता, विविध देशो मे प्रचार, भारतीय भाषाओ की अपनी-अपनी रामायणें, राम काव्य की प्रधान धारा, संस्कृत ललित साहित्य मे राम कथा, तुलसी के सुपरिचित काव्य, एक नया प्रभाव, राम भक्ति पूर्ण रामायणें, उनकी विशेषताएँ, कथित आधार ग्रन्थो और रामचरित मानस मे आधारभूत असमानता, मानस की काव्यात्मा, वाह्य रूप और आन्तरिक गुण, अर्थपूर्ण उद्धरण, कवि के मन पर अंकित चित्र, कवि का वास्तविक उद्देश्य और काव्य रूप पर इसका प्रभाव, काव्य का रूप जो है और जो हो सकता था, मानस के काव्य रूप विषयक धारणाएँ, कृत्रिम कसौटियाँ, मानस की अलग कोटि।

१६२—१८३

दसवाँ अध्याय

मानस का रस विशेष

तुलसी का सबसे बड़ा चमत्कार, कवि की अनुभूति और काव्य का माध्यम, वातावरण का महत्व, मानस का विशिष्ट वातावरण, विविध काण्डों में इस वातावरण की प्रधानता, आत्मीयता का भाव, मर्मस्पर्शी प्रसंग, प्रभु का परिवार, सरल व्यवहार और प्रेम की ऊँचाइयाँ, शब्दों का जादू, छन्द, लय, एकरसता; एक तरल, निहित व्यापक तत्व; आशा, आश्वासन और महान सम्भावनाओं का जगत्। १८४—२०२

ग्यारहवाँ अध्याय

चित्र और संगीत

कवि के साहित्यिक जीवन का प्रौढ़ काल, एक नई मोड़ और पुरानी प्रवृत्ति, विशुद्ध काव्य के साधन; झाँकियों की ओर झुकाव, पियत नैन पुट रूप पियूषा, गीत और कथावस्तु, क्या गीतावली गीतबद्ध रामायण है ?, वर्णन और गायन, प्रसंगों का चुनाव, सरस और मधुर की खोज, कुछ गीत और उनका आकर्षण, विशेष गुण, संगीतात्मकता, शब्द संगीत और स्वर संगीत, एक अपूर्व तालमेल, कवितावली में कवि की नई अभिरुचि पूरी निखार पर, कवितावली का रचनाकाल, वर्ण्य-विषय, प्रौढ़ प्रतिनिधि रचना, कवित्त और सवैयों की परम्परा, तुलसी की देन, चार पंक्तियों के चमत्कार, कुछ उदाहरण, नया रस और पुराने कलस, चित्र, शब्द, ध्वनि, गतिशीलता, उत्तर काण्ड में कवि के अन्तस्तल की पुकार, सौवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के। २०३—२२४

बारहवाँ अध्याय

शरणागति संगीत

अपने ढंग की अनुपम कृति, तुलसी की अनुभूतियों का सार तत्व, एक आध्यात्मिक आत्मकथा, एक भ्रान्ति मूलक धारणा और उससे उत्पन्न दिग्भ्रम, कलि और कवि, स्तुतिमाला की आवश्यकता, एक अनुपम एकसूत्रता, अनुभूतियों की भावभूमि, अर्थपूर्ण संकेत, राम नाम का मूलमंत्र, कवि और प्रभु के पारस्परिक सम्बन्ध, आकुल अंतर की झाँकियाँ, कृपातत्व, विश्रान्ति के स्वर, एक

आध्यात्मिक कायाकल्प, शरणागति, गीति काव्य के मूल तत्व, मानस और विनय, विनय के पदों के विशिष्ट आकर्षण, व्यापक संकेत, प्रभाव की एकता, सरल स्वाभाविक अभिव्यक्ति, परम्पराएँ और प्रतिभा, प्रीति के गीत, एक नए स्तर पर। २२५—२५१

तेरहवाँ अध्याय
विविध प्रयोग

कवि और जनजीवन, रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, विषय शैली और वातावरण की विशेषताएँ, जनप्रिय तत्व, रामाज्ञा प्रश्नावली, वैराग्यसंदीपिनी, दोहावली, कवि के जीवन का एक विशिष्ट पक्ष, दोहावली, मुक्तकों के गुण स्वभाव, चातक चौंतीसा, मुक्तक मणिमाला, कृष्ण गीतावली, सूर और तुलसी, भाषा और भावभूमि, बरवै रामायण, रहीम और तुलसी, रस के छींटे। २५२—२६६

चौदहवाँ अध्याय
भाषा और शैली

आलोचकों की खोज, तुलसी के उद्देश्य, जन भाषा का चुनाव, कुछ मौलिक कारण, पूर्ववर्त्ती भाषा कवि, तुलसी की कविता की अपनी आवश्यकताएँ, इन आवश्यकताओं से प्रभावित आस्थाएँ, शैली की विशेषताएँ, प्रयोग और प्रवाह, कुछ उदाहरण, अलंकारों का स्थान, नमूने, प्रसाद गुण सबसे ऊपर, कवि का शब्दभाण्डार, विषय के अनुकूल भाषा का रंग, प्रतिभा की पवन।

२६७—२९३

पहला अध्याय

एक दिव्य दर्शन और उसकी रूपरेखा

कहेँउ न कछु करि जुगुति विसेषी, यह सब मैं निज नयनन्हि देखी

सभी उच्चकोटि के, सच्चे, सृजनात्मक साहित्य के मूल में एक दिव्य अनुभूति होती है और उस दिव्य अनुभूति को सफलता पूर्वक व्यक्त करने की लेखक में एक उत्कट इच्छा। संसार के सभी महान साहित्य निर्माता दो अनुभूतियों से निरन्तर और सजीव सम्पर्क मे रहे है—एक ऐसी ज्योति से जो उनकी कृतियो को आलोकित और अनुप्राणित करती रही है और दूसरे मानव जीवन की सम्भावनाओ मे एक ऐसी आस्था से जिससे प्रेरित होकर वे उस ज्योति की रश्मियो को बिखेरने के महान कार्य मे लगे रहे है। इस उच्चकोटि के साहित्य में एक ऐसी आत्मशक्ति होती है सार तत्व की एक गहरी पकड़, जो लेखक की कृति को जीवन देती है उसमें व्याप्त रहती है, उसको अपने स्तर पर कायम रखती है। तुलसी की महान् कृतियों का सार तत्व, उनके बीज मन्त्र तो इतने स्पष्ट, सरल, गहरे और मर्मस्पर्शी है कि उनके विषय में मतभेद या मतिभ्रम हो यह भी एक अचम्भे की बात है। हृदय की गहराइयों मे रो रोकर, अनुभूति की ऊँचाइयों से पुकार पुकार कर, तरह तरह के रूपकों, प्रसगों की सामग्री जुटा जुटा कर मानस, विनय, कवितावली का कवि इस बीज मंत्र को इतनी श्रद्धा विश्वास पूर्वक दुहराता है कि तुलसी काव्य के किसी टीका-कार के लिये इस राज डगर को छोड़ कर कोई दूसरा रास्ता पकडना जान बूझ कर पथभ्रष्ट होना है।

संसार की विषमताओं और निराशाओं से पीड़ित होकर, विश्राम और शान्ति की खोज में घाट घाट का पानी पी चुकने पर, सन्तों की भीड़ में चन्दन घिसते हुए कब, कहा, किस सन् सम्वत् में तुलसी को अपने प्रभु का दर्शन प्राप्त हुआ इसके विषय में बहसें चल सकती है परन्तु जिस सचाई से उसकी आत्मा आलोकित हो उठी और जिस शक्ति ने उसको आनन्द और निश्चिन्तिता के मार्ग पर आरूढ़ किया उसकी रेखाएँ निश्चित और स्पष्ट हैं—एक यह कि राम नाम की एक परम सत्ता है, दूसरे यह कि वह प्रेममय, कृपामय है, तीसरे यह कि अपने को भुला कर उसकी शरण मे आकर ही उससे सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है । इस आन्तरिक दर्शन, इस दिव्य अनुभूति के प्रभाव में ही तुलसी ने अपने साहित्य की सृष्टि की । दर्शन शास्त्र वादविवाद का विषय हो सकता है परन्तु यह दर्शन जो तुलसी ने अपने हृदय के अन्तस्तल में पाया एक ऐसा दर्शन था, चेतना की एक ऐसी सजग अवस्था जिसकी अविरल धारा में मग्न होकर वह आजीवन राम यश कीर्तन करता रहा ।

अनुभूति के प्रभाव मे रचे गये साहित्य के प्रवेश द्वार भी उन प्रवेश द्वारो से भिन्न होगे जिनमें से हो कर हम साधारण साहित्यिक रचनाओ में प्रवेश पाते है । विद्वत्ता, तर्क, कसौटियां हमें जहा पहुँचाती है वहा से कोसो दूर हे उस भव्य भवन की चहार दीवारिया जहा ऐसे साहित्य का जन्म होता है । उस भव्य भवन का केन्द्र है कवि की अन्तरात्मा, जिसके सुख के लिये कवि काव्य और कला के माध्यमो को अपनाता है । इस कला और उस कला मे आधार भूत अन्तर है जिसकी रचना किसी उपयोगिता को सामने रख कर, किसी बाहरी यथार्थता मे सीमित रह कर, किसी मत मतान्तर के समर्थन में, किसी दूसरे को खुश करने के लिए की जाती है । आधुनिक साहित्यिक रचनाएँ उपयोगितावाद, प्रगतिवाद, यथार्थवाद आदि विविध वाद विवादों स ऐसी प्रभावित है और हम भी इन वादों के प्रभाव में निर्मित रचनाओं के ऐसे आदी हो गए है बल्कि यों कहिए कि उनकी

दिमागी गुलामी की जंजीरों में ऐसे जकड़े है कि हमारे लिए ऐसी रचनाओं स कोई सजीव और स्वाभाविक सम्बन्ध स्थापित कर सकना कठिन हो गया है जिनकी सृष्टि कवि ने अपनी अन्तरात्मा में स्वान्त सुखाय, द्वन्द्वो से मुक्त होने के लिये की हो। कवि स्वयं स्पष्ट शब्दो मे मानस के प्रारम्भ मे ही अपना हृदय खोल कर कहता है :—

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषा निबन्धमतिमंजुलमातनोति

और इसी डर से कि लोग कही दूसरा कुछ न समझने समझाने लगें वह इसी बात को ग्रन्थ समाप्त करते समय फिर एक बार दुहराता है।

मत्वा तद्रघुनाथ नामनिरतस्वान्तस्तम शान्तये
भाषा बद्धमिद चकार तुलसी दास्तथा मानसम्

परन्तु फिर भी ऐसे अगणित टीकाकार, आलोचक, कथावाचक मिलेगे जो बराबर यह साबित करने में जुटे रहते है कि किसी सामाजिक सुधार, किसी धार्मिक सम्प्रदाय, किसी दार्शनिक विचार शैली, किसी काव्य परम्परा के प्रतिपादन और प्रचार के लिए ही तुलसी ने रामायणी कथा को एक साधन बनाया। उनकी टिप्पणियों को पढ़िये तो मन पर ऐसा प्रभाव पड़ता है जैसे तुलसी कोई एक अत्यन्त चतुर षडयन्त्रकारी हो जो चाहता तो है पारिवारिक और सामाजिक व्यवस्था का परिवर्तन सुधार परन्तु कहानी के नायक को विशेष महत्व देने के लिए थोडी थोडी दूर पर कहता रहता है सोइ सच्चिदानन्द घन रामा। या जिसका प्रच्छन्न उद्देश्य तो है हिन्दू राज्य का पुनरुत्थान परन्तु जो अपने समकालीन मुगल साम्राज्य पर खुला प्रहार न करके कलिकाल वर्णन के बहाने मुगल सत्ता की जड़ें खोखली कर रहा हो, या फिर जो धार्मिक समन्वय स्थापित करने के लिये सभी देवी देवताओं मत मतान्तरों की स्तुतिवन्दना करके एक नया कुनबा जोड़ना चाहता हो जिसके कारण उसकी रामायण विविध धार्मिक ग्रन्थों के

सुन्दर अंशों की एक पिटारी बन गई है। यह एक आधार भूत भ्रान्ति है, एक ऐसी भ्रान्ति जिसके कारण हम उसके अर्थ को यद्यपि वह मणि की आभा के समान प्रकट है देखते हुए भी नही देखते । यह एक ऐसी भ्रान्ति है जिसके कारण न केवल हम गौण बातों को मूलाधार मान लेते है और उन बातों पर जरूरत से ज्यादा जोर देते है जिनका महत्व बहुत थोडा है बल्कि राह से कुराह हो जाते है और ऐसी पगडंडियों मे खो जाते है जो तुलसी साहित्य के राजद्वार तक हमको कभी पहुचा ही नही सकती ।

तुलसी जिस प्रश्न के उत्तर की खोज में आजीवन जूझता रहा वह था इस जीवन की पहेली, यह जीवन जिसकी असंगतियों, पिपासाओ और यातनाओ से त्रस्त होकर उसकी अन्तरात्मा एक ऐसे सम्बल और सहारे को ढूंढ रही थी जिसको पाकर फिर कुछ जानना न रहे और जिससे नाता जोड कर और सभी नातो, सहारो, पिपासाओ से मुक्ति मिल जाय । जो आस्था, जो आत्मसन्तोष जो आत्मनता तुलसी साहित्य की एक एक पंक्ति से फूटी पडती है उसकी थोडी बहुत भी छाया जिस पाठक को मिली होगी वह यह अनुभव किये बिना नही रह सकता कि इस कवि ने कुछ पाया है, अपनी अन्तरात्मा में उसने एक ऐसी सत्ता, एक ऐसी शक्ति से साक्षात्कार किया है जिसका गुणगान करने में वह आत्म विभोर है और जिसका आभास वह विविध छन्दो मे विविध प्रसगों को उठा कर, विविध रचनाओ द्वारा मानव समुदाय को देना चाहता है। अतएव हमें यह न भूलना चाहिये कि वह अन्तद्र ष्टा पहले है और कवि बाद में । अपने हृदय के अन्तस्तल में उसने जो दर्शन पाया है उसका जो कुछ भी प्रतिबिम्ब, उसकी जो कुछ भी छटा हम उसके काव्य में पाते है वह केवल आभास मात्र है उस अनिवर्चनीय अनुभूति का जिसकी अभि-व्यक्ति के प्रयास में उसने साहित्य रचना की । जो छटा उसके काव्य में दिखलाई देती है उससे कही अधिक सुखकर, सुन्दर, कल्याणकारी है वह

अनुभूति जो उसकी कविता का स्रोत है। उसकी कविता की सारी छटा का स्रोत है वह प्रेरक अनुभूतियां जिनके प्रभाव मे उसकी रचनाएँ पाठक के मन को छूती है।

इस तथ्य के अनेक ऐसे परिणाम है जिनकी ओर हमारा ध्यान नहीं जाता और इसी कारण तुलसी साहित्य के वह रहस्य नहीं खुल पाते जिनमें उनका वास्तविक आकर्षण है। पहली गलती जो इस सम्बन्ध में हम करते है वह उस सस्ती तर्कमूलक विश्लेषणात्मक आलोचना पद्धति का अनुसरण है जो आधुनिक साहित्यिक क्षेत्र के अधकचरे शौकीनो में अक्सर आदर पाती है और जिस पर भौतिक विज्ञान की खोज मे काम आने वाली पद्धतियों की गहरी छाप है। किसी साहित्यिक कृति को लेकर चाहे वह सृजनात्मक कल्पना या आध्यात्मिक अनुभूति की कितनी भी ऊँची कृति हो, जिस तरह भी बन पड़े एक भौतिक स्तर पर ले आना, फिर उसके अंग अंग को काट कर उसकी धज्जियां निकालना और यह दिखलाने की कोशिश करना कि उसकी तह में कोई स्थूल मनोविकार या भौतिक असमर्थता, या बाह्य सामयिक या सामाजिक अभिप्राय था इस आलोचना पद्धति के जाने पहचाने ताने बाने हैं। परन्तु यह तरीके थोडी ही दूर तक और एक सकुचित क्षेत्र मे अपनी सीमाओं के भीतर ही काम आ सकते है। उनको अत्यधिक महत्व देकर कवि के दिव्य दर्शन को उन मापदंडो से नापना या ऐसे चौखटो मे भरने की कोशिश करना जिनमें वह स्वभावत अपनी सम्पूर्णता मे नही बैठाए जा सकते एक व्यर्थ और भ्रामक प्रयास है। केवल यही नहीं, वह अंश ग्रहण करके जो आसानी से समझ में आ जाएँ, उस आधार भूत सत्य से आंखे चुराना जो साधारण तार्किक स्तरों से ऊपर की चीज है कवि के प्रति एक अक्षम्य अन्याय है।

तुलसी काव्य के रसास्वादन मे जो एक दूसरी बाधा खडी होती है वह यह कि अनेक टीकाकार अपनी पूरी शक्ति से इस कोशिश मे लगे रहते है कि जरूरत हो तो खींच तान करके भी तुलसी साहित्य में ऐसे

आदर्श और विश्वास ढूँढ निकाले जाय जो उनको प्रिय है या उनके विचार में श्रेयस्कर है। यदि कही ऐसा हुआ कि कवि ने कुछ ऐसे विश्वास प्रगट किए जो उनकी अपनी प्रिय धारणाओं की अनुगामिनी न हुई तो फिर वही तुलसी ने चूक की, वही वह युग और धर्म की मार्गों का विरोधी साबित हो गया, वही वह उनके पिटे पिटाए, पढ़े पढ़ाये, रटे रटाए नियमों के घेरों से बहिष्कृत हो गया।

सच्ची बात तो यह है कि आलोचना, व्याख्या, विश्लेषण के हम ऐसे पीछे पड़े रहते है कि यह बहुत जल्दी भूल जाते है कि काव्य की तह मे होता है एक सजीव साक्षात्कार और उसके मर्म को हम तभी पा सकते है जब कवि की अनुभूति से हमें स्वय सहानुभूति हो। तार्किक स्तर पर उच्चकोटि की कविता का अंग भंग और विश्लेषण करके तो हम कुछ भी नही पा सकते। तुलसी साहित्य एक महान् अनुभव, एक अलौकिक साक्षात्कार के रहस्य का उद्घाटन है। जिन कृतियो में इस अलौकिक साक्षात्कार का उद्घाटन हुआ है वह स्वभावत: उन्ही साधनों को स्वीकार करेंगी जो उसके रहस्योद्घाटन मे सहायक हों। यह साधन सदैव हमारे तार्किक स्तर पर गढ़े गए नियमो उपनियमों के शासन मे रह कर काम करें यह आवश्यक नही। सभी महान् कवि अपनी अभिव्यक्ति के लिये आवश्यक और उपयुक्त साधनो और स्वरो को ढूंढ निकालते है और आवश्यकता पडने पर नए माध्यमो का सृजन करते है, तुलसी की कृतियो को भी ठीक तौर पर तभी समझा जा सकता है जब हम उनको उस विराट दर्शन की आश्यकताओं के प्रकाश में देखें जो कवि ने पाया है। ऐसा करने से हमें ज्ञात होगा कि तुलसी साहित्य के अनेक स्थल जो ऊपर से असगत, अविश्वसनीय, अनावश्यक, अनमेल दिखाई देते है, वस्तुत कवि की मौलिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है क्यों कि वह एक निबन्ध नही लिख रहा है जिसके लिए युक्तिया जुटा रहा हो वल्कि एक अनुभूति को मूर्तिमान करना चाहता है

जो जीवन को आलोकित करती है। उसका बार बार मानस के आदि अन्त और मध्य मे यह पूछना 'राम कवन प्रभु पूँछउ तोही' कुछ मानी रखता है और इस प्रश्न का उत्तर केवल उत्तर कान्ड ही मे नही वरन् उसकी पुस्तक के प्रत्येक भाग मे एक अनवरत धारा की भांति प्रवाहित है।

तुलसी को अपने जीवन के प्रवेश द्वार पर ही जीवन के अनुभव, गुरु की कृपा, अपने अन्तस्तल के साक्ष्य से यह तो जरूर भास होने लगा था कि बाह्य ससार की विषमताओ और प्रतीतियों के पीछे कोई एक सत्ता है जो निरन्तर हमको उठा रही है, अपने समीप ला रही है, अपने स्वरूप के अनुकूल बना रही है, उसी की शरण में आकर समस्त द्वन्द मिट सकते है और उससे ही सर्म्पक स्थापित करना मानव जीवन की सार्थकता है। यह धारणा क्रमश विश्वास, आस्था और फिर एक जीवन ज्योति मे परिणत हो गई। वैराग्य सदीपिनी से रामचरितमानस और रामचरित मानस से विनय पत्रिका के पदो तक तुलसी की रचनाएँ पढते जाइये और यह बात हृदय में उतरती ही चली आती है कि कवि विचार की सीमाओ से आगे बढ़कर अनुभव की गहराइयों में प्रवेश करता जा रहा है अपने अनुभव के अन्त सुख को व्यक्त किए बिना रह सकना उसके लिये असम्भव है। काव्य और सगीत के सूक्ष्म, सुकोमल साकेतमय स्वरों में ही उसकी अन्तरात्मा का यह अन्त सुख प्रकट हो सकता है और स्वभावत. वह इन्ही को अपना माध्यम बनाता है।

जिन अनुभवो को कवि ने प्राप्त किया है वह एस नही है जो आसानी से शब्दो में व्यक्त किए जा सके। युगयुग से सूक्ष्म अनुभवो को शब्दो और रूपको मे बाधकर रखना साहित्य की सब से बड़ी समस्या रही है। व्याख्या विश्लेषण करने वाले लेखको के लिए पारिभाषिक शब्दावलियो के सहारे विचारो की शृखला जोडते चले जाना आसान है, परन्तु सृजनात्मक साहित्य के रचियता के समाने जो समस्या होती है वह

इससे बिलकुल विभिन्न है। पग पग पर उसे ऐसा लगता है कि जिस सत्य को, जिस सुन्दरता को उसने प्रत्यक्ष देखा है जिस अनुभव ने उसके रग रग को आनन्द विभोर कर दिया है, शब्दों, प्रतीकों के साचों में उसका कुछ भी रूप रंग, उसकी कुछ भी तरंगित तरलता, उसकी कुछ भी सजीव प्रेरणा तो नही आ पाती। एक अजीब वेदनी होती है ऐसे द्रष्टा कवि को जिसने कुछ पाया है और जो देखता है कि अपनी सजीव वास्तविकता मे अपनी सम्पूर्णता मे इस अनुभव को व्यक्त कर सकना कितना दुसाध्य है।

अन्य महान कवियों के समान तुलसी को भी इस कठिनाई की तीव्र अनुभूति हुई होगी यह उसकी कृतियो से स्पष्ट है। मानस को ही पढ कर देखिए। केवल अलकारिक अर्थ मे ही नही, वास्तव में जिस विषय को लेकर मानसकार चलता है न उसकी कोई सीमाएँ है और न उसका कोइ अन्त—राम अनन्त अनन्त गुण अमित कथा विस्तार

राम, अगुण, अरूप, अलख, अजमद्वैत, अनुभवगम्य, मायातीत, व्यापक राम, रामायणी कथा जिनकी लीला मात्र है, जिनके वास्तविक रूप की किञ्चिमात्र झलक से ग्रन्थ के आरम्भ मे माता कौशल्या और ग्रन्थ के अन्त में काकभुशुंडि सहम गए—ऐसे वर्णनातीत, बिना ओर छोर के विषय को लेकर कवि चलता है। ऐसे विषय को समझना ही कितना कठिन है—समुझत अमित राम प्रभुताई, परन्तु उसको कथा रूप में व्यक्त करने के प्रयास स तो हिम्मत ही छूट जाती है—करत कथा मन अति कदराई!

उसको भली भाति मालूम है कि जो बात वह कहने जा रहा है वह कोई किस्सा कहानी नही है, कोई चरित चर्चा मात्र भी नही है, कोई

कोरी काव्य चातुरी का प्रदर्शन नही है, वह उसी निर्गुण सत्ता के सगुण रूप का चित्रण है जिसके गुणगान मे 'सारद, सेस, महेस, बिधि, आगम, निगम पुरान' केवल नेति नेति कह पाते है। फिर भी यदि कवि अपनी लेखनी उठाता है तो निश्चय ही उसको कुछ कहना है, कुछ अपने ढंग से कहना है और जो वह कहने जा रहा है वह कहे बिना वह रह नहीं सकता,

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई, तदपि कहे बिन रहा न कोई।

और इस कहे बिना न रह सकने के कारण भी है। इसके पीछे एक सजीव अनुभव है और उस अनुभव को व्यक्त करने की एक अदमनीय प्रेरणा जिसके कारण यह अकथनीय विषय परम कथनीय हो जाता है।

तुलसी ने देखा और जाना कि वह व्यापक विश्वरूप, भगवान जो अनीह, अरूप, अनाम है अनीहि अरूप अनाम होते हुए भी अपनी अहैतुकी कृपा का वरद हस्त फैलाए रहता है, अरूप होते भी अनुरागी भक्त हृदयों मे प्रतिष्ठित और मूर्तिमान रहता है, अविद्या, अज्ञान मोह जिस कारण भी मनुष्य उससे सम्पर्क खो देता है, उसको उसकी खोई हुई चीज 'गई बहोर' फि . प्राप्त कराता है, वह कृपासिंधु है गरीब नेवाज है, अनाम होते हुये भी नाम द्वारा पाया जा सकता है अतएव उसी की कृपा का आश्रय लेना मानव जीवन की सार्थकता है।

बुध बरनहि हरि जस असजानी करहिं पुनीत सुफल निज बानी

तुलसी ने यह भी देखा कि तार्किको, विवादियो, टीकाकारों, सम्प्रदायवादियो ने अपनी व्याख्या और विवेचनो द्वारा एक ऐसी सत्ता को जो कृपामय, करुणामय, आनन्दमय, आलोकमय है अपनी व्याख्याओं और विवेचनों के फल स्वरूप रहस्य और संशय की गुफाओ मे और भी भीतर ढकेल दिया है। तुलसी ने काव्य द्वारा जो भगीरथ कार्य अपने ऊपर लिया वह था न केवल एक निर्गुण, अमूर्त्त सत्ता को सगुण और मूर्तिमान बनाना,

उसमें रग रूप भरना, वरन उसको ऐसा सजीव, सुखकर, विश्वसनीय प्रभाव बनना जिससे हम यहा, यही, मानव जीवन मे ही सम्पर्क स्थापित कर सके और भय और दुश्चिन्ता से मुक्त हो सकें। इस भगीरथ प्रयत्न का उद्देश्य केवल ज्ञान गगा की अवरुद्ध धारा को प्रवाहित करना मात्र नही था वरन् उसको वस्तुत पतितपावनी, त्रय ताप हारिणी बनाना था।

काव्य के क्षेत्र में इस महासकल्प की महानता और उसके अर्थ सकेत को हम अनेक कृत्रिम, वाह्य और सकुचित मूल्यों और मापदन्डो के फेर में ठीक तरह नही समझ पाते है। रामचरित मानस चाहे एक महाकाव्य हो या एक महान् धर्म ग्रन्थ या एक महान रूपक परन्तु उसके मूल में स्थित महान अनुभूति के विषय मे यदि कोई सन्देह या दिशाभ्रम हुआ तो वह एक ऐसी भूलभुलैया सा ही दिखाई देगा जिसमें हम अपने को पाने के स्थान पर खो सकते है। मानस के कवि के सामने जो प्रश्न है वह इस जीवन की पहली को सुलझाना है। मनुष्य जीवन के केन्द्र में स्थित एक पहेली है। वह अपने में एक रिक्तता, एक अनिश्चितता, एक अभाव, एक असहायता पाता है। लाख सिर खपाने पर भी, ज्ञान और कर्म के रास्तों को नापने पर भी वह देखता है कि 'बिनु तव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटै माया' अतएव सच्चे, न घटने वाले आनन्द की कुञ्जी है जीवन के प्रति भ्रामक धारणाओ का परित्याग करके एक ऐस नए दृष्टि कोण को स्थापित करना जो द्वन्द्वो को मिटा कर हमे मोह और माया के कारागृहों से मुक्त करदे और राम की कृपा का भागी बनावे। सारे रामचरित मानस की यही कहानी है राम चरित नही, राम-कृपा चरित की कहानी, राम प्रीतिरीति की कहानी, राम की वह कृपा जिसके प्रभाव मे आकर मानव हृदय ही क्या देव, दनुज, साधु, असाधु, कपि, भालु, पशु, पक्षी सभी के हृदयो की ग्रन्थिया खुलती चली जाती है और वे भव सागर में डूबते उतराते, शान्ति निर्भयता और आनन्द की ऐसी दृढभूमि पा जाते है जहा पहुँच कर और सभी इच्छाएँ फीकी पड़ जाती है।

मानव जीवन की विषमता और उससे मुक्ति प्राप्त करने के साधनों के विषय मे दार्शनिक, बौद्धिक, साम्प्रदायिक दृष्टिकोणों से तो अनेक विद्वत्तापूर्ण, बाल की खाल निकालने-वाले तर्कों पर आधारित विवेचन हुए है और होते रहेंगे ऐसे विवेचनो से भारतीय साहित्य भरा पड़ा है परन्तु तुलसी ने जिन साधनो द्वारा विश्राम और आश्रय प्राप्त किया वे निश्चय ही न तो कोरे दार्शनिक है न बौद्धिक न साम्प्रदायिक । सभी दार्शनिक दृष्टि कोणो से पूर्णतया परिचित होते हुए भी तुलसी उन सब स ऊपर उठता है । कोरे बौद्धिक और तार्किक दाव पेंचों की आधार हीनताओं की ओर उसने बार बार ध्यान आकृष्ट किया है और संकुचित साम्प्रदायिकता तो उसको छू तक नही गई थी। वह जिस युग में था उसमें पाण्डित्य प्रदर्शन, तार्किकता, धार्मिक साम्प्रदायिकता की धूम थी । राम चरित मानस की सजीवता और संजीविनी शक्ति का प्रधान रहस्य यही है कि कवि इन सब से किनारा काट के भावना और अनुभूति की गहराइयों में प्रवेश करता है और किसी मूल्य पर भी वाद विवाद के के वाग्जाल में नही फँसता ।

यदि हम यह देख ले कि तुलसी की कृतियो का आदि स्रोत आत्मानुभूति है और अपने को व्यक्त करने का एक मात्र उपाय उस अनुभूति को एक नैसर्गिक मधुरता और अगाध आत्मविश्वास के साथ खोल कर रख देना तो हम यह भी देख सकेंगे कि वह काव्य क्षेत्र में जो प्रयोग कर रहा है वह एक निराला सृजनात्मक प्रयोग है । तुलसी के सामने राम को एक लोक नायक मान कर उनके बड २ कारनामो के उत्साह वर्धक वर्णनों की शैली थी , उसके सामने दार्शनिक विचारों'और धार्मिक नैतिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन की शैली थी- अध्यात्म रामायण मे यह शैली बहुत कुछ अपनाई गई दिखाई देगी, उसके सामने और उसके चारों ओर साखियों, शब्दों, दोहरो, कहानियों, उपख्यानों द्वारा ज्ञान वितरण की प्रणाली की तो एक बाढ़ सी आई हुई थी । तुलसी की रचनाओ में ऊपर

में तो इन सभी मसालों की पुट दिखलाई देती है परन्तु क्या जिस विद्युत शक्ति से उसके बचन हृदय को पकडते है, उसको द्रवीभूत करते है, तृप्त करते है, क्षण मात्र में कतरे को दरिया बना देते है, यह सफल अनुकरण, परम्परा का पालन, सुन्दर शब्द योजना मात्र है ? क्या सभी कथाओ, सम्वादो रूपकों के पीछे कवि की यह मुस्कराहट नही झलकती रहती कि पढिये इन कथाओ, प्रसंगो, सम्वादो को, मैने इनको इसी लिये जुटाया है कि यह आपकी अपनी पहचानी प्रतिमाएँ है इन्होने आप का मनोरञ्जन किया है परन्तु यह न भूलिएगा कि इनके पीछे एक अनुभूति है, एक खोज, एक दर्शन, एक साक्षात्कार, जिसके वश मे मै रघुनाथ गाथा गा रहा हूँ' ।

कवित विवेक एक नहिं मोरे, सत्य कहँऊ लिखि कागद कोरे
भनिति मोर सब गुन रहित विश्व विदित गुन एक
सो विचारि सुनिहहि सुमति जिन्हके विमल विवेक
एहि मँह रघुपति नाम उदारा अति पावन पुरान श्रुतिसारा

पुराणों और श्रुतियो के सार उस एक नाम और सत्ता की खोज, उसको सगुण, साकार बनाने का महासकल्प ही तुलसी की कृतियो के पीछे काम करने वाली प्रेरक शक्ति है

निज सन्देह मोह भ्रम हरनी,
करउँ कथा भव सरिता तरनी ॥

इस महासंकल्प को पूरा करने में वह सफलीभूत भी हुआ इसके कोटि कोटि रामोन्मुख हृदय शताब्दियो स साक्षी रहे है । परन्तु इस महान् साहित्यिक चमत्कार के दिखाने में वह कैसे सफलीभूत हुआ इसकी चर्चा और इसका अध्ययन अत्यन्त रोचक और महत्वपूर्ण हे । जीवन, जगत् और जगदाधार के प्रति तुलसी का जो दृष्टि कोण हे उसके प्रकाश में उसकी सभी कृतिया एक साधन है उस रूपरस के रहस्य के उद्घाटन का

जिसके प्रभाव में हृदय रामोन्मुख होते है और उन्मुख हृदयों को राम बन्धनों से मुक्त करते है ।

इस अभय दान की कथा मानव हृदय के अन्तस्तल के माग की कथा है । कोई कथा जो मानव हृदय की इस माग को पूरी करने के लिए लिखी गई होगी स्वभावत मनुष्य के हृदय को पकड़ेगी । तुलसी की कृतिया स्पष्टत उस अनुभूति के प्रकाश में लिखी गई है जिससे मानव हृदय को अभय, आनन्द और निश्चिन्तिता प्राप्त होती है । यहां वहा की चौपाइयों को लेकर आप चाहे जितना इस बात को दिखाने की कोशिश करे कि राम चरित मानस किसी सकुचित पारिवारिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये लिखी गई कहानी है परन्तु उसमें कवि जिन तत्वो और अनुभवो के गुणगान मे रत है, आत्मविभोर है, जिन्हे एक बार पल्ला पकड कर अपने हाथ से कभी छूटने नहीं देना चाहता वह तत्व और अनुभव ऐसे नही है जिनको इधर उधर बिखरी हुई चौपाइयों में ढूंढना पड़े । वह तत्व समस्त कृति मे व्याप्त है और प्रत्येक चौपाई में प्रतिबिंबित है यदि हम उनका लगाव कवि की प्रेरक अनुभूतियो से देख सके । योग याग, ध्यान धारणा अनेक साधन बताये गए है उस गूढ़ तत्व को पहचानने के लिये, परन्तु काव्य द्वारा उस सत्ता की खोज, उसके स्वरूप और प्रभाव को शब्द बद्ध करने के जो भी प्रयास मनुष्य ने किये है उनकी प्रथम पक्ति में तुलसी के राम चरित मानस का स्थान है और रहेगा । तुलसी की कृति का मूल्याकन उसको काव्य के उस स्तर पर रख कर करना जिस पर काव्य पिंगल, छन्द शास्त्र और वाग्विलास की चीज है जो बुद्धि और तर्क के स्तर पर फेरे लगाती है एक भारी भूल होगी । उसकी कृतियों के तो सीधे स्रोत है दिव्य प्रेरणा, दिव्य अनुभूति दिव्य दर्शन । तुलसी का यह दावा अक्षरशः सत्य है कि स्वस्थ मन और समुचित भावना से राम चरित मानस का जो भी पाठ करेगा उसके मोह तम का नाश होगा क्योंकि ऐसा पाठक यह अनुभव किए बिना नही रह

सकता कि जिन रूपको, प्रसंगो, संवादो से होकर कथा का विस्तार फैलता है उनके पीछे और उनमें व्याप्त एक अनिर्वचनीय परन्तु अत्यन्त वास्तविक और शक्ति सम्पन्न वातावरण है और यह वातावरण उस दिव्य दर्शन और साक्षात्कार का सीधा और स्वाभाविक प्रतिबिम्ब है जिसके प्रभाव में कवि कथा कह रहा है। स्वभावत जो चीज पाठक के मन को पकड़ती है वह है वह शक्ति सचारित वातावरण जिसमे पाठक खुशी से पार्थिव ससार को भूल जाता है और एक ऐसे ससार मे प्रवेश करता है जहां वह अपने को एक परम सता के सम्पर्क में पाकर आत्मविभोर हो जाता है।

अतएव जो चीज पाठक के हृदय को पकड़ती है वह है शान्ति और समर्पण का वह जगत, प्रभु के रूप की वह माधुरी जिसके चित्रण की चेष्टा में कवि अपने हृदय की सारी सचाई और गहराई तरह तरह के रसकलसों में भर भर कर उडेंलता रहता है।

तुलसी साहित्य के विषय में जो सब से बडा धोखा केवल साम्प्रदायिक ढोल पीटने वालो ही को नही वरन् गम्भीर विद्वानों को भी होता है वह यह है कि कवि परम्परागत श्रुतिसम्मत विचारो का प्रतिपादन और प्रचार करना चाहता है जब कि वास्तव मे वह निज सन्देह मोह भ्रम निवारण के प्रयास में प्राप्त अनुभूतियों को प्रभु के प्रेम से प्रेरित हो कर व्यक्त कर रहा है। वह अनुभूतियां उसकी अपनी है, उन अनुभूतियो द्वारा उसने स्वयं 'पायौ परमु विश्रामु', उनको प्रकट करने में न उसे कोई युक्ति जुटाना है न प्रयास करना है।

कहेउँ न कछु करि जुगुति विसेषी
यह सब मैं निज नयनन्हि देखी

——

दूसरा अध्याय

एक गाँठि कई फेरे

नाम राम रावरोई हित मेरे
साधत साधु लोक परलोकहिं मुनि गुनि जतन घनेरे
तुलसी के अवलंब नाम को एक गाँठि कई फेरे

यदि तुलसी की कृतियो की तह मे एक अनुभूति और दिव्यदर्शन है तो स्वभावत उनमे विचारों की एकता और सिद्धान्तो की एक सूत्रता होनी चाहिये। परन्तु यह एक विचित्र बात है कि आलोचको ने अधिकतर इन कृतियो मे व्यक्त किये गये विचारो और सिद्धान्तो की विविधता और अनेक रूपता पर ही जोर डाला है और आन्तरिक सूत्रो की पकड़ न होने के कारण यह दिखाने की कोशिश की है कि तुलसी का सबसे बड़ा कार्य परस्पर विरोधी विचार धाराओं और विश्वासों मे समन्वय स्थापित करना था। यह आलोचक यह भूल जाते है कि भारतीय विचार धारा का मूलाधार ही यह है कि सत्य और परमेश्वर अनुभव गम्य है और अपने अनुभव पर आधारित सत्य ही सत्य है। उसका पहला और सर्वोपरि उद्देश्य निज सन्देह मोह भ्रम दूर करने के लिये आध्यात्मिक अनुभूतियों का प्राप्त करना है। अतएव उसके विषय में बात चीत करने, विचार विनिमय के लिये तो पारिभाषिक शब्दों का सहारा लिया जा सकता है परन्तु उसको जीवन में उतारने के लिये सिवाय आत्मानुभूति के अन्य किसी प्रमाण परिभाषा की आवश्यकता नही। तुलसी की कृतियों के विषय में

जो बात सबसे पहले समझने की है वह यह कि उसका उद्देश्य तर्कों द्वारा किसी विचार धारा या साधन या पद्धति का प्रतिपादन नहीं है, उसका अपना विशिष्ट ढङ्ग काव्य द्वारा पाठक की भावशीलता को ऐसा सजग और स्पंदनशील बनाना है कि उसमें सत्य और सौंदर्य के खोज की क्षमता अपने आप उत्पन्न हो जाय। तुलसी की कृतियों में ज्ञान, वैराग्य, दर्शन के इतने तथ्य पग पग पर सामने आते है और उनपर कवि ऐसी रुचि और कभी २ भुलावे मे डाल देने वाले आदर भाव से विचार करता है कि यह समझ लेना बहुत आसान हो जाता है कि उसका दृष्टि कोण एक तार्किक और शुष्क विचारक का है। परन्तु यह जाने बिना कि वह कहा तक और क्यो विचारक है और कहा तक और क्यों तार्किकता के माया जाल को मिटाने वाला उस रस का आस्वादन असम्भव है जो तुलसी की कृतियो का विशेष रस है।

तुलसी के समय में भारतीय विद्वन्मन्डली में मायावाद, अद्वैतवाद का कैसा रोबदाब और बोल बाला था यह सभी जानते है। जिस जाने पहचाने ढग से तुलसी ने माया, जीव, आत्मा आदि शब्दों का तथा सर्प रज्जु स्वप्न आदि उदाहरणो का अपनी कृतियो मे प्रयोग किया है उससे कोई यह सावित करने की कोशिश करे जैसा कि अनेक विद्वानो ने किया है कि वह शंकर के अद्वैतवाद का अनुयायी था तो कोई आश्चर्य की बात नही होगी। विद्वानो की अन्य मन्डलियों ने अनेक उक्तियो और उद्धरणो द्वारा यह भी सावित करने की कोशिश की है कि वह विशिष्टाद्वैत का अनुयायी था। परन्तु यदि कोई बात सर्वथा और सम्पूर्ण रूप से तुलसी के विषय मे सही है तो वह यह कि वह न तो किसी एक मत का समर्थक था न प्रवर्तक यद्यपि एक निरीक्षक की हैसियत से उसने सभी मतों में निहित सत्य को पहचाना है। जो बात तुलसी साहित्य के अनेक आलोचक भूल जाते है वह यह कि विचार तुलसी को बांधते नही उसको मुक्त करते है और एक विचारक की हैसियत से भी उसकी अपनी स्वतंत्र स्थिति है उसके अपने जीते जागते विश्वास है। परन्तु इन विश्वासों और

विचारों से ऊपर उसकी अपनी उपलब्धि भी है उसकी अपनी अनुभूति भी है और उसी अनुभूति के प्रकाश में वह ईश्वर, जगत और जीवन की पहेली को सुलझाता है। वह अनुभूति क्या थी, किन परिस्थितियों और आवश्यकताओं के वश म उसको सत्य का साक्षात्कार हुआ इसकी खोज न करके उसके विश्वासों को दूसरो के दार्शनिक सिद्धान्तों की प्रतिच्छाया मान लेना एक भारी भूल ही नही वरन् कवि की मूल प्रेरणा के प्रति घोर अन्याय भी है।

स्वभावत. उसकी तरल, तीव्र संवेदनशील मानवता और रूप रस की खोज उन शुष्क दार्शनिक साचो मे नही आ सकती जिसमे ढालने के अनेक आग्रह और विद्वत्तापूर्ण प्रयास किये गए है। तुलसी को किसी वाद विशेष का समर्थक साबित करने वाले विद्वान, विद्यार्थी और विवादी यह भूल जाते है कि तुलसी की रुचि केवल एक विद्वान और विद्यार्थी की नही है। उसने अपने दीर्घकालीन जीवन मे निराशा और असफलता की जिन ठोस वास्तविकताओ का सामना किया था उनके फल स्वरूप वह यह नही भूल सकता था कि जो भी माया कृत प्रपंच है वे 'जदपि असत्य देत दुख अहही।' अतएव दुखी प्राणियों के प्रति करुणा और सहानुभूति से उसका हृदय भरा हुआ था ओर केवल सिद्धान्तो से वह संतुष्ट होने वाला नही था। सिद्धान्तों से अधिक वह सरसता की खोज मे था। जब हम तुलसी के दार्शनिक विचारों की छान-बीन करें तो हमे सतत सतर्क रहना चाहिए कि हम उसकी जीवित अनुभूतियों का सूत्र छोड कर वाग्जाल मे तो नही फस रहे है। मेरा विश्वास है कि यदि हम भक्ति, प्रेम, समर्पण और साक्षात्कार की उस अनुपम कहानी को नजदीक से देखेंगे जो तुलसी के जीवन और उसकी कृतियों मे साफ झलकती है तो द्वैत अद्वैत, निर्गुण सगुण सम्बन्धी अनेक गुत्थिया अपने आप सुलझ जायगी और उसकी अनुभूतियों और उपलब्धियों की महत्ता और अर्थ गम्भीरता और भी निखर उठेगी।

यह तो तुलसी की कृतियों का साधारण पाठक भी देख सकता है कि तुलसी ने ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनो रूपों की चर्चा की है परन्तु उसका हृदय रमा है राम के सगुण रूप मे ही :—

जे ब्रह्म अजमद्वैत अनुभव गम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहु नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥

परन्तु जो बात सभी नही देख पाते और न देख पाने के कारण कवि के मार्मिक उद्गारों की तीव्रानुभूति मे वंचित रहते है वह है इस सगुन जस की वह दार्शनिक पृष्ठ भूमि और अनुभूति का ससार जिसको तुलसी ने स्वयं अपने हृदय का मथन करके तय्यार किया था और जिसके तय्यार करने मे कवि को उन अन्य पृष्ठ भूमियों और मान्यताओ का प्रभाव मिटाने की आवश्यकता भी थी जिन्होंने पहले से अपना रंग जमा रक्खा था।

स्वयं तुलसी ने तो अपने प्रभु को सगुण रूप मे ही पाया था और स्वभावत सगुण मार्ग उसका जाना पहचाना मार्ग था परन्तु वह यह भी जानता था कि सगुण रूप को लेकर विवादी क्या क्या वितन्डावाद खड़े कर सकते है, कैसे सगुण निर्गुण मे स्वाभाविक द्वन्द्व स्थापित करके उसे तर्क के अखाड़े मे घसीट सकते है और अपनी अनुभूति के जिस प्रकाश को वह बिखेरना चाहता है उसको तर्क के बादलो से ढक सकते है। उसे भली भाति मालूम था कि —

'निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुन न जानहि कोइ'

निर्गुन रूप को बौद्धिक स्तर पर समझ लेने मे तो कोई भारी कठिनाई नहीं है परंतु प्रभु से सगुण साक्षात्कार इतना सरलनही और इसी सगुन रूप की खोज पहचान और उद्घाटन मे तुलसी ने अपना समस्त जीवन और अपनी काव्य शक्ति लगा दी क्यों कि अपनी खोज के फलस्वरूप जो रस और आनन्द उसने पाया वह दिनों दिन और गाढा और गहरा होता गया

परमसत्ता कोगे दार्शनिकों के लिए लाख गुणातीत हो परन्तु उसके कुछ ऐसे स्वीकारात्मक गुण हैं जिनको कवि ने अपने जीवन मे देखा और पहचाना था। वह गुण है प्रभु की करुणा, भक्तवत्सलता, मानव हृदय की ग्रन्थियों को खोल कर उसे अभय प्रदान करने की उसकी स्पष्ट प्रवृत्ति। राम चरित मानस की सारी कथा इस प्रवृत्ति को चरितार्थ करने का महा संकल्प है। तुलसी के मन मे यह डर जरूर रहा होगा कि निर्गुण सगुण सम्बन्धी समस्याएँ यदि बनी रह गई तो लोग कथा के अर्थ का अनर्थ कर सकते है। सारी रामायण मे वह चेतावनी देता रहता है कि उसकी कथा किसी नर नायक या देवी देवता की कथा नही है वरन् जो अगुन अदभ्र गिरा गोतीता, सब दरसी अनवद्य अतीता, 'निर्मल निराकार निर्मोहा, नित्य निरंजन सुख संदोहा' है 'सोइ सच्चिदानन्द घन रामा'। और इस अनुभूति को जीवन का अग बनाने और सर्वजन सुलभ बनाने के लिए उसका भक्ति पूर्ण करुणापूर्ण हृदय इतना व्याकुल था कि उसने मानस की कथा आरम्भ करने के पहले ही कुछ मार्मिक चौपाइयों मे नाम महिमा और निर्गुन सगुन के द्वन्द्व सम्बन्धी प्रश्न का समाधान करने का अनुपम प्रयास किया है।

सौभाग्य वश इस शंका समाधान के बहाने उसने अपने आध्यात्मिक विश्वासो और अनुभूतियों की ऐसी सुन्दर व्याख्या भी की है कि उससे उसकी अपनी आध्यात्मिक स्थिति पर सीधा प्रकाश पडता है।

इस व्याख्या की मोटी बातें इस प्रकार है। यह जान लेना कि परम सत्ता निर्गुण गुणातीत अनिवर्चनीय है पर्याप्त नही। हमारी खोज के साथ एक अभीप्सा भी है, सम्पर्क स्थापित करने की, दरस परस की, शान्ति और विश्राम की। इस खोज और प्यास को शान्त किए बिना केवल निर्गुण निराकार की बातें करने से कुछ होता जाता नहीं। 'निसिगृह मध्य दीप की बातन्ह तम निवृत्त नहि होई।' अतएव कोई

उपाय तो अवश्य होने चाहिए उस परम सत्ता से सम्पर्क स्थापित करने के। कोई उपाधिया तो ऐसी होनी ही चाहिए जिनके द्वारा उस तक हमारी पहुँच हो सके। तुलसी का कहना है कि यह उपाधिया दो है नाम और रूप और इन्ही दो डोरियों के सहारे ससार की भूल भुलैया से निकल कर शान्ति और आनन्द के विश्रामस्थली मे प्रवेश किया जा सकता है।

नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझ साधी॥

नाम और रूप वैसे तो अनिवर्चनीय है, अनादि है, कहने मे नही आते, परन्तु निर्मल बुद्धि और सुलझी हुई सूझ बूझ हो तो ऐसा भी नही कि इन अविनाशी उपाधियो का स्वरूप समझा न जा सके। वैसे तो नाम और नामी एक से समझ पड़ते है 'समुझत सरिस नाम अरु नामी' परन्तु दोनो का कुछ ऐसा पारस्परिक सम्बन्ध है कि नामी नाम का अनुगामी है और अपना नाम सुनते ही नामी अपने नाम के पीछे ऐसा दौड़ता है जैसे नाम स्वामी हो और नामी अनुचर—'प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी'। एक गहरी पारस्परिक प्रीति के फल स्वरूप नामी प्रभु नाम का वशवर्त्ती हे। कहने मे यह कुछ अटपटा जरूर मालूम होता है ऐसा दिखाई देता है जैसे नाम को बड़ा और राम को छोटा बताया जा रहा हो। परन्तु ऐसा केवल बौद्धिक विश्लेषरण की आवश्यकताओ, गुरण भेद समझने के लिए है। साधु पुरुष जो अनुभव द्वारा वास्तविकता से सुपरिचित है इस शाब्दिक अनौचित्य के पीछे छिपी हुई सचाई को स्वयं ही समझ जायेगे।

को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू॥

गुरण भेद की दृष्टि से तो रूप नाम के अधीन है नाम न हो तो रूप का ज्ञान नही हो सकता।

देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम विहीना॥

नाम लेने ही पर रूप का बोध होता है बिना नाम के जाने चीज हथेली मे ही क्यों न रक्खी हो पहचानी नही जाती।

रूप विशेष नाम बिनु जाने। करतल गत न परत पहिचाने॥

इसके विपरीत बिना रूप के देखे भी नाम के स्मरण मात्र से हृदय विशेष प्रेम से भर जाता है।

सुमिरिय नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदय सनेह विसेषें॥

अतएव नाम की महिमा अद्वितीय है। तुलसी के जीवन का तो नाम का प्रभाव केन्द्रीय अनुभव है। नाम के प्रभाव ने तुलसी के जीवन को और जीवन के प्रति दृष्टि कोण को पूरी तरह बदल दिया। परन्तु नाम के चमत्कार की सचाई अनुभव द्वारा ही जाची जा सकती है और जो अनुभूति की चीज है उसका वर्णन करना भी कठिन है।

नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परत बखानी॥

फिर भी जिज्ञासुओ के कल्याणार्थ नाम के रहस्य के उद्घाटन मे तुलसी ने ऐसी गहरी दार्शनिक छानबीन की क्षमता का प्रदर्शन किया है कि पाठक सोचे बिना नही रह सकता कि यदि वह दृष्टा कवि और आनन्द विभोर भक्त न होता तो वह कितनी उच्च कोटि का दार्शनिक और तत्ववेत्ता होता।

एक गहरे प्रश्न के उत्तर मे वह अपनी व्याख्या की रूप रेखा बनाता है। वह गहरा प्रश्न तुलसी ही का नही जीवन पर गम्भीर दृष्टि से विचार करने वाले प्रत्येक जिज्ञासु का प्रश्न है। सब कहते है कि ब्रह्म व्यापक है, अविनासी है, सच्चिदानन्द है परन्तु यह भी कैसी भारी बिडंबना है कि ऐसे आनन्द घन प्रभु के हृदय ही मे होते हुए समस्त जगत और जीव मात्र दीन और दुखी है।

व्यापक एकु ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥

इस बिडम्बना का, जीवन को एक अर्थ हीन पहेली बनाने वाली इस बिडम्बना का, उत्तर ढूंढ निकालने मे साहित्य दर्शन, मानव जीवन युग २ से लगा रहा है। तुलसी का इस विषय मे अपना अनुभव है और अपना सुदृढ सुनिश्चित, सुस्पष्ट उत्तर।

नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन तें।

नाम के निरूपण से, नाम के यत्न स वह अविनाशी निर्गुण ब्रह्म भी ऐसे प्रकट होता है जैसे यदि आप के पास रत्न हो और आप उसके नाम और मूल्य को समझें और पहचाने तो आप को और कुछ करना नही उसी रत्न से सब प्रकार की उपलब्धिया सम्भव है।

नाम के समुचित निरूपण से नाम रूपी रत्न को पहचान लेने पर, सभी शंकाए और दुश्चिन्ताएं ऐसी दूर हो जाती है और सभी वास्तविक आवश्यकताए ऐसी पूरी हो जाती है जैसे रत्न पास होने पर सभी वस्तुएं सुलभ हो जाती हैं।

नाम निरूपण तुलसी कई स्तरो पर विविध दृष्टि कोणो मे, अनेक युक्तियों और दृष्टान्तो की सहायता से करता है। पहले तो वह निर्गुण और सगुण के संदर्भ मे नाम की महत्ता बताता है क्योंकि जिज्ञासु के मन मे सब से बड़ा द्वन्द्व तो निर्गुण और सगुण, ज्ञान और भक्ति मे विभेद करके उत्पन्न किया जाता है। तुलसी इस विषय मे किसी मत मतान्तर का साक्ष्य नही वरन् अपने अभ्यन्तर का साक्ष्य पेश करता है। उसका कहना है कि अगुण और सगुण ब्रह्म के दो स्वरूप है और इन दोनों स्वरूपों की कहानी अकथ, अथाह, अनुपम, अनादि है

अगुन सगुन दुई ब्रह्म स्वरूपा। अकथ, अगाध, अनादि अनूपा॥

परन्तु जहा तक इस प्रश्न का सम्बन्ध नाम से है वहा तक मेरा अपना अनुभव है कि नाम सगुण और निर्गुण दोनो के ऊपर है और सगुण और निर्गुण दोनों को अपने बल, प्रभाव, शक्ति से अपना वशवर्त्ती किए

मोरे मत बड़ नाम दुहू तें । किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें ।।

यह अनुभूति उसकी इतनी अपनी निजी अनुभूति है कि अपना ज़िक्र न करने के स्वभाव को छोड़ कर वह इस बात पर जोर देता है कि यह मेरा अपना मत है । और 'मोरे मत' कहने से शायद उसकी अपनी निजी अनुभूति पूरी तरह न व्यक्त होती हो इस लिये वह इस बात को एक पूरी चौपाई मे फिर दुहराता है ।

प्रौढ़ सुजन जनि जानहि जन की ।
कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की ।।

'सज्जनो, विद्वज्जनो !' इस मेरी उक्ति को कृपा करके मेरी प्रौढ़ि, केवल मेरी ढिठाई या कविताई न समझ बैठियेगा, जो बात मैने नाम के विषय मे कही है व मेरी अनुभूति है जिसकी प्रतीति मैने अपनी अन्तरात्मा मे की है जिसकी सचाई मैने अपने रग २ मे जाची है जिसे अपने अन्तस्तल के प्रेम मे मैने प्राप्त किया है जो मेरे मन की स्वाभाविक रुचि के अनुकूल है ।

कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की ।

परन्तु तुलसी को मालूम था कि अपनी अनुभूति को जिज्ञासु के हृदयंगम कराने के लिए बौद्धिक विश्लेषण और दृष्टान्त अपेक्ष है और वह बुद्धि द्वारा तथ्यों को समझने के आदी जिज्ञासुओ के लिए ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने के विषय मे सुन्दर विवेचना करता है । उसका कहना है कि ब्रह्म ज्ञान तो सदैव अग्नि के समान एक है चाहे सगुण ब्रह्म की खोज हो या निर्गुण ब्रह्म की । निर्गुण ब्रह्म ज्ञान उस अप्रकट अग्नि के समान है जो दारुगत, काठ में छिपी हुई है और दिखाई नही देती; सगुण उस प्रकट अग्नि के समान है जो अग्नि शिखा का रूपधारण किये हुए सब को दिखाई देती है परन्तु अग्नि प्रकट हो या प्रच्छन्न, ज्ञान सगुण ब्रह्म का हो या निर्गुण का दोनों दशाओं मे अगम है । प्रश्न तो यह है

कि यह जानकारी कि ब्रह्म ज्ञान अगम है किस काम की ! जानकारी तो वही जानकारी है और 'जतन' वही 'जतन है जो अगम को सुगम बनावे। यह अगम को सुगम बनाने वाला काम नाम का है।

एकु दारु गत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू।
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥

जो नाम ऐसा कल्याणकारी गुणकारी है कि अगम को सुगम बनाता है और ऐसा शक्ति सम्पन्न कि निर्गुण और सगुण दोनो उसके वशवर्त्ती है उसको निर्गुण ब्रह्म और सगुण राम से भी बडा कहने मे कवि को कोई अतिशयोक्ति नही मालूम होती क्योंकि कि नाम की यह महिमा उसके लिए तार्किक पिष्ट पेष्ण और टीका व्याख्या का विषय नही है उसने प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा नाम को सद्य फल दायक पाया है। परन्तु जिनके इस विषय मे अपने अनुभव नही है वे नाम को सगुन और निर्गुन दोनों से बडा और अधिक शक्ति सम्पन्न मानने म आना कानी कर सकते है। ऐसे लोगो को वह बताता है कि किस प्रकार नाम न केवल निर्गुन और सगुन को अपने वश मे किए हुए है।

किय जेहि युग निज बस निज बूतें।

बल्कि दोनो के बीच की खाई को पाटने मे सबसे अधिक सक्षम है। असलियत तो यही है कि सगुण और निर्गुण मे कोई वास्तविक द्वन्द्व नही है परन्तु इस गूढ़ रहस्य का कोई साक्षी, प्रबोध कराने वाला आवश्यकता पड़ने पर एक पक्ष की बात का दूसरे पक्ष की भाषा मे रूपान्तर करने वाला यदि है तो वह नाम ही है।

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी॥

साक्षी, प्रबोधक दुभाषिया अत्यन्त अर्थपूर्ण शब्द है। अपनी साधना मे तुलसी ने नाम को अगुन सगुन के द्वन्द्वो को मिटाने वाला, दोनो की एकता का बोध कराने वाला, शब्द जाल को काट कर वास्त-

विकता को हृदयंगम कराने वाला स्वयं पाया होगा। तुलसी जैसे सगुन जस के गाने वाले के लिए नाम को निर्गुन से बडा बताना इतना अर्थ पूर्ण नही जितना उसका यह कहना कि नाम राम से भी बडा है परन्तु वह सच्चे हृदय से कहता है कि नाम राम से भी बडा है। राम भक्त की पुकार पर मानव शरीर धारण करते हैं अनेक कष्ट सहन करते हैं और तब कही भक्त का मन रख पाते है, परन्तु नाम की महिमा देखिए प्रेम के साथ नाम का जप करके भक्त जन सहज ही मे स्वय आनन्द और कल्याण के आवास हो जाते है।

राम भगत हित नर तनुधारी। सहि सकट किए साधु सुखारी॥
नाम सप्रेम 'जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मङ्गल वासा॥

अतएव आप निरूपण द्वारा निर्गुण ब्रह्म की खोज मे हो या प्रेम द्वारा प्रभु से साक्षात्कार करना चाहते हों दोनो दशाओं मे आप का एक मात्र आधार नाम है। मानव रूप धारण करके राम ने जो भी चमत्कार किये है उन सब से बडा चमत्कार वह है जो नाम द्वारा मनुष्य के हृदय मे होता है और जो जीवन के समस्त क्लेश, द्वन्द्व, कालिमा को दूर करता है।

राम एक तापस तिय तारी। नामु कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि हित राम सुकेतु सुता की। सहित सेन सुत कीन्ह विनाकी॥
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रवि निस नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भञ्जन नाम प्रतापू॥
दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किए पावन
निसिचर निकर दले रघुनंदन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥

सबरी गीध सु सेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल वेद विदित गुन गाथ॥

राम सुकंठ विभीषन दोऊ। राखे सरन जान सब कोऊ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक वेद वर विरद विराजे॥

राम भालु कपि कटकु बटोरा । सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा ॥
नामु लेत भव सिंधु सुखाहीं । करहु विचारु सुजन मन मांही ॥

सज्जनों जरा विचार करके देखिये कि राम और नाम मे कौन बडा है । राम ने तो एक अहिल्या को तारा, नाम ने करोडो दुष्टो की बिगडी बुद्धि को सुधार दिया । राम ने तो अपने उपस्थिति से केवल दंडक बन को सुशोभित किया, परन्तु नाम ने तो अगणित हृदयों को आलोकित किया, राम ने तो कुछ राक्षसो ही का सहार किया नाम तो कलि के समस्त पापो को जड़ से उखाड़ कर फेंकता है । समुद्र पार करने के लिए पुल तय्यार करने मे तो राम को बहुत श्रम करना पडा परन्तु भवसागर को सुखाने वाला तो नाम ही है । सुर मुनि राम की रावण पर विजय और अयोध्या मे राम राज्य का बडा यशोगान करते है परन्तु प्रेमी भक्त जन प्रेम सहित नाम स्मरण करते ही, बिना परिश्रम के, मोह कटक पर विजय प्राप्त कर के संसार मे निर्भय हो आनन्द रस मग्न घूमते है ।

राम सकुल रन रावनु मारा । सीय सहित निज पुर पगु धारा ॥
राजा रामु अवध राजधानी । गावत गुन सुर मुनि बर बानी ॥
सेवक सुमिरत नाम सुप्रीती । बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती ॥
फिरत सनेह मगन सुख अपने । नाम प्रसाद सोच नहिं सपने ॥

स्पष्टत. नाम का तुलसी के दर्शन मे सर्वोपरि स्थान है उस के लिए नाम सबसे बडा साधन और सबसे बडा साध्य है निर्गुण ब्रह्म और सगुण राम भी नाम से बड़े नही है । ब्रह्म राम ते नामु बड बरदायक बरदानि ।

तुलसी नाम को ऐसा शाश्वत, व्यापक, सर्वशक्तिमान तत्व मानता है कि वह प्रभु मे लीन, जीवन मुक्त आत्माओ के आनन्द के पीछे इसी महान् मूल मन्त्र को काम करता हुआ पाता है । उसका विश्वास है कि जीव शोक रहित केवल नाम जप द्वारा होता ही है ।

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका । भए नाम जपि जीव बिसोका ॥

अतएव एक ओर तो वह शिव नारद, ध्रुव, हनुमान, अजामिल की कथाओं की याद दिलाता है क्योंकि उसके लिए यह दृष्टान्त कथा कहानी नही है वरन् आध्यात्मिक अनुभूति के जीते जागते उदाहरण है और दूसरी ओर स्वयं अपने ही जीवन की अनुभूतियों की साक्ष्य देता है :—

नाम प्रसाद संभु अविनासी। साजु अमंगल मंगल रासी।
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी ॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि २ हर प्रिय आपू ॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू ॥
ध्रुवसगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ॥
सुमिर पवन सुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू।
अपतु अजामिल गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ।
कहँउ कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई।

नाम द्वारा राम को वश मे करने वाले इन महान राम नाम के प्रेमिओं के अनुभवों की सचाई तुलसी अपने निजी अनुभवों की सचाई से पुष्ट करता है।

नाम रामको कल्पतरु कलि कल्यान निवास,
जो सुमिरत भयो भांग तें तुलसी तुलसीदास।

अपने जीवन मे राम नाम के चमत्कार पर जब तुलसी दृष्टि डालता है तो वह देखता है कि घास-फूस जैसा नगण्य वह यदि पूज्य और पवित्र हो गया, तो यह राम नाम के स्मरण से ही। और यह याद आते ही उसका हृदय कृतज्ञता से गदगद हो जाता है

वह सोचता है कि यह अहेतुकी कृपा की बर्षा जो प्रभु ने उसके ऊपर की है उसमे प्रभु की कृपा ही कृपा थी उसकी अपनी योग्यता तो कुछ भी नही थी और वह अपने जीवन की महानतम और अन्यतम अनुभूति का उद्घाटन करता है जिसके प्रकाश मे नाम महिमा के विषय मे उसकी उक्तियों की सार्थकता प्रकट होने लगती है। वह देखता है कि

संसार के आश्रयदाता जब दया करते है तो गुण दोष देख कर समझ बूझ कर ।

गनी गरीब ग्राम ।नर नागर । पंडित मूढ़ मलीन उजागर ।
सुकवि कुकवि निज मतिं अनुहारी । नृपहि् सराहत सब नर नारी ।।
साधु सुजान सुसील नृपाला । ईस अंस भव परम कृपाला ।।
सुनि सनमानहिं सबहि् सुबानी । भनिति भगति नति गतिपहिचानी ।।
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ

साधु, बुद्धिमान, सुशील, ईश्वर अंश महिपाल की सराहना तो सभी-अमीर, गरीब, गँवार, शिष्ट, पण्डित, मूर्ख, वदनाम, यशस्वी,—करते है और प्राकृत महिपाल भी वाणी, भक्ति विनय, चरित्र पहचान कर सम्मान देते है परन्तु प्रभु की कृपा के ढंग कुछ दूसरे ही है। कवि कहता है संसार मे मुझसे बढ़कर, मूर्ख और मलिनमति कौन होगा, मेरे पापों की गिनती सुन कर नरक भी नाक सिकोड लेगा । उन पापो को जो मै सोचता हूँ तो मुझे अपनी ही डर से डर लगता । परन्तु प्रभु ने तो स्वप्न मे भी मेरी त्रुटिओं कुचालो की सुधि नही की, वे तो मेरे जैसे दुष्ट सेवक की भी प्रीति का मान रखते रहे।क्योंकि पत्थर को जहाज और बंदरो को मंत्री बनाने वाले प्रभु की यह बान ही है कि वे हृदय देखते है वाणी, बुद्धि, चरित्र की जाच नही करते—

रीझत राम सनेह् निसोंतें को जग मंद मलिन मति मोतें
सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु
उपल किए जलजान जेहि् सचिव सुमति कपि भालु
हौहूँ कहावत सबु कहत राम सहत उपहास
साहिब सीतानाथ सों सेवक तुलसी दास

अति बड़ि मोरि दिठाई खोरी सुनि अघ नरकहुँ नाक सिकोरी
समुझि सहम मोहि् अपडर अपने सो सुधि राम कीन्ह् नहिं सपने

यही नही कि प्रभु ने मुझे अपने पापों के संबन्ध मे कल्पित आशंकाओं के भय से मुक्त किया, मेरे दोषों पर स्वप्न मे भी ध्यान नही दिया, वरन् उलटे अपने सुचित चक्षुओं से देख कर मेरी भक्ति और मति की सराहना की। यह बात कहने मे आती नहीं परन्तु वास्तविकता यही है प्रभु जन के जी की जान कर उस पर रीझ जाते है उनके मन मे भक्त की भूल चूक का ख्याल भी नही उठता सौ-सौ बार वे भक्त के हृदय ही की ओर देखते है।

सुनि अवलोकि सचित चख चाही, भगति मोरि मति स्वामि सराही
कहत नसाइ होइ हियें नीकी, रीझत राम जानि जन जीकी।
रहति न प्रभु चित चूक किए की,करत सुरति सय वार हिए की।

प्रभु की कृपा की इस विशेषता के ही कारण तुलसी की नाम के प्रभाव मे अगाध श्रद्धा है। नाम उसके लिए एक रहस्य मय धार्मिक कृत्य नही है वह शरणागति का एक ऐसा प्रतीक है जो उन सभी कृत्यों और प्रयासों मे निहित है जो प्रभु की कृपा को आकृष्ट करने के लिए किए जाते है।

नाम जीहँ जपि जागहि जोगी। विरति विरंचि प्रपंच वियोगी ।।
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा ।।
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जींह जपि जानहिं तेऊ।
साधक नाम जपहिं लय लाएं। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएं ।।
जपहि नामु जन आरतभारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी।
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा ।।
चहूँ चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहिं विशेष पियारा।
चहुँ जुग चहुँ श्रुतिनाम प्रभाऊ। कलि विसेषि नहि आन उपाऊ।।

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन,
नाम सुप्रेम पियूष हृद तिनन्हुँ किए मन मीन।

संसार के प्रपञ्च से मुक्त विरक्त योगी से लेकर संकट म घबडाए हुए आर्त तक और आर्त से लेकर सकल कामना हीन राम रसलीन भक्त तक सभी नाम के अमृतमय सरोवर के जल मे मछली की तरह डूबे रहते है।

अतएव नाम की कहानी अकथ है और भीतर वाहर के अन्धेरे को दूर करने का यदि कोई एक साधन है तो वह नाम है और उसी का आश्रय लेना चाहिए।

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार,
तुलसी भीतर बाहिरेहुँ जौ चाहसि उजियार।

तुलसी का निश्चित मत है कि मुख रूपी द्वार की जीभ रूपी देहली पर राम नाम रूपी मणि दीप रख कर ही भीतर और बाहर उजियाला किया जा सकता है और सच तो यह है कि इसी मणि दीप को ऊँचा करके तुलसी साहित्य मन्दिर के रहस्यमय कोने भी प्रकाशित किये जा सकते हैं।

तुलसी के नाम विषयक विचारो के दार्शनिक आधार पर बहुत कुछ लिखा गया है। भाव साम्य, तुलना और स्रोतो की खोज मे विश्वास रखन वाले लेखको ने भारतीय दर्शन के अनेकानेक उद्धरणों द्वारा इस बात को दिखाया है कि नाम महिमा की भारतीय विचारधारा मे पुरानी परम्परा है। अपने गवेषणापूर्ण ग्रन्थ 'द पाथ वे टु गाड' मे अनुपम विद्वान दार्शनिक और साधक प्रोफेसर रानाडे ने अपनी अपूर्व जानकारी के सहारे नाम रूप सम्बन्धी तुलसी के विचारो की तुलना संसार के बड़े से बड़े दार्शनिकों के विचारों से की है। उन्होंने दिखाया है की परम सत्ता का चिन्तन करने के लिये स्पिनोजा ने जिस उपाधि शब्द का प्रयोग किया है उसमे और तुलसी के 'नाम रूप दुइ ईस उपाधी' मे आश्चर्य जनक साम्य है। ईसाई मत मे मनुष्य और ईश्वर के बीच जैसे लोगस मध्यस्थता करता है, साख्य मे जिस प्रकार बुद्धि प्रकृति और पुरुष मे मध्यस्थता करती है पाश्चात्य दार्शनिक कान्ट की

शब्दावली में जो स्थान नूमेना का है वही स्थान तुलसी की विचारशैली मे नाम का है। सत्य एक है उसकी झाकिया चाहे जितनी बनाई जाए" और इस तुलनात्मक अध्ययन से यह तो स्पष्ट ही है कि तुलसी के नाम सम्बन्धी विश्वासों की दार्शनिक भूमि कितनी सुदृढ है। परन्तु यह धारणा कि तुलसी की नाम मे आस्था केवल बौद्धिक और दार्शनिक कारणों से थी अत्यन्त भ्रामक होगी। जिस अगाध अडिग विश्वास के साथ तुलसी नाम की महिमा गाता है, नाम ही को अपने जीवन का सर्वोच्च अनुभव और प्रकाश मानता है उससे इस विषय मे कोई सन्देह नही रह जाता कि उसकी प्रेरणा का मूल स्रोत और मूलाधार उसका निजी अनुभव है। यह दूसरी बात है कि अपने अनुभव को वह तर्क की कसौटी पर भी जाच कर खरा पाता है परन्तु इसमे सन्देह नही कि कर्म, उपासना, ज्ञान के दरवाजों को झाकने के बाद उसने नाम की उद्धारिणी शक्ति को ही सर्वोपरि पाया। मानस ही मे नही कवितावली, विनय पत्रिका आदि प्रौढ़ कालीन रचनाओं मे भी उसके अनुभव की आधारभित्ति यही है और उसकी निजी अनुभूति की सहायता से हमे इसका कुछ आभास मिल सकता है कि नाम से उसका क्या अभिप्राय है।

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो।
करम उपासन ग्यान वेदमत सो सब भांति खरो॥
मोहि तो सावन के अँधहि ज्यों सूझत रंग हरो।
चाटत रह्यौ स्वान पातरि ज्यों कबहुं न पेट भरो॥
सो हौं सुमिरत नाम सुधा रस पेखत परुसि धरो।
स्वारथ औ परमारथ हू को नहिं कुंजरो नरो॥
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक तरो।
प्रीति प्रतीति जहां जाको तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय बाप दोउ आखर हौं सिसु अरनि अरो।

संकर साखि जौ राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो ॥
अपनो भलो राम नामहिं ते तुलसिहिं समुझि परो ।

विनय के इस पद मे छिपी जो आध्यात्मिक आत्मकथा है उसकी पकड़ हुए बिना किसी दार्शनिक परिपाटी धार्मिक पद्धति या मागी जाची मान्यता का तुलसी के ऊपर आरोप करना जान बूझ कर वास्तविकता से आंख चुराना है। यदि हम स्पष्ट रूप से समझ लें कि किन राहों मे तुलसी उन परिणामों पर पहुँचा जिनका आरोप उस पर किया जाता है तो अनेक विवादों और शङ्काओं का समाधान स्वत: हो जाय क्योंकि साधनों से अलग करके सिद्धि का रूपनिर्धारित करना एक बहुत बड़ी गलती है। तुलसी के विषय मे जो वहसें इस बात पर चलती हैं कि वह वेदान्ती है, अद्वैतवादी या विशिष्टाद्वैतवादी उसका एक प्रधान कारण यह है कि हम यह मान लेते है कि हमारी ही तरह तुलसी ने भी अपने विचार किन्ही पुस्तकों, प्रवचनो, व्याख्यानों द्वारा प्राप्त किया जब कि बात ऐसी नही है। उसके सभी विश्वास सच्ची आत्मानुभूति और आजीवन साधना के फल है और इस अनुभूति और साधना के प्रकाश मे ही उसके विश्वासों का रङ्ग रूप पहचाना जा सकता है। तुलसी की अनुभूति और खोज ने उसको जो दृष्टि दी उसके कारण वह जीवन और संसार को एक दूसरे ही रङ्ग मे देखता है एक ऐसे रङ्ग मे जो वह रङ्ग तो नही ही है जिसमे हम जीवन और संसार को देखते है और न वही रङ्ग है जो तर्क और ज्ञान पर भरोसा रखने वाले बुद्धिजीवियों का है। उसका ससार एक बदला हुआ संसार है उसकी अनुभूति के रङ्ग मे रङ्गा हुआ नया संसार जो सिया राम मय है, राम नाम की प्रवाहिनी से प्लावित है, जिस पर दूसरा कोई रङ्ग चढ ही नही सकता।

मोहि तो सावन के अधहि सो सूझत रङ्ग हरो ।

सियाराम मय इस नए ससार मे स्वभावत: उसे सभी कुछ हरा हरा दिखाई देता है सभी कुछ शुभ, कल्याणप्रद अपनी जगह पर दुरुस्त,

रघुपति कृपा वारि छालित। एक समय था जब वह भी इधर उधर दूसरों के ज्ञान की पत्तलों पर पड़े जूठे टूकडों को चाटता फिरता था और उसको याद है उस समय सदा अतृप्ति ही बनी रहती थी 'कबहु न पेट भरो' परन्तु राम नाम का सुधारस चख लेने के बाद अब उसे सभी कुछ प्रत्यक्ष दिखाई देता है ऐसा प्रत्यक्ष जैसे सामने धरा हो। अब उसे स्वार्थ और परमार्थ के द्वन्द्व उद्विग्न नही करते, कृत्रिम दीवारे हट गई उनके विषय मे नरो या कुञ्जरो वाली संशयपूर्ण स्थिति नही रही। कपियों ने पत्थरों का पुल जोड कर समुद्र पार कर लिया तो बडा भारी चमत्कार हुआ इससे भी बडा चमत्कार उसके अन्तस्तल मे हुआ क्यों कि राम नाम का पुल बाध कर उसने भवसागर पार कर लिया। अतएव उसको भरोसा है तो राम ही की प्रीति और प्रतीति का, उसके मा बाप है तो राम नाम के दो अक्षर, वह सौगन्ध खा कर कह सकता है कि उसको तो अपना भला राम नाम ही मे दिखाई देता है।

यह अनुभूति कि वह राम नाम रूपी कल्प वृक्ष की छाया मे है उसे घन घोर घटाओं और कडी धूपो से डर नही, यमपुर सुरपुर, परम-धाम की फिक्र नही, राम नाम के आश्रय मे उसके लिए यही जग जीवन बहुत अच्छा है उसकी कविता मे व्याप्त है।

बैठे नाम काम तरु-तर डर कौन घोर घन घाम को
को जानै को जैहे जमपुर को सुरपुर परधाम को
तुलसिहि बहुत भलो लागत जग जीवन राम गुलाम को

समर्पित जीवन के निर्भयता और निश्चिन्तता की इस स्थिति के मूल मे न तो कोई तर्क शैली थी न विचार पद्धति। इसके मूलाधार थे ठोस आत्मानुभूति और साधना। तुलसी उन विद्यावागीशों और तर्क चूड़ा मणियों मे नही था जिसके लिए ज्ञान मात्र पर्याप्त हो उसने जीवन मे बहुत निराशायें और यातनाएं झेली थी वह इस जीवन की पहेली को सुलझाना चाहता था। उसके लिये यह जान लेना पर्याप्त नही था

कि नाम रूप दुइ ईस उपाधी । वह उत्सुक था नाम की पतित पावनी कलिमल हारिणी शक्ति को अपने ही जीवन मे क्रिया शील देखने के लिए, वह व्याकुल था प्रभु की रूप माधुरी का साक्षात्कर करने को और उसने खोजा और पाया कि राम नाम द्वारा सभी कष्ट मिट जाते है स्वार्थ और परमार्थ के सभी प्रश्न हल हो जाते है और इस उपलब्धि, के आह्लाद मे उसकी कविता गूंजती है ।

नाम राम रावरोई हित मेरे ।
स्वारथ परमारथ साथिन्ह सों भुज उठाइ कहौं टेरे ।।
जननी जनक तज्यो जनमि करम बिनु विधिहु सृज्यो अवडेरे ।
मोहुँ सों कोउ-कोउ कहत रामहि को सो प्रसंग केहि केरे ।।
फिरयौ ललात बिनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहि हेरे ।
नाम प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरे ।।
साधत साधु लोक परलोकहिं मुनि गुनि जतन घनेरे ।
तुलसी के अवलंब नाम को एक गांठि बहु फेरे ।।

कवि ने अपने ही जीवन मे राम-नाम का चमत्कार देखा था । एक ओर तो वह जन्म कर्म का ऐसा हीन कि माता पिता ने भी जन्मते ही त्याग दिया और भाग्य भी कुछ ऐसा बेढंगा कि विधाता ने स्वय ही रचा हो । राम नाम का विश्राम जब तक नही मिला था पेट के लिए दर-दर मारा फिरता था ऐसा दुखियो मे दुखी था कि दुख भी उसका दुख देख कर दुखी होता था और राम नाम का सहारा पा जाने पर परिवर्त्तन देखिये कि नीरस भी सरस हो गया बबूलो और वहेडो मे भी उसे रसाल का रस मिलने लगा । श्रवण मनन चितन आदि जिन अनेक साधनों द्वारा संत जन अपना लोक परलोक साधते है उन सौ साधनो का उसका एक साधन राम नाम है । साधन अनेक हो सकते है फेरें लपेटें चाहे जितनी भी हो परन्तु गाठ एक ही है राम नाम की ।

स्पष्टत इन उद्गारो मे अनुभूति का उल्लास है । नाम निरूपण की दार्शनिक पृष्ठ भूमि पर माथापच्ची करने वाले विद्या व्यसनी और

तार्किक की रुचि इन उद्‌गारो मे नही। नाम अब उसके लिए जीवन दर्शन नही जीवन ज्योति है। वह सारे मायाकृत दोष गुण जिनके कारण वह दर-दर भटकता था और दुख-सुख के झोंको से उद्विग्न होता था अब कोई अर्थ नही रखते। अब वह प्रतिकूलता मे अनुकूलता, बबूल मे रसाल, धूप मे छाया का अनुभव करता है क्योंकि राम नाम ने उसकी उन सभी जन्म कर्म की ग्रन्थियों को विगलित कर दिया है जिनके कारण वह उद्विग्न, त्रस्त, भयग्रस्त था। अब वह अपने स्वार्थ और परमार्थ की गुत्थियो की खोज मे साथ देने वाले साथियों सहयात्रियो से हाथ उठा कर उस नाम के प्रसाद का गुण गान कर सकता है जो साधन भी है और साध्य भी। अब उन साधनो, चिन्तन मनन अनुशीलन आदि की असलियत वह जान गया जिनमे वह और उसके साथी लगे हुए थे, ये फेरे तो हजारो है परन्तु केन्द्रीय गाठ राम नाम है क्योकि वह द्वन्द्व रहित, गुण दोष रहित जीवन का मूल मंत्र है।

इस मूल मत्र से उसको निश्चिन्तता मिली, मोह भ्रम मे छुटकारा मिला, वह दृष्टि मिली जिसने उसको वास्तविकता का असली स्वरूप दिखाई देने लगा। परन्तु नाम तो ईसकी एक ही उपाधि है। तुलसी को प्रभु की दूसरी उपाधि, रूप की खोज भी थी। और इस रूप की आरती उतारने की उसकी आकाक्षा ऐसी तीव्र और गहरी थी कि यदि हम कहे कि इस रूप की आरती ही से उसकी समस्त कृतिया जगमगाती है तो अत्युक्ति नहो होगी। अतएव यह प्रभु मूर्ति दर्शन तुलसी के आशय को समझने के लिए उतना ही आवश्यक है जितना नाम निरूपण।

———

तीसरा अध्याय

प्रभु मूरति

मुकुर मलिन अरु नयन विहीना राम रूप देखहिं किमि दीना
अगुन अरूप अलख अज जोई भगत प्रेम बस सगुन सो होई

नाम के साथ साथ रूप की खोज तुलसी के लिए अत्यन्त स्वाभाविक थी। नाम और रूप मे तुलसी की रुचि एक तटस्थ विचारक की नही थी वरन् एक ऐसे साधक की जिसे प्रभु की मूर्ति अपने चारो ओर दिखाई देती थी। उसके लिए सब जग का सियाराम होना केवल एक दार्शनिक मान्यता नही थी वरन् एक ऐसी जीती जागती वास्तविकता जिसको वह जीवन मे क्रियाशील पाता था। तुलसी को हम समन्वय स्थापित करने का श्रेय देते है परन्तु उसका समन्वय कोशिश करके स्थापित किया गया एक कृत्रिम समन्वय नही है वरन् उस लोकोत्तर अनुभूति का सहज परिणाम जो उसने राम से आत्मीयता स्थापित करके, राम के रूप को पहचान कर, प्राप्त की। जो समता तुलसी के लिए स्वाभाविक है वह चाहे हमे समन्वय स्थापित करने का प्रयास जान पड़े परन्तु उसका स्रोत उसकी अन्यतम अनुभूतियों मे है और इन अनुभूतियों मे पहला स्थान, जैसा हमने देखा, राम नाम का है।

छमत विमत न पुरान मत एक मत
नेति नेति नेति नित निगम करत
औरनि की कहा चली ? एकै बात भला भली
राम नाम लिए तुलसी हूँ ते तरत।

जो बात हम नही देख पाते वह यह कि राम नाम का उस काव्य जगत मे क्या संबन्ध है जिसकी कवि ने सृष्टि की। वह जगत तो रामायणी कथा के विस्तार का जगत है उसमे तो सारा महत्व कथानक, चरित्र चित्रण, वर्णन के प्रवाह, साहित्यिक अभिव्यक्ति का है स्वभावत. जिस सम्बन्ध को हम नही देख पाते उसकी चर्चा ही नही करते या जान बूझ कर उसकी उपेक्षा करते है फलत काव्य रूप, शैली, चरित्र चित्रण की भूल भुलैया मे हम ऐसे खोए रहते है कि उस जीवन दर्शन और जीवन के प्रति दृष्टि कोण को नही पकड पाते जिनसे वह प्रभावित है और जो उसको प्रेरणा देते है। वर्णन, चित्रण, शैली सभी तुलसी साहित्य मे है परन्तु इन सब के पीछे कवि की राम नाम रसमग्नता है और उसकी दृष्टि मे राम नाम रस मग्न होने के मानी है हमारे जीवन के प्रति दृष्टिकोण मे आमूल चूल परिवर्तन, उस सशंय और अहकार के जीवन का उन्मूलन जो एक आवरण के समान हमारी दृष्टि मे बाधा डालता है, हमे आनन्द और निर्भयता के जन्म सिद्ध अधिकार से वंचित करता है और उस चेतन जागृत अवस्था मे नही प्रवेश करने देता जिसमे समस्त संसार राममय है और राम के आश्रय के अतिरिक्त न कोई आश्रय है न भरोसा।

तुलसी ने जो राम का रूप देखा वह यही कि वाह्य जगत के पीछे एक सत्ता है जो सदाशय है, करुणामय है जिसका हमारा निकट सम्बन्ध है और जिससे सम्पर्क स्थापित करने के लिए हमे केवल सरल हृदय से उसकी ओर उन्मुख होना है। इस रूप की अनूभुति कवि को अपने जीवन मे हुई थी और इस अनुभूति को पाठकों तक पहुँचाने के लिए उसका संवेदन शील सत हृदय छटपटाता भी रहता था।

वैसे तो ब्रह्म निरूपण के दार्शनिक स्तर पर अनेक प्रयास हुए है। तुलसी की महानता का माप दन्ड यही है कि उसने अपनी अमर रचनाओ मे सरल मानवीय भावनाओं को स्पर्श करने वाले तरीको से राम

के उस रूप की झांकिया दी है जो उसने स्वयं देखा है और जो यदि हम देखना चाहे तो हमसे दूर नही है। सच पूछिए तो जिन अनुभूतियो को तुलसी मूर्तिमान करना चाहता है उनको सजीव रूप देने के लिए उस कहानी से अधिक उपयुक्त और कौन कहानी हो सकती है जो मूलत: उन्मुखों के अपने प्रभु से साक्षात्कार और विमुखो के नाश नही, तमनाश की कहानी है। संसार की और कौन कहानी ऐसे सरल, सुगम स्वाभाविक ढंग से इस रहस्य का उद्घाटन और इस सत्य को चरितार्थ कर सकती है कि आनन्द, विश्राम, निश्चिन्तता, निर्भयता जीवन की सार्थकता अपने को राम के भरोसे छोडकर राम काज मे योग देने मे है और सारे विकारों, द्वन्द्वों, भयों की जड अहंकार पूर्ण अविवेक मे है। सच पूछिए तो जिस सूत्र मे सारी कथा वस्तु बँधी है वह यही केन्द्रीय अनुभव है। प्रकट या अप्रकट रूप से इस सूत्र के तन्तु सारी कथा मे फैले है। इस सूत्र की पकड हमे तभी मिल सकती है जब हम उस प्रश्न चिन्ह के संकेत को समझें जो राम चरित मानस के पृष्ठो पर चारो ओर अंकित है। वह प्रश्न है 'राम कवन ?' क्या वह अगुन, अरूप अलख राम है ? क्या वह दाशरथी राम है जिनकी इह लौकिक कहानी रामचरितमानस के पृष्ठों मे लिपिवद्ध है ? क्या वह ऐसे कृपालु, भक्त वत्सल राम है जिनसे हमारा भी इस जीवन मे घनिष्ठ सम्बन्ध है ?

तुलसी साहित्य मे ब्रह्म निरूपण भी है और चरित चर्चा भी परन्तु समस्त चर्चा और निरूपण के पीछे उस करुणा और कृपा की चर्चा और व्याख्या है जो मानव जीवन को सार्थकता और अमरत्व देती है। यदि हम कवि के उद्देश्य और माध्यमों को भली भांति जान लें तो राम के उस रूप को पहचानने मे कोई कठिनाई नही होगी जिसमे कवि अपने प्रभु को अपनी रचनाओं मे प्रस्तुत करता है। यह तो स्पष्ट है कि कवि एक नर नायक के जन्म और मृत्यु के बीच मे होने वाली घटनाओ का रोचक वर्णन करने के लिए अपनी लेखनी नही चला रहा है। रामके चरित्र चित्रण के अनेक परिश्रम पूर्ण प्रयत्न आलोचकों

ने किए है। बेचारे आलोचक गुणों की तालिकाएँ बनाते बनाते थक जाते है—राम की धीरता, वीरता, गम्भीरता, विनम्रता, धार्मिकता, कर्त्तव्य परायणता, उनका पारिवारिक चाल-चलन, उनके सामाजिक कारनामे —परन्तु सारे परिश्रम के अन्त मे जो चित्र वह बना पाते है और जिस निष्कर्ष पर वह पहुँचते है वह यही कि राम आदर्श मानव हैं हम सबको भी चाहिए कि उन्ही के समान होने की कोशिश करे। परन्तु प्रश्न यह है कि यदि वह सभी सुन्दर गुण जिनकी आलोचक तालिका बनाते है किसी एक मानव मे हों तो वह आदर्श मानव, नमूने का आदमी, तुलसी के राम का स्थान पा सकता है? तुलसी के उन राम का स्थान जो प्रणतपाल भवमोचन राम है, जीव चराचर को नचाने वाली माया को भृकुटि विलास मात्र म नचाने वाले राम है, वह राम जो अगुन, अलेख, अमान एक रस होते हुए भी भक्तो और प्रेमियों के प्रेम वश उनके साथ पिता माता, पुत्र बन्धु, स्वामी सखा का व्यवहार करते है? सच पूछिए तो न तो आलोचको का बनाया हुआ चित्र कवि के ही मन मे है न पाठको का ही मन यह गवाही देता है कि जो चित्र आलोचक गण सामने लाते है वह वही चित्र है जो उनके मन में अङ्कित है। कारण स्पष्ट है। कवि का उद्देश्य चरित्र चित्रण नही वरन् प्रभु के रूप का दर्शन है। वह लकीरें और दीवारें जिनको खीचकर आलोचक गण चलते है उसके लिए कोई अस्तित्व नहीं रखतीं। जब वह कहता है 'सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा जल हिम उपल बिलग नहि जैसे।' तब वह एक ऐसे अनुभव को व्यक्त करता है जो उसके लिए एक सजीव और ठोस वास्तविकता है, ऐसी वास्तविकता जिसका अनुभव उसने अपने सम्पूर्ण अस्तित्व मे, शरीर, मन और आत्मा मे, किया है। कवि का महासकल्प और महान् प्रयत्न ही यह है कि वह सगुन और निर्गुन की खाइयों को पाटकर एक ऐस सेतु की तय्यार करे जिसकी सहायता से वह निर्गुण से सगुण और सगुण से निर्गुण ससार मे इच्छानुसार विचरण कर सके।

कौन से वह उपाय है जिनके द्वारा वह अपनी महान सफलता प्राप्त कर सका है ? क्योंकि अपनी ओर से कोई ऐसा उपाय नही है जिसे वह उठा रखता है यदि उस उपाय द्वारा उसे अपने अनुभव को व्यक्त करने मे सहायता मिल सकती है। कथा, कहानी, रूपक, व्याख्या, संवाद सभी की वह सहायता लेता है और तब तक वह विश्राम नही लेता जब तक कि वह मूर्ति जिसको वह चित्रित करना चाहता है अपनी पूरी आभा और रग रूप मे निखर नही आती।

सबसे पहले तो वह इस सशय को दूर करता है कि उसके राम उन राम से कोई अन्य राम है जिनका श्रुतियो मे गान है और जो मुनियो के ध्यान मे आते है। राम की महिमा के सबसे अधिकारी जानकार शिव जिनके मानस मे अकित होने के कारण ही रामचरित-मानस रामचरितमानस है कथा के प्रारम्भ मे ही सती को चेतावनी देकर समझा देते है कि जो कहानी मानस मे कही गई है वह केवल कहानी नही है दाशरथी राम की कहानी की ओट मे वह उसी परम सत्ता का रूप है 'जेहि जाने जग जाय हेराई, जागे जथा सपन भ्रम जाई'। उमा का प्रश्न है।

रामु सो अवध नृपति सुत सोई, की अज अगुन अलख पति कोई

और शिव का दृढ सुनिश्चित उत्तर है

उमा प्रश्न तव सहज सुहाई, सुखद संत संमत मोहि भाई।
एक बात नहिं मोहि सोहानी, जदपि मोह बस कहेउ भवानी॥
तुम जो कहा राम कोउ आना, जेहि श्रुति गाव धरिहिं मुनि ध्याना।
कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जो मोह पिसाच॥
पाषण्डी हरि पद विमुख, जानहिं झूठ न सांच।
अग्य अकोविद अंध अभागी, काई विषय मुकुर मन लागी॥
लंपट कपटी कुटिल विसेषी, सपनेहुँ संत सभा नहिं देखी।
कहहिं ते वेद असंभव बानी, जिन्ह के सूझ लाभ नहिं हानी॥

मुकुर मलिन अरु नयन विहीना, राम रूप देखहिं किमि दीना।
जिन्ह के अगुन न सगुन विवेका, जल्पहिं कल्पित बचन अनेका ॥

और इन मलिन हृदय नयन विहीन विवादियों के कल्याणार्थ शिव चिर स्मरणीय पंक्तियों मे राम के उस रूप का वर्णन करते है जो उनके और तुलसी दोनो के मन मे बसा है जो रूप एक साथ ही निर्गुन भी है और सगुन भी, जो सब का परम प्रकाश भी है, जिसको हम अपने दृष्टि दोष के ही कारण वास्तविक रूप मे नही देख पाते।

अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा, गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई, भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें, जल हिम उपल विलग नहिं जैसे।
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा, तेहिं किमि कहिअ विमोह प्रसंगा ॥
राम सच्चिदानंद दिनेसा, नहिं तहँ मोहनिसा लवलेसा।
सहज प्रकाश रूप भगवाना, नहिं तहँ पुनि विग्यान बिहाना ॥
हरष विषाद ग्यान अग्याना, जीव धर्म अहमिति अभिमाना।
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना, परमानंद परेस पुराना ॥
पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रकट परावर नाथ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोई कहि सिव नायउँ माथ ॥

इस आधारभूत सच्चाई को जो मूर्ख और अज्ञानी नही समझते और आजीवन न केवल दुख और निराशा का जीवन व्यतीत करते है वरन् उल्टे प्रभु का ही दोष बताते है उनकी मूर्खता और अज्ञान का एक मात्र करण है उनका दृष्टि दोष —

निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी।
जथा गगन घन पटल निहारी, झांपेउ भानु कहहिं कुविचारी ॥
चितव जो लोचन अंगुल लाएं, प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएं।
उमा राम विषयक अस मोहा, नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥

विषय करन सुर जीव समेता, सकल एक ते एक सचेता।
सब कर परम प्रकाशक जोई, राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू मायाधीस ग्यान गुन धामू।
जासु सत्यता तें जड़ माया, भास सत्य इव मोह सहाया॥
रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि॥
एहि विधि जग हरि आश्रित रहई, जदपि असत्य देत दुख अहई।
जौं सपने सिर काटै कोई, बिनु जागें न दूरि दुख होई॥
जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई, गिरिजा सोई कृपाल रघुराई।
आदि अंत कोउ जासु न पावा मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना कर बिनु करम करइ विधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी, बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा, ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।
अस सब भाँति अलौकिक करनी महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥
जेहि इमि गावहिं वेद बुध जाहि धरहि मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसल पति भगवान्॥

वेदो मे गाए गए और ध्यानावस्थित मुनियो के हृदय मे निवास करने वाले परम तत्व की यह व्याख्या जैसी सूक्ष्म है वैसी ही विशद भी। परन्तु जो बात यहा देखने की है वह यह कि यह परम तत्व और राम एक ही है 'सोइ दशरथ सुत भगत हित कोसल पति भगवान। वास्तव में जिन सूक्ष्म तत्वा का इन पंक्तियो मे निरूपण हुआ है उनको कथा, काव्य दृष्टान्त द्वारा जीवन मे चरितार्थ करके दिखाने मे ही कवि की कला का सारा चमत्कार है।

हमे यह न भूलना चाहिए कि काव्य के प्रारम्भ मे सती मोह और शिव पार्वती संवाद का प्रसग लाने के विशेष कारण है और इन प्रसंगों का कवि ने अत्यन्त कलात्मक ढग से सदुपयोग किया है। इन प्रसंगों

द्वारा कवि ने उस संशय और संकल्प विकल्प का जीता जागता चित्र खीचा है जो शान्ति और आनन्द के मार्ग मे सबसे बडी रुकावट है। तत्व निरूपण की दृष्टि से शिव की व्याख्या अनुपम है उपनिषदो वेद सूत्रो, शंकराचार्य के सिद्धान्तो की अनेक प्रतिध्वनिया इस व्याख्या मे सुनी जा सकती है। और यह भी सही है कि वास्तव मे दोष हमारी दृष्टि का ही है चन्द्रमा तो अपनी जगह पर प्रकट है हमी अपनी आखो पर उँगली रख कर देखे तो दो चन्द्रमा देख सकते है। परन्तु कवि को इस बात से सतोष नही होता कि हमारी दृष्टि दूषित है, हम माया से घिरे है और ससार असत्य है। ससार लाख असत्य हो फिर भी दुख तो देता ही है। माना कि हमारे सर सपने ही मे कटते है परन्तु कटने का दुख तो होता ही है—'यदपि असत्य देत दुख अहई' और वह दुख बिना जागे दूर भी नही हो सकता।

जौं सपने सिर काटै कोई, बिनु जागे न दूरि दुख होई।

तुलसी की यह महान् विशेषता है कि वह रोग का स्वरूप बता कर चुप नही हो जाता उसका हृदय सियाराममय जगत् के दुखी प्राणियों के दुख की करुणा से भरा है। उसका मन भ्रम निरूपण से अधिक भ्रम निवारण मे लगता है और उसकी इस चिन्ता का उसकी अभिव्यक्ति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वह भ्रम और उससे उत्पन्न होने वाले क्लेश और मोह तिमिर को दूर करने के लिए उस कृपालु रघुराई की कथा का सहारा लेता है 'जासुँ कृपा अस भ्रम मिटि जाई'।

रामचरित मानस आदि से अन्त तक इसी भ्रम निवारण और राम कृपा वर्षा के रहस्योद्घाटन की कहानी है। अपनी मति के अनुसार वेदों ने प्रभु की अलौकिक शक्तियो का अनुमान लगाया है कि वह बिना पैर के चलता है, बिना शरीर के छूता है, बिना वाणी के बोलता है परन्तु इन सारी शक्तियो से बढ़ कर जिस शक्ति के चमत्कार वह दिखलाता है वह है उस चराचर स्वामी अन्तर्यामी की कृपालुता।

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं, जनम अनेक रचित अघ दहहीं ।
सादर सुमिरन जे नर करहीं. भव वारिधि गोपद इव तरहीं ।

यह अगाध विश्वास तुलसी का, शिवका, सभी रामोन्मुख आत्माओं के अन्तस्तल का अनुभव है। उन सब का यह प्रत्यक्ष अनुभव है कि आत्मा को मोह और भ्रम से मुक्त करने वाली एक शक्ति मानव के कार्य व्यापारो के पीछे सतत क्रियाशील है। सगुण और निर्गुण के कटघरे उससे सम्पर्क स्थापित करने मे केवल ऐसी कल्पित और बौद्धिक दीवारें है जिन्हे हम स्वय खडी करते है। उस शक्ति के असली गुण है अपार सहिष्णुता, सीमाओ का अतिक्रमण और अभय दान। वह शक्ति रूप और गुण से परे होते हुये भी अपने अपार रूप और गुणों द्वारा ही मानव हृदय को आकर्षित करती है और उसे अपनी क्षुद्रता से बाहर निकाल कर अक्षय आनन्द का भागी बनाती है।

यह अकारण नही कि राम चरित मानस के आरम्भ मे ही दो प्रसङ्ग ऐसे आते है जिनके द्वारा कवि राम और परम सत्ता की एकता सुनिश्चित रूप से अङ्कित कर देता है—एक तो शिव पार्वती सवाद और दूसरे प्रभु के उस विराट रूप का वर्णन जिसकी झलक माता कौशल्या को मिलती है।

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखण्ड,
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ।
अगनित रवि ससि शिव चतुरानन,
बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ।
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ,
सोउ देखा जो सुना न काऊ ।
देखी माया सब विधि गाढ़ी,
अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी ।
देखा जीव नचावइ जाही,
देखी भगति जो छोरइ ताही ।

चरित चर्चा से पहले यह चर्चा इस लिए आवश्यक है जिसमें अरसिक पाठकों के मन मे जो राम की धीरता शूरवीरता मे ही उनके गुणों की चरम सीमा समझते है यह बात भली भाति बैठ जाय कि यह कथा उन राम की कथा है जो इस जगत की पहेली के पीछे है जिनके सामने जीवमात्र को नाचने वाली माया एक चेरी मात्र है और जो उस भक्ति के प्रेरक है जो मनुष्य को भव वन्धनों से मुक्ति दिलाती है। सारी कथा मे यह तथ्य और इस तथ्य का वरद, मुक्तिदायक संदेश व्याप्त है और रामचरित की महिमा वह कुछ भी नही समझते जो यह समझते है कि जगह जगह पर कबि का यह कहते रहना कि राम ही परमेश्वर है, अपने इष्टदेव की महिमा बढाने की एक सस्ती तरकीब है। राम की कहानी मे कवि की जो कुछ भी रुचि है वह यही दिखलाने के लिए कि राम किस प्रकार हीनता, असहायता, नैराश्य, भय, संशय, प्रमाद, अहङ्कार की ग्रन्थियों को खोल कर मानव मन की मूढता और ग्लानि को दूर करते है और उसको निर्भयता, निश्चिन्तता, आनन्द और रसमग्नता का भागी बनाते है।

दो प्रकार के प्रसंगों की सहायता मे कवि अपने उद्देश्य की पूर्ति करता है—एक तो उन लोगो के उदाहरण द्वारा जो राम की ओर उन्मुख है और दूसरे उन लोगों का चित्र खीचकर जो शंका और मोह ग्रस्त है और द्वन्द्व और सघर्ष के जीवन की असारता देख कर राम की कृपा प्राप्त करते है। जिस ढङ्ग से कवि विविध प्रसंगों को उठाता है विविध पक्षो को आलोक और छाया मे लाता है उससे उसका वास्तविक उद्देश्य स्पष्ट दिखाई देता है सारी कहानी, प्रत्येक प्रसंग से इस की पुष्टि होती है। अहिल्या के उद्धार का प्रसङ्ग लीजिए अहिल्या की कहानी की ओर तो दो एक पंक्तियों मे सकेतमात्र है :—

आश्रम एक दीख मग माँही; खग मृग जीव जन्तु तहँ नाहीं।
पूछा मुनिहिं सिला प्रभु देखी, सकल कथा मुनि कहा विसेषी।

परन्तु अहिल्या की कृतकृत्यता, उसकी आत्मा के जागरण, प्रभु के पावन सोक नसावन चरणों के स्पर्श के प्रभाव का वर्णन करने मे कवि आत्मविभोर हो जाता है।

अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा। मुख नहिं आवहि बचन कहीं ॥
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी। जुगल नयन जल धार बही ॥
धीरज मन कीन्हा प्रभु कँह चीन्हा। रघुपति कृपा भगति पाई ॥
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी। ग्यान गम्य जय रघुराई ॥
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन। रावन रिपु जन सुखदाई ॥
राजीव बिलोचन भव भय मोचन। पाहि पाहि सरनहिं आई ॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी। नाथ न मॉगउँ बर आना ॥
पद कमल परागा रस अनुरागा। मम मन मधुप करै पाना ॥

हृदय का सन्मुख होना, प्रभु को पहचानना, भव भय मोचन के शरण मे आकर रसमग्न होना—अहिल्या के उद्धार के यही पक्ष है जिन पर कवि की दृष्टि जमती है जिन की ओर वह पाठक की दृष्टि ले जाता है और जिनसे आकृष्ट होकर वह अपने मन मे कहता है

अस प्रभु दीन बन्धु हरि कारन रहित दयाल,
तुलसिदास सठ तेहि भजु छांड़ि कपट जंजाल।

अहिल्या उद्धार के बाद ही धनुष यज्ञ का रोचक प्रसंग आता है वर्णनात्मक काव्य की क्षमताओ को प्रदर्शित करने का इस से सुन्दर अवसर और कहीं न होगा और जैसी सजावट, जैसा ओज, जैसी ललित सुकोमल भाव व्यञ्जना धनुष यज्ञ वर्णन में दिखाई देती है वैसी शायद ही कही मिले। परन्तु यहा भी विवाह मंडप और रंगमच की सजावट के बीच कवि की सारी कवित्व शक्ति कारन रहित दयाल राम के वरद मूर्ति को अङ्कित करने मे लगी है राम यहा भी संशय, अग्यान, गर्व, अहङ्कार को हरने एवं छिन्न भिन्न करने वाले राम है।

सब कर संसय अरु अग्यानू, मन्द महीपन्ह कर अभिमानू।
भृगुपति केरि गरब गरुआई, सुर मुनि बरन्ह केरि कदराई।
सिय कर सोचु जनक पछतावा, रानिन्ह कर दारुन दुख दावा।
संभु चाप बड़ बोहितु पाई, चढ़े जाइ सब संगु बनाई।

संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहु बल,
बूड़ सो सकल समाज चढ़े जो प्रथमहिं मोह बस

धनुष यज्ञ के समस्त वर्णन में विभिन्न वर्गों, विभिन्न व्यक्तियों की मनोदशा, उन पर रघुबर बाल पतङ्ग की मंजु मरीचियो की प्रतिक्रिया, उनके हृदयों के परिवर्तन और राम साक्षात्कार की कहानी का चित्र उतारने मे कवि का मन पूरी तरह रमा है और जिस कौशल और सफलता पूर्वक वह यह दिखलाता है कि किसके अन्तस्तल में क्या घट रहा है, कौन क्या स क्या हुआ जाता हे उससे कवि के वास्तविक उद्देश्य के बिषय में कोई सन्देह नही बाकी रहता।

सीता जी तो प्रभु से अभिन्न है ही परन्तु प्रीति पुरातन के उद्घाटन की सजीवता देखिए।

देखि रूप लोचन ललचाने, हरषे जनु निज निधि पहिचाने।
थके नयन रघुपति छबि देखे, पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषे।
अधिक सनेह देह भै भोरी, सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।
लोचन मग रामहिं उर आनी, दीन्हें पलक कपाट सयानी।

सच तो यह है कि जो कोई भी रगमंच पर है वही अपनी जगह पर विचित्र अनुभूतियो की गहराई में डूबता उतराता है :

जिन्ह के रही भावना जैसी, प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।
देखहिं रूप महा रनधीरा, मनहुँ बीर रसु धरे सरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी, मनहुँ भयानक मूरति भारी।
रहे असुर छल छोनिप बेषा, तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा।
पुर बासिन्ह देखे दोउ भाई, नर भूषन लोचन सुखदाई।

नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप ॥

बिदुषन प्रभु बिराटमय दीसा, बहु मुख कर पग लोचन सीसा।
जनक जाति अवलोकहिं कैसे, सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे।
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी, सिसु सम प्रीति न जाहि बखानी।
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा, सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा।
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता, इष्टदेव इव सब सुखदाता।
रामहिं चितव भायँ जेहि सीया, सो सनेहु सुख नहिं कथनीया।
उर अनुभवति न कहि सकि सोऊ, कवन प्रकार कहै कवि कोऊ।
यहि बिधि रहा जासु जस भाऊ, तेंहि तस देखेउ कोसल राऊ।

अपनी अपनी जगह पर जैसे सभी अपने आपको टटोल रहे हों, अपनी अपनी जगह पर सभी की ठोस भौतिकता द्रवीभूत हो कर मानो राम मे विलीन हुई जा रही हो। सबकी भावनाओं का वर्णन करके कवि अपनी भावना का, अपने हृदय में अङ्कित मूर्ति का सागोपांग वर्णन किए बिना भी कैसे रह सकता था? तुलसी लाख गोस्वामी हो उसकी कविता लाख संयत, मर्यादित, भावुकता की बाढ को काबू मे रखने वाली हो परन्तु अपने प्रभु की मधुर मूर्ति जहां उसके ध्यान में आई वही उसका हृदय आर्द्र, उसकी वाणी गद्‌गद् हो जाती है।

सरद चंद निंदक मुख नीके, नीरज नयन भावते जी के।
चितवनि चारु मार मदु हरनी, भावति हृदय जात नहिं बरनी।
कल कपोल श्रुति कुण्डल लोला, चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला।
कुमुद बंधुकर निन्दक हाँसा, भृकुटी विकट मनोहर बासा।
भाल विसाल तिलक झलकाहीं, कच बिलोक अलि अवलि लजाहीं।
पीत चौतनी सिरन्हि सुहाई, कुसुम कली बिच बीच बनाई।
रेखे रुचिर कंबु कल गीवाँ, जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवाँ।

कुञ्जर मनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल।
वृषभ कंध केहरि ठवनि बल निधि बाहु विसाल ।।
कटि तूनीर पीत पट बांधें, कर सर धनुष वाम वर काँधें।
पीत जग्य उपवीत सुहाए नख सिख मंजु महा छवि छाए।
देखि लोग सब भए सुखारे, एकटक लोचन चलत न तारे।
निज निज रुख रामहिं सब देखा, कोउ न जान कछु मरम विसेषा।

यह सूक्ष्म स स्थूल और स्थूल से सूक्ष्म सुन्दरता का रूप दर्शाना कवि का स्वाभाविक मनचाहा ढङ्ग है। सौन्दर्य की एक काव्यमय मूर्ति है जो कवि के मन में बसी है यही मूर्ति जब योगी देखता है तो उसके लिए वह सात सुद्ध सम सहज प्रकाश हो जाती है, विद्वान के लिए विराटरूप, भक्त के लिए सब सुख दाता इष्टदेव। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कवि किसी मुक्ति दायिनी ज्योति का वर्णन कर रहा हो जो चारो ओर कौध रही है और लोगो के हृदय कपाट खोल कर उनको प्रकाश मे ला रही है।

इस ज्योति का आभास मात्र लोग अपने अपने दृष्टि कोण के अनुसार पाते है परन्तु इस ज्योति की सीमाएँ निर्धारित करके उसको चित्रित करने का प्रयास कवि नही करता

निज निज रुख रामहि सब देखा कोउ न जान कछु मरम विसेषा।

राम के रूप का जो कुछ आभास हम पा जाते है वह "निज निज रुख" के अनुसार प्राप्त झलकिया मात्र है और निज निज रुख के अनुसार ही यह झलकिया हम को मिलती भी है। अपनी सम्पूर्णता में तो राम का रूप देखा नही जा सकता क्यो कि राम का ऐश्वर्य और माधुर्य तो अनन्त है। स्वभावत कवि जहा कही राम के मानवीय व्यापारों का वर्णन करता है वहा यह बताना नही भूलता कि यह उस अनन्त ऐश्वर्य और माधुर्य सम्पन्न प्रभु के ऐश्वर्य और माधुर्य की एक

झलक मात्र है जो 'निज रुख' के अनुसार हम पा रहे है और प्रभु अपनी अपार अनुकम्पा में हमें दे रहे है।

लव निमेष महुँ भवन निकाया रचइ जासु अनुसासन माया,
भगति हेतु सोइ दीन दयाला चितवत चकित धनुष मख साला।

फलत तुलसी न तो राम के उस अनन्त रूप का वर्णन करता है जो वर्णनातीत है और न अपने प्रभु को एक ऐसे मानव के रूप मे प्रस्तुत करता है जो उन उद्वेगो, असमर्थताओं, राग द्वेषों से आन्दोलित होता है जिनके वश मे जन भटकता और ठोकरें खाता है। वह तो राममय जीवन के गीत गाता है और राममय जीवन के गीतो ही द्वारा प्रभु के स्वभाव, गुण, शील, महिमा, प्रभाव को प्रकट करता है। वह प्रसङ्गो को इसी लिए चुनता ही है कि उनके द्वारा प्रभु के रूप का उद्घाटन अपने आप ही हो जाय।

वनगमन के अवसर पर जो सारे नाटकीय, करुण, उत्तेजना पूर्ण वस्तुस्थिति को उलट पलट देने वाले प्रपच होते है राम उन सब के ऊपर बहुत ऊपर, अविचलित, अप्रभावित, निर्लिप्त भाव से उठे रहते है 'प्रसन्नता या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दु खत'। परन्तु उनके इस राग द्वेष कामना रहित व्यवहार की जो प्रतिक्रियाएँ होती है, राम जिस प्रकार उन हृदयो को उन हृदयो के स्तर पर द्रवित, परिष्कृत, उन्नत रसमग्न करते है उन मनोदशाओं के वर्णन में कवि अपनी सारी शक्ति लगा देता है। यही उसको अभीष्ट ही है, उसका ध्यान कहानी के पात्रों के चरित्र चित्रण मे नही लगा है उसका ध्यान लगा है उन प्रभावो मनोदशाओ के चित्रण में जिनका उद्भव और विकास उन सहज स्वच्छ हृदयों मे होता है जो राम स तादात्मय स्थापित करना चाहते हैं या कर चुके है (अथवा उन कुटिल, लोलुप, शङ्का मोह ग्रस्त मनो के वर्णन मे जो चिन्ता अशान्ति, उद्वेग की भवर मे डूबते उतराते हैं)। उसकी खोज है वह जीवन जो भय और इच्छा स मुक्त है। राम

बन गमन के एक ही संदर्भ में वह भय और इच्छा से मुक्त जीवनों की सुन्दर झाकिया प्रस्तुत करता है।

सीता जी को वनवास के कठोर जीवन का बहुत भय दिखाया जाता है, सास ससुर पद सेवा की शिक्षा दी जाती है, राज्य प्रासाद के सुखमय सुरक्षित जीवन के बड़े प्रलोभन दिये जाते है परन्तु राम चरण रस मग्न होने के कारण वे भय और इच्छा से ऐसी शून्य है, वास्तविकता के ऐसी निकट कि सारे तर्क और प्रलोभन उनकी जागरूक रसमग्नता के सामने चिकने घड़े पर पानी के समान बह जाते है .

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे, भय विषाद परिताप घनेरे।
प्रभु वियोग लवलेस समाना, सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥

लक्ष्मण को बताया जाता है कि 'मातु पिता गुरु स्वामि' की शिक्षा को सिर पर धर वे जन्म सफल करें परन्तु कोई नैतिक या राजनीतिक कर्त्तव्य उस सहज आनन्द के सामने कोइ मूल्य नही रखता जो राम के संपर्क, राम चरण रति में है।

दीन्हि मोहिं सिखि नीक गोसाईं, लागि अगम अपनी कदराई
नरवर धीर धरम धुर धारी, निगम नीति कहुं ते अधिकारी
मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला, मंदर मेरु कि लेहिं मराला
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू, कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू
जहँ लगि जगत सनेह सगाई, प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी, दीन बन्धु उर अतंर जामी
धरम नीति उपदेसिअ ताही, कीरति भूति सुगति प्रिय जाही
मन क्रम वचन चरन रत होई, कृपा सिंधु परिहरिअ कि सोई

लक्ष्मण की यह आस्था कि

जहँ लगि जगत सनेह सगाई, प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई
मोरे सबइ एक तुम स्वामी दीनबन्धु उर अंतर जामी

राम के उस रूप की कुञ्जी है जो तुलसी ने अपने ग्रन्थ मे उतारा है। सारे काव्य मे जिस किसी ने भी राम को जाना पहचाना है उसी की यह आन्तरिक अनुभूति और स्थिर भावना है कि जगत सनेह सगाई का राम से स्नेह से अलग न कोई मूल्य है न महत्व । राम मे स्नेह की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसके प्रकाश मे वस्तुस्थितिया स्पष्ट हो जाती है, जो चीज जैसी है अपने मौलिक रूप मे दिखाई देती है, वास्तविकता के प्रति ऐसी जागरूकता आ जाती है कि कोई बन्धन सम्बन्ध प्रलोभन, झूठी आशाए आकाक्षाए मनुष्य को भुलावे मे नही डाल सकती। लक्ष्मण रामचरणरति मे ऐसे मग्न है कि राज्य प्रासाद उनको काटे खाता है। राज्य प्रासाद के वैभवों और माता पिता, बन्धुवान्धवो के सनेह सगाई के बन्धनो से पीछा छुडाकर वह ऐसे भागते है

वग्गुर विषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग वस

माता पिता का स्नेह, द्वार घर की ममता पुरजन परिजनो का हित, कोई कृत्रिम, पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक खिचाव उनको राम के सान्निध्य के उस आनन्दमय जीवन पथ से नही हटा सकते जिसको उन्होने अपने लिये निर्धारित किया है और जिसमे उनकी आत्मा पनपती है। सबसे बडी और महत्व पूर्ण मुक्ति जो लक्ष्मण राम चरण रति के फल स्वरूप प्राप्त करते हैं वह केवल पार्थिव सुख सम्पन्नता और जगत सनेह सगाई के बन्धनों मे ही नही है वरन् उन सूक्ष्म, अदृश्य परन्तु अत्यन्त जटिल और कठोर मानसिक वन्धनो से भी जो सहज प्रेम और जागरूक जीवन के मार्ग मे सबसे वडी बाधाएँ उपस्थित करते है। रामचरण मे सहज भाव से रत लक्ष्मण के मन मे क्षण भर के लिए भी, लेशमात्र भी, संशय नही रहता कि राम के प्रेम मे मग्न रहने मे जो आनन्द, जो निर्भयता, जो निश्चिन्तता है उसके आगे 'निगम नीति अधिकारी' होना 'धर्म धुर धारी' कहलाना, 'धर्म, नीति कीरति भूति सुगति' के पीछे मारे-मारे फिरना निरी मूर्खता ह

अपने को जान बूझ कर खोखले अर्थहीन, नीरस बन्धनों मे फँसाना है।

तुलसी के राम के मूर्ति की यही सर्वोपरि विशेषता है कि वह हृदयों को मुक्त करके उन्हे सहज प्रेम के आनन्दरस म एसा परिपूर्ण कर देती है कि वह सभी सुरक्षा, सुविधा, शारीरिक सुख सम्पन्नता को कायम रखने की चिन्ताएँ, वह सभी नैतिक, सामाजिक परम्परागत मान्यताएँ जो राम से अलग जीवन मे इतना महत्व रखती है नितान्त अनावश्यक और अर्थ हीन हो जाती है।

माताएँ भी यह सत्य जानती है। माता सुमित्रा के शब्दों मे,

अवध तहां जहँ राम निवासू, तहइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं सेइअहिं सकल प्रान की नाईं
राम प्रान प्रिय जीवन जी के, स्वारथ रहित सखा सबही के
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें, सब मानिअहिं राम के नाते

... ...

सकल सुकृत कर बड़ फल एहू राम सीय पद सहज सनेहू

और इस विश्वास के होते हुये वह लक्ष्मण, को जो सब से बडा आशीर्वाद दे सकती है वह यही

रति होउ अविरल अमल सिय रघुबीरपद नित नित नई

सच पूछिए तो तुलसी के रामचरित मानस के पात्रो के चरित्रो की यही पकड है कि उनमे कहा तक सिय रघुबीर पद म अविरल अमल नित नवीन रति है और इस नित नवीन रति ने कहा तक उनमे ऐसा परिवर्तन कर दिया है कि वे राम के नाते ही किसी को प्रिय मान्य और पूजनीय मानते है। यह माप दन्ड कवि के मन मे निरतंर काम करता है। इसी माप दन्ड से नाप कर वह जीवन के सार्थकता की थाह लेता है। इसी कसौटी पर जाच कर वह व्यवहारिक जीवन की

मान्यताओं को खरा खोटा बताता है क्योंकि यही कुंजी उसके अपने जीवन के अनुभवों की कुजी है।

जिस पात्र मे यह दृष्टिकोण पूर्ण रूप से विकसित होता है वह भरत है। भरत को वह सभी आदेश, निर्देश, बन्धन, उत्तरदायित्व, विवशताएँ घेरती है जो मानव आत्मा को अपने जाल मे जकडे रहती है और उसको इच्छा और भय रहित जीवन के मुक्त आकाश मे विचरने से रोकती है।

भरत तो चाहते है राममय आनन्दमय जीवन

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहँउ निरवान
जनम जनम रति रामपद यह वरदानु न आन

और उनके जीवन की विडम्बना यह है कि सभी परिस्थितियां उनके इस मनचाहे आनन्दमय जीवन की राह मे रुकावटे बन कर खडी हो जाती है। राम के बन चले जाने पर अयोध्या मे प्रवेश करते ही उनको माता कैकेयी से भेंट होती है। महत्वाकांक्षिणी महारानी 'मुदित मन' अपने कारनामों का वर्णन करती है, व्यवहारिक बुद्धिमत्ता और भौतिक महत्वाकाक्षा के पाठ पढाती है

तात राउ नहिं सोचै जोगू, बढ़इ सुकृत जस कीन्हेउ भोगू
अस जिय जानि सोच परिहरहू, सहित समाज राजपुर करहू

वह यह नही समझती कि राम को बनवास दे कर उसने भरत के जीवनमूल पर ही कुठाराघात किया है, पेड की जड काट कर उसको हरा भरा करने के लिए पत्तों को सीचती रही है, सरोवर का पानी निकाल कर मछलियों को जिलाने की कोशिश कर रही है।

कैकेयी की आंखों पर तो महत्वाकांक्षा का पर्दा पड़ा था इसलिये वह भरत के जीवनस्रोत को नही पहचान पाई। परन्तु अन्य गुरुजन भी भरत को लम्बा चौड़ा "नीति धरम मय" भाषण देते है, भावी की

प्रबलता को बताते है एवं हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश में विधि का हाथ बताते है, और उन लोगो के दृष्टान्त देते है जिन्होंने पिता की आज्ञा पालन के लिए अनेक कुकर्म किए।

अनुचित उचित विचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन ॥

परन्तु भरत को न तो सुख सुजस अभीष्ट है न अमरपति ऐन चाहिए और न गुरु वसिष्ठ की वेद विहित शास्त्र सम्मत शिक्षा ही उनके गले के नीचे उतरती है। उनका तो अत्यन्त विनम्र परन्तु उतना ही दृढ उत्तर यही है

तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई, जो आचरत मोर भल होई।
जद्यपि यह समुझत हँउ नीकें, तदपि होत परितोषु न जी कें ॥

भरत के मन मे यह बात नही बैठती कि जिस जीवन पथ पर मुनिवर उन्हे आरूढ करना चाहते है वह जीवन ऐसा जीवन है जिसमे उन्हे शान्ति मिलेगी

गुरु विवेक सागर जगु जाना, जिन्हहि विस्व कर बदर समाना।
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ भएँ विधि विमुख विमुख सब कोऊ

इस प्रतिकूलता, निराशा, आत्मग्लानि अन्धकार के बीच यदि उन्हे कही थाह मिलती है तो राम की कृपा मे

आन उपाय मोहिं नहिं सूझा को जिय कै रघुबर बिन बूझा।
एकहि आँक रहइ मन माहीं प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं ॥
जद्यपि मैं अनभल अपराधी भै मोहिं कारन सकल उपाधी।
तदपि सरन सनमुख मोहिं देखी छमि सब करिहहिं कृपा विसेषी ॥
सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ कृपा सनेह सदन रघुराऊ ॥

और कृपा सनेह-सदन राम की करुणा मे भरत का विश्वास इतना दृढ है कि वह संसार के हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश सब को

तुच्छ समझते है। एक बार यदि राम भी उनको कुटिल समझ लें (यद्यपि ऐसा होना असंभव है) तो अपनी ओर से उनके लिए कोई दूसरी आशा कोई अन्य अवलव नही है

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहँउ निरवान,
जनम जनम रति राम पद यह वरदानु न आन।

जानहुं राम कुटिल कर मोही, लोग कहउ गुरु साहब द्रोही
सीता राम चरन रति मोरे, अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें
जलदु जनम भरि सुरत बिसारउ जाचत जल पवि पाहन डारउ
चातकु रटनि घटे घटि जाई, बढ़े प्रेमु सब भाँति भलाई
कनकहिं वान चढ़इ जिमि दाहें, तिमि प्रियतम पद प्रेम निबाहें

प्रियतम पद प्रेम का प्रतीक यह चातक-जलद का सम्बन्ध तुलसी के मन मे घर कर गया था। तुलसी के पदो मे इसका बड़ा मार्मिक प्रयोग हुआ है और अन्यत्र चातीस दोहो के समूह चातक चोतीसा मे तुलसी ने इस प्रतीक के सहारे अनन्य प्रम और सम्पूर्ण आत्मसमर्पण की गहराइयों की विशद व्याख्या की है। और इसमे सन्देह नही कि राम के प्रति यदि कवि के किसी एक विश्वास को अन्यतम निजी विश्वास कह सकते है तो वह यही अनन्यता और आत्मसर्मपण है

कवि भरत के चित्रकूट गमन के प्रसग द्वारा जो दिखलाना चाहता है वह केवल यही नही कि अन्ततोगत्वा समर्पण और अनन्य प्रेम ही जन का एकमात्र अवलम्ब है वरन् यह भी कि इस अवलम्ब को लेने पर द्वन्द्वों, संशयों, आशकाओं से कैसे मुक्ति मिल जाती है, आत्मा को यश अपयश के, मान अपमान के, हानि लाभ के, समाज और नैतिकना के उन निराधार और कल्पित भयों मे जो हृदय को दुर्बल और त्रस्त किए रहते है कैसी स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है। जब तक भरत चित्रकूट मे अपने प्रियतम और स्वामी श्री राम के चरणों की शरण मे नहीं पहुँच जाते उनको तरह तरह के सोच व्याकुल किए रहते है और यह सोच

जिस स्तर के है उनका कोई आभास साधारण व्यवहारिक और बौद्धिक मापदण्डों की सहायता से प्राप्त भी नही किया जा सकता क्योंकि यह सोच साधारण बौद्रिक व्यवहारिक जगत के है ही नही। जैसा भरत भरद्वाज आश्रम की मुनि मण्डली से हाथ जोड कर कहते है हानि लाभ जीवन मरण के भय उनके मन को नही छूते।

मुनि समाज अरु तीरथ राजू, साचिहुं सपथ अघाइ अकाजू।
एहिं थल जौं किछु कहिअ बनाई. एहिसम अधिकन अघ अधमाई।
मोहि न मातु करतब कर सोचू, नहिं दुख जियँ जग जानिहि पोचू।
नाहिन डरु बिगरहि परलोकू, पितहु मरन कर मोहिं न सोकू।

शोक और पछतावा यदि उनके हृदय मे कुछ है तो यही !

अजिन बसन फल असन महि समन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात ॥
एहि दुख दाँह दहइ दिन छाती, भूख न बासर नींद न राती।
एहि कुरोग कर औषधु नाहीं, सोधेउँ सकल विस्वमन माहीं ॥

राम के प्रति यह आत्मीयता जिस कोटि की है उसके आगे नीति स्वार्थ परमार्थ की बातें तुच्छ और तथ्यहीन जान पडती है। मुनि वशिष्ठ, राजा जनक एक से एक ज्ञानी और विरक्त राम को अयोध्या लौटा लाने के प्रश्न पर माथापच्ची करते है और जब उनको कोई राह नहीं मिलती तो वे समस्या हल करने का भार भरत के ऊपर डालते है परन्तु हर बार भरत की अनन्यता, उनकी वास्तविकता की पकड इन सदाशय समझाने बुझाने वालो को चकित और निरुत्तर कर देती है।

भरत महा महिमा जलरासी, मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी।

उस अगाध जलराशि के सामने जो भरत का निश्छल प्रेम है मुनि वशिष्ठ की भी बुद्धि तट पर खडी अबला के समान चकित स्तम्भित सी खडी रह जाती है। उनकी समझ मे नही आता कि इस विशुद्ध अगाध

प्रेम के आगे तर्क और शास्त्र की बातें क्या काट करेंगी। भरत का मन तो राम के चरणों मे अटका है और मुनि और राजा जनक उनसे पूछते है कि क्या हो ? कैसे हो ? किस प्रकार राम को अयोध्या लौटाया जाय ? किस प्रकार राज व्यवस्था चले ? स्वभावत: भरत की इन प्रश्नो मे रुचि नही है। वह तो एक बात जानते है कि मै राम रुख के अधीन हूँ राम रुख के आधीन जान कर और प्रेम पहचान कर आप जो सर्व हितकारी कदम उठाएँ वही ठीक है।

राखि राम रुख धरमु ब्रत पराधीन मोहि जानि
सब के संमत सर्वहित करिअ पेमु पहिचानि

परन्तु न तो भरत के प्रेम की पहचान ही आसान है न उनके उत्तर की गहराई का पाना ही

सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे, अरथु अमित अति आखर थोरे
ज्यों मुख मुकुर मुकरु निजपानी गहि न जाय अस अद्भुत बानी

उनका उत्तर एक साथ ही सुगम भी है और अगम भी, मृदुल भी और कठोर भी, छोटा भी और अपार अर्थ से भरा भी, वह अपने ही हाथ मे लिए हुये दर्पण मे मुख के प्रतिबिब के समान साफ दिखाई भी देता है और पकड मे भी नही आता। भरत के उत्तरों की विलक्षणता के कारण भी है। भरत की वाणी बुद्धिमानी, तर्क, समाज की परितुष्टि, धर्म अर्थ काम मोक्ष की कामना मे प्रभावित वाणी है ही नही जो इन भावनाओ से प्रभावित मनों मे घर कर सके। उनकी वाणी का एक मात्र स्रोत उनका हृदय है, वह हृदय जो एक ऐसे नवजीवन और आन्तरिक आनन्द और निश्चिन्तता के लिये लालायित है जिसमे द्वन्द्व नही, सशय नही सकल्प विकल्प की उलझने नही और यही कारण है कि वह ज्यों ज्यों, केवल भौतिक अर्थ मे ही नही वरन् एक गहरे आध्यात्मिक अर्थ मे, राम के निकट आते जाते है उद्वेग, आशंकाओं, आशा निराशा संकल्प-विकल्प के भव बधनों से मुक्त होते जाते है।

समाज, पुरजन, परिजन, गुरुजन, देवगण मिल कर जो बोझा भरत के सिर पर डालना चाहते है उन सब को वह अपने हृदय के अन्तस्तल मे तौलते है और जिस अन्तिम सुनिश्चित निष्कर्ष पर पहुँचते है वह यही है कि प्रभु के रुख के पहचानने और उन्ही के आदेशो का पालन करने मे ही सभी समस्याओं का समाधान और सभी उलझनों का सुलझाव है।

करि विचारु मन दीन्ही ठीका, राम रजायस आपन नीका

यह निश्चय विद्युत के समान उनके हृदय को प्रकाशित कर देता है मानों सारा भार हलका हो गया हो मानो सभी समस्याओ की कुंजी मिल गई हो, मानो सभी भ्रान्तिया, सभी मिथ्या भयों के बादल छूट कर छिन्न भिन्न हो गए हो, मानों अन्तरात्मा सुस्थिर और निश्चित हो कर सदा के लिए मुक्त हो गयी हो। कल्पित भय आशंकाओं से मुक्त हृदय के आनन्द विभोर स्वर उनके उद्गारों मे साफ झलकते है।

कहौं कहावौं का अब स्वामी, कृपा अंबुनिधि अंतरजामी
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला, मिटी मलिन मन कलपित सूला
अपडर डरेउँ न सोच समूलें, सविहि न दोसु देव दिसि भूलें
मोर अभागु मातु कुटिलाई, विधि गति विषम काल कठिनाई
पाउँ रोपि सब मिलि मोहि छाला, प्रनत पाल पन आपन पाला
यह नइ रीति न राउरि होई, लोकहुँ वेद विदित नहिं गोई
जगु अनभल भल एकु गोसाईं, कहिअ होई भल कासु भलाई
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ, सनमुख विमुख न काहुहि काऊ
जाइ निकट पहिचानि तरु छांह समनि सब सोच
मांगत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोच

कृपा अबुनिधि, अन्तर्यामी राम के निकट आकर भरत को जो सुस्पष्ट अनुभव होते है जो विश्राम मिलता है उसमे खोजने और पाने के आनन्दोल्लास का एक जीता जागता चित्र है। वह अनुभव करते

है कि मै जिन कल्पित, मिथ्या भयो मे डर रहा था वे निराधार थे, मेरी चिताओं की कोई जड नही थी । यदि मुझे दिशा भ्रम हो गया था तो इसमे राम की कृपा का, सूर्य का कोई दोष नही था वह तो प्रकाशमान है कल्पित भय ही मुझको पथ भ्रष्ट और उद्विग्न किए हुये थे । विधाता की टेढी चाले, अभाग्य, सारे जगत की बुराई कुछ नही बिगाड सकते यदि यह विश्वास दृढ रहे कि प्रणतपाल अपने प्रण का पालन करेंगे । यह रीति न नई है न गुप्त । प्रभु न किसी के सम्मुख है न विमुख, स्वय हम ही उनकी ओर उन्मुख हो कर प्रभु रूपी कल्प वृक्ष को पहचान कर, उसकी छाया मे यदि आ जांय तो वह छाया जो कोई भी उस छाया की शरण मे आयेगा, भला बुरा, राजा रंक, सभी की चिन्ताओ और आशंकाओं का शमन कर देगी । भरत की यह अनुभूति मानस और तुलसी का परम सन्देश है ।

इसी सन्देश के देवदूत, प्रभु के नाम और रूप के अनन्य उपासक हनुमान जी है । हनुमान उस अनन्यता और आत्मसमर्पण की मूर्ति है जो राम की कृपा प्राप्त करने के लिये आवश्यक योग्यताएँ है । अतुलित बल धाम, ज्ञानियों मे अग्रगण्य होते हुए भी वह राम के निकट आते है तो केवल मोह शोक के बधनों से मुक्त हो कर निश्चिन्तता प्राप्त करने के लिये । इसके अतिरिक्त न उनकी कोई मानसिक शर्तें है न इच्छाएँ, न अभिलाषाएं

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे, सेवक प्रभुहि परैं जिन भोरें
नाथ जीव तव मायां मोहा, सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा
ता पर मैं रघुवीर दोहाई, जानउँ नहिं कछु भजन उपाई
सेवक सुत, पति मातु भरोसें, रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें
अस कहि परेउ चरन अकुलाई, निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई

सेवक स्वामी की, बच्चा मा की शरण म आ जायगा तो प्रभु उसका पालन करेंगे यह शरणागति की आधारशिला है राम भी ऐस निश्छल सपूर्ण आत्मसमर्पण को तत्काल स्वीकार कर लेते है ।

तब रघुपति उठाइ उर लावा, निज लोचन जल सींच जुड़ावा
सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना, तैं मम प्रिय लछमन ते दूना
समदरसी मोहि कह सब कोऊ, सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ

सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत,
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।

अनन्यगति होना, राम को छोडकर और कोई आशा भरोसा न होना ही वह सर्वोपरि गुण है जिसके कारण कोई राम को प्रिय होता है और अनन्य वही है जिसका यह अटल विश्वास हो कि यह चराचर जगत् मेरे भगवान का रूप है और मै सवक मात्र हूँ। यह सेवक मात्र, निमित्त मात्र होने की भावना हनुमान मे ऐसी सुदृढ है कि रामकाज के अतिरिक्त और किसी काज मे न उनकी रुचि है और न 'राम काज कीन्हे बिना' उन्हे विश्राम मिलता है।

सारी रामायणी कथा को जिस प्रकार कवि देखता है उसको मोडत है, विविध प्रसंगों के अर्थ खोलता है विविध पात्रों के चित्रो का निर्माण करता है—सभी इस निष्कर्ष की ओर संकेत करते है कि प्रभु की ओर उन्मुख होना और उनके अतिरिक्त और आशा भरोसा न रखना यही मुक्ति और आनन्द का राजमार्ग है।

शिव, लक्ष्मण, भरत, हनुमान इस सचाई के प्रकाश-स्तम्भ है क्यों कि यह सचाई ही उनकी जीवन ज्योति है। उनकी अनन्यता जिस चरम सीमा को पहुँचती है उसके आगे सासारिक विवशताएँ, सामाजिक परिस्थितिया, रूढिगत नैतिकता, झूठी मर्यादा, कृत्रिम मान्यताएँ कोई मूल्य नहीं रखती। हम इन मान्यताओं के ऐसे अभ्यस्त है इन्ही मान्यताओ के घेरों मे घूमने फिरने के ऐसे आदी है कि सिवाय इन्ही रूढिगत सामाजिक, नैतिक मान्यताओ की रोशनी के और किसी रोशनी मे राम का इन पारंगत आत्माओं से सम्बन्ध देख ही नही पाते, यद्यपि सच तो यह है कि सारी रामायण मे हम देखते है कि यह आत्माएँ

बारबार और कदम कदम पर उन कृत्रिम मान्यताओं को ठोकरें लगाती है जिनको व्यवहारिक जगत के निवासी प्रधानता देते है। शिव की तो बात ही निराली है। 'अगुन, अमान, मातु पितु हीना, उदासीन सब ससय छीना, जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल वेष' शिवजी तो राम मे ऐस तन्मय है कि उनको व्यावहारिक जगत् की कोई मर्यादाएँ नही छूती। राम से जो उनका आत्मीयता का सम्बन्ध है, राम मे तन्मय रहने की उनकी जो स्वाभाविक अवस्था है, यदि सती का मोह बाधक साबित होता है तो सती को त्यागने मे उनको इतनी ही देर लगती है जितना उनको अपनाने मे जब उनको विश्वास हो जाता है कि उनको अपनाने मे राम की इच्छा है। शिव की एकरसता और अनन्यता जिस कोटि को है उसको देखते हुए उनको राम से भिन्न मानना ही भ्रमात्मक है। सच तो यह है कि जो जितना राम के सन्निकट है उतना ही झूठी मर्यादाओ और बनावटी सम्बन्धों के बन्धनों से मुक्त है। व्यवहारिक जगत की मागो को वह पूरी करते है परन्तु निर्लिप्त हो कर। प्रभु के प्रेम, उनके सान्निध्य, उनम आत्मीयता के अतिरिक्त न उनकी कोई कामना है न आशा

गुरु पितु मातु न जानहुँ काहू कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू
मोरे सबइ एक तुम स्वामी दीन बन्धु उर अतर जामी

केवल लक्ष्मण को ही नही भरत, हनुमान अपनी शरण मे आने वाले सभी जनो को भय और मोह से प्रभु ने ऐसा मुक्त कर दिया है कि लक्ष्मण ही की भाति उन सब का विश्वास है कि।

धरनि धाम धनु पुर परिवारू सरगु नरकु जहँ लग व्यवहारू
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माही मोह मूल परमारथु नाहीं
जानिअ तबहिं जीव जंग जागा जब सब विषय विलास विरागा
होइ विवेकु मोह भ्रम भागा तब रघुनाथ चरन अनुरागा
सखा परमु परमारथु एहू मन क्रम वचन राम पद नेहू

यह विश्वास उस जीवन दर्शन का मूलमंत्र है जिसका मानस मे कवि ने प्रतिपादन किया है। धरनि, धाम, धनु, पुर, परिवारू ही नही स्वर्ग और नरक सम्बन्धी सारे प्रलोभनों, सारी चिन्ताओं की असारता का ज्ञान, आत्मा का जागरण, मोह निशा का अन्त सब एक ही स्थिति रघुनाथ चरण रति की पर्यायवाची स्थितियां है। इसी स्थिति के प्रभाव मे लक्ष्मण को घर नही सुहाता, भरत को राज नही सुहाता, हनुमान को बानरों की नेतागिरी नही सुहाती। वे सब वाह्य जगत् के प्रलोभनों को ठोकरें लगाते है क्यों कि वे सब राम रस मग्न है! 'नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहा लौ' और इस नाते की राह मे जो कोई भी आए 'तजिए ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही'।

सच पूछिए तो इसी नाते के प्रकाश मे रामायणी कथा के पात्र खिलते ही है। राम ही उनके जीवनधन है 'प्रान प्रान के जीवन जी के'। सच पूछिए तो मानस के प्राय सभी पात्र एक अलौकिक रस मे मग्न से दिखाई देते है। उनके व्यवहार, उनकी गतिविधि की इस प्रकार आलोचना करना जैसे वे किसी उपन्यास के पात्र हों उस विशिष्ट वातावरण से हमारा संपर्क कभी नही स्थापित कर सकता जिसकी कवि स्पष्टत सृष्टि करना चाहता है और न हम प्रभु की उस मूर्ति को देख सकते है जो कवि दिखलाना चाहता है।

शिव, हनुमान, लखन, भरत एसे पात्र है जिन्होने प्रभु की मूर्ति देखी है, जिन्होंने प्रभु के प्रेम मे अपने को इस प्रकार खोया है कि सासारिक दुख दैन्य, मान अपमान, आशा निराशा उनके लिए अवास्तविक हो गए है और प्रभु मे स्थित, रस मग्न जीवन ही उनका असली, स्वाभाविक जीवन हो गया है

राम, रावरो सुभाव गुन सील महिमा प्रभाव
जान्यो हर, हनुमान, लखन, भरत
जिन्ह के हिए सुथल राम प्रेम सुरतरु
लसत सरस सुख फूलत फरत

चौथा अध्याय

प्रीति रीति और संशय, द्वन्द्व, संघर्ष

संसृत मूल सूलप्रद नाना सकल सोक दायक अभिमाना ।

शिव, हनुमान, लखन, भरत स्वभावत रामायणी कथा पर छाए है क्योंकि इनके द्वारा राम के रूप की भी झाँकी बनती है और उस जीवन की भी जो राममय है । परन्तु राम की कृपा उन्ही तक सीमित हो ऐसा नही है । रामायण के पात्रों के अनेक वर्ग है । एक ओर वे ऋषि, मुनि, साधक है जो जप तप योग याग द्वारा अपना जीवन सफल करना चाहते है तो दूसरी ओर वे असुर जो प्रभु मे संघर्ष मे आते है और तीसरी ओर संशय और मोह मे जकड़े वे अपार जन जो अन्धकार मे अपना रास्ता टटोल रहे है । इन सभी वर्गों के लोग प्रभु की कृपा के साझीदार है । जो शंसय ग्रस्त है अथवा विरोधी है और राम की शक्तियों से टक्कर लेते है उनका व्यवहार और वह द्वन्द्व और संघर्ष जिसको वे जन्म देते है प्रभु के कृपा के चित्र की रेखाओं को उभारने मे उतने ही सहायक है जितना भक्तों की अनन्यता और शरणागति । महत्व पूर्ण यह नही कि कौन भक्त है और कौन विरोधी । अन्ततोगत्वा भक्त और विरोधी सभी की गति राम मे है

भलो जो है पोच जो है दाहिनो जो वाम रे ।
राम नाम ही सों अन्त सब हा को काम रे ।।

महत्वपूर्ण वह प्रीति की रीति है जिसके प्रभाव में भक्त और विरोधी दोनों के मनों की ग्रन्थियाँ खुलती है । तुलसी ने राम की जो मूर्ति बनाई है वह एक दल के नेता की मूर्ति तो है ही नही वह स्पष्टत: एक ऐसी व्यापक,

मुक्ति दायिनी शक्ति की मूर्ति है जिसकी छत्रछाया मे संशय, द्वन्द्व, विरोध, मोह, तम सभी विगलित हो कर उन्मूलित हो जाते है और वह तत्व जो जीवन को सार्थक, निर्भय, ऊर्ध्वगामी बनाने वाले है स्वत जाग्रत और सक्रिय हो उठते है। यह अकारण नही है कि मानस मे ऐसे संवादों और प्रसंगों की बहुलता है जिनमे या तो रामरसमग्न आत्माएँ राम तत्व पर विचार विनिमय करती है या संशय ग्रस्त आत्माओ के संशय का समाधान होता है। सारे राम चरित मानस मे राम के प्रीति की रीति समझने समझाने की इच्छा है। केवल तुलसी ही नहीं शिव, याज्ञ-वल्क्य, काकभुशुंडि सभी यह राम चर्चा चलाते है तो स्वान्त सुखाय, स्वान्तस्तम शान्तये। और संशय ग्रस्त आत्माओ की गतिविधि के सजीव चित्र तो क़दम-कदम पर मिलते हे। पार्वती की शकाओं और नारद मोह से कथा का प्रारम्भ ही होता है और आगे चल कर तो मानस मोह ग्रस्त आत्माओं के मुक्ति की कहानियो की एक मणिमाला हो जाती है।

शंकर, लक्ष्मण, भरत, हनुमान त्याग, शरणागति और अनन्यता मे प्रभु की कृपा प्राप्त करते है उनमे कोई अपनापन अहन्ता नही रह गई है। इसके विपरीत जो शंकाग्रस्त है वे सभी अहन्ता के शिकार है। वे अच्छे हो या बुरे, पुण्यात्मा या दुरात्मा, अच्छे से अच्छे होते हुए भी अपने अहभाव को नही भुला पाते, अहंभाव भुला कर वह समर्पण नही कर पाते जो राममय होने के लिए आवश्यक है। नारद बड़े विद्वान, बड़े तपस्वी, मदन के मान का भंजन करने वाले है परन्तु उनके भी मोह का कारण यही है कि उनके मन मे यह बात उठती है कि मैने अपने पराक्रम मे काम ऐसे प्रबल विजेता पर विजय पा ली है। जब वे अपने विजय का गर्व मन मे रख कर शिव के पास जाते है तो उनके मन की भावना यही होती हैं 'जिता काम अहमिति मन माही'। भगवान भी तत्काल ही नारद का रोग पहचान लेते है।

करुना निधि मन दीख विचारी, उर अंकुरेउ गरब तरु भारी।
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी, पन हमार सेवक हितकारी॥

परशुराम तो अहंता के अवतार है अपनी करनी का बार-बार और बहुत प्रकार म वर्णन करते उनकी वाणी नही थकती।

भुज बल भूमि भूप बिनु कीन्ही, विपुल बार महि देवन्ह दीन्ही।

गरुड को भी अहंभाव के कारण ही मोह होता है। शिव जी के शब्दो मे।

होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना, सो खोवै चह कृपा निधाना।

काकभुशुडि को भी उसी प्रकार के कारणो स मोह होता है जिनमे गरुड को। प्रत्येक प्रसग स एक मोह ग्रस्त आत्मा की जो तस्वीर सामने आती है वह एक दूसरे मे मिलती-जुलती है—सरल प्रीति के स्थान पर अहंकार, कुतर्क, पृथकता के भाव। का उदय होना, आत्मा का अन्धकार मे व्याप्त हो जाना और फिर उसकी थाह लेने की कोशिश करना जो अथाह है। नारद, परशुराम, गरुण, काकभुशुडि सभी स-चरित्र है, सराहनीय गुणो की उनम कोई कमी नही, परन्तु जिस क्षण उनको अपने गुणों का अभिमान होने लगता है, जिस क्षण उनका प्रभु । सहज सरल सम्बन्ध का तार टूट जाता है उसी क्षण अहंता और कुतर्क उनके मन मे घर कर लेते है और प्रतिक्रिया और सघर्ष की एक शृंखला शुरू हो जाती है। इसमे प्रश्न ज्ञानी और मूढ का नही है प्रश्न है समुचित भावना का। समुचित भावना की अनुपस्थिति मे जो प्रभु मे सम्पर्क बनाए रखने के लिए आवश्यक है ज्ञान, पाण्डित्य, प्रयास अदृश्य और अचानक मोह के आक्रमणो के विरुद्ध कोई रोक नही है।

जिन परिस्थितियों मे इन मोह ग्रस्त आत्माओ का मोह दूर होता है उनमे भी हमे एक प्रकार की समानता दिखाई देती है। सभी को अपनी ससीम क्षुद्रता से बाहर आकर उस विराट सत्ता और सत्य की एक झलक मिलती है जो व्यापक है और जिसको भूल कर जन मोह का शिकार होता है। सती ने

देखे जहं तहं रघुपति जेते, सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते।
जीव चराचर जो संसारा, देखे सकल अनेक प्रकारा।
पूजहिं प्रभुहिं देख बहु वेषा, राम रूप दूसर नहि देखा।

नारद का मोह दूर होने पर उनकी जो दशा होती है वह भी आँखें खोलने वाली है।

जब हरि माया दूर निवारी, नहिं तहँ रमा न राज कुमारी।
तब मुनि अति सभीत हरि चरना, गहे पाहि प्रनतारति हरना।

और इस प्रसग से शिव के अनुसार जो शिक्षा मिलती है वह भी स्मरणीय है।

यह प्रसंग मैं कहा भवानी, हरिमाया मोहँहि मुनि ग्यानी।
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी, सेवत सुलभ सकल दुखहारी।
सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल
अस विचारि मन मांहिं भजिअ महा माया पतिहिं।

काकभुशुंडि को भी भिन्न भिन्न लोकों मे भ्रमण करने के बाद जो अनुभव प्राप्त होता है वह यही

भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति विचित्र हरि जान
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन।

एक बार राम के व्यापक रूप को देख कर ही वह अहंता विगलित होती है जिसके कारण वे प्रभु की अपार शक्ति और अपार अनुकम्पा की सम्भावनाओ को नही देख पाते। इस व्यापक रूप की झलकियां देने का अभिप्राय न तो केवल प्रभु महिमा का प्रदर्शन है न मोह ग्रस्त आत्माओ को अपनी क्षुद्रता का भान कराना। इस व्यापक रूप का आभास देने का सर्वोपरि अभिप्राय है उनको राम और जगत से उस सम्बन्ध मे स्थापित करना जिसके न होने से उनकी सारी बेचैनी है। उस सम्बन्ध का अर्थ है जगत् को राममय जानना, सत्य की सत्ता की व्यापकता

और समग्रता को पहचानना। उस सम्बन्ध का अर्थ है जन में अपने और अपने सम्पर्क मे आने वाले जगत् के प्रति एक नई जागरूकता का उदय होना और सीमाओं, इच्छाओं, आकाक्षाओ के उन बन्धनो का टूटना जिनमे जकड़े रहने के कारण जन शका और सघर्ष के जीवन से छुटकारा नही पाता।

इस नवजीवन की विवेचना सुन्दर और सुचारु रूप से काकभुशुडि ने गरुण का मोह दूर करने के लिए की है परन्तु यह विवेचना सभी मोह ग्रस्त आत्माओं के लिए समान रूप से लागू है।

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ, जन अभिमान न राखहिं काऊ।
संसृत मूल सूल प्रद नाना, सकल सोक दायक अभिमाना।
ताते करहि कृपा निधि दूरी सेवक पर ममता अति भूरी।
जिमि सिसु तन ब्रन होइ गुसाईं, मातु चिराव कठिन की नाईं।

जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर,
ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर।
तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि,
तुलसि दास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि।

सभी प्रकार के क्लेशों, समस्त शोको, संसार के चक्र के ही जड़ मे जो शक्ति काम करती है वह है अभिमान। स्वभावत: राम अपनी अपार अनुकम्पा मे पहला कुठाराघात इसी अभिमान ही पर करते हैं। बालक के फोड़े को चिरवाना तो कठोरता पूर्ण व्यवहार दिखाई देता है परन्तु शरीर में जहर न फैले इस लिए माता यह कठोरता करते नहीं हिचकती। इसी प्रकार राम भी जन के हित मे उसके उस मान को हरते है जो उसकी समस्त यातनाओं का मूल कारण है। तुलसी के अनुसार मोह दूर होगा अहंता के मूलोच्छेद होने पर और अहंता का मूलोच्छेद होगा राम की कृपा से अविरल भक्ति प्राप्त करने पर।

अतएव तुलसी संशय द्वन्द्व के लिए जो उपचार बतलाता है और जिस उपचार द्वारा अपने काव्य के पात्रों का मोह नाश होता हुआ दिखलाता है वह है अहंकार त्याग कर राम की शरण मे आना और संसार को राममय जानना।

तर्क वितर्क मे तुलसी को क्यों ऐसी गहरी अनास्था है? उसकी रचना के जीवन मुक्त पात्र क्यों ज्ञान का निरादर करके भक्ति को अपनाते है? ज्ञान और भक्ति का प्रश्न उसके लिए क्यों इतना महत्व पूर्ण है? क्योंकि बौद्धिक तर्क वितर्क वास्तव मे छिपी हुई अहन्ता है उस उधेड बुन, उस संकल्प विकल्प, उस संशय सन्देह की जडें, जिसके जाल मे फंस कर नारद, जयन्त, गरुण, काकभुशुंडि राम मे आस्था खो बैठते है, उनकी अहन्ता मे है उनके अहकार मे, उनके अहं मे जमी हुई विचार शैली की उस पृष्ट भूमि मे और आशा निराशा के उस द्वन्द्व मे जिनमे अह सतत रत और मग्न रहता है। अतएव प्रभु की कृपा का निश्चित चिन्ह है इस अहन्ता की गाठों का ढीला पडना और प्रभु अपनी कृपा मे यही करते है। वह सभी यातनाएँ, तपस्यायें लोक लोक मे भ्रमण इसी अहन्ता को विगलित करने वाली और विगलित करने के लिए है। वह शान्ति और स्थिरता और मग्नता जो इन पात्रों को मिलती है वह तो प्रभु की कृपा है किसी प्रयास, तपस्या का फल नही, परन्तु वह पर्दे और दीवारे जो उनको प्रभु के प्रेम साम्राज्य मे प्रवेश करने मे रोकती है अहन्ता की खडी की हुई हैं, अहन्ता अर्थात् आशा निराशा, बुरे भले, वाछनीय अवाछनीय का चारों ओर फैला हुआ संसार

जोग वियोग भोग भल मन्दा, हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू, संपति विपति करमु अरु कालू॥
धरनि धाम, धनु पुर परिवारू, सरगु नरकु जहं लग व्यवहारू।
देखिअ सुनिअ, गुनिअ मन मांही, मोह मूल परमारथ नाहीं॥

यह अकरण नही है कि अपनी अग्नि परीक्षा के बाद सशयात्माएँ जो वर मागती है वह न ज्ञान है न वैराग्य, न तत्वज्ञान न वे अनेको गुण जो जगत मे मुनियों को भी दुर्लभ है । वे हरबार माँगते है

अविरल भगति बिसुद्ध तन श्रुति पुरान जो गाव ।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव ॥
भगत कल्प तरु प्रनतहित कृपा सिंधु सुख दाम ।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ॥

उस अविरल भक्ति का रस पा जाने पर अहन्ता का उन्मूलन अवश्यम्भावी है और अहन्ता का नाश हो जाने पर इच्छाओं और कामनाओं का मनोरम संसार अदृश्य हो जाता है । एक अनिर्वचनीय सुख मे छोटी-मोटी लालसाएं तिरोहित हो जाती है ।

सोई सुख लवलेस जिन्ह वारक सपनेहुँ लहेउ
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्म सुखहि सज्जन सुमति

यह अविरल भक्ति की अवस्था निस्सन्देह भावनामय और अनुभव-गम्य है । बौद्धिक तर्क और विश्लेषण द्वारा अहन्ता के रोग का शमन नही हो सकता । एक अनुभव, एक जागरुकता जो तत्वत विचार मूलक नही है प्रयास, तर्क, विश्लेषण का स्थान ले लेती है । मन स्थिर होकर प्रेम मे परिपूरित हो जाता है मन विचार और तर्क की भूल-भुलैया मे बाहर निकल आता है और निश्छल, निष्कपट, निर्भय होकर अपने को प्रभु की शरण मे समर्पित कर देता है । यह शान्त, निरुद्विग्न, समरस, प्रेम प्रपूर्ण अर्पित हृदय ही वह महौषधि है जिसके द्वारा प्रभु मोह का नाश करते हैं । यही उनके प्रीति की रीति है ।

मोहतम के नाश हो जाने पर जो हृदय परिवर्तन, और मनोदशा होती है उसके सुन्दर रेखा चित्र मानस मे मिलते है ।

सुनि शिव के भ्रम भंजन वचना, मिटिगै सब कुतरक कै रचना ।
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती, दारुन असंभावना बीती ॥

ससिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी, मिटा मोह सरदातप भारी।
तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ, राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ॥

यह मनोदशा तो सती की है।

काकभुशुंडि अपने अनुभव का और विस्तार पूर्वक बखान करते है।

कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ दीन दयाल सकल दुख हरेऊ।
कीन्ह राम मोहि विगत बिमोहा, सेवक सुखद कृपा संदोहा॥
निज अनुभव अब कहउँ खगेसा, बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा।
राम कृपा बिनुसुनु खगराई, जानि न जाइ राम प्रभुताई॥
जाने बिनु न होइ परतीती, बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई, जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥

और गरुणा भी प्रेम मग्न हो कर ऐसा ही भाव प्रकट करते है।

राम चरन नूतन रति भई, माया जनित विपति सब गई।
मोह जलधि बोहित तुम भए, मो कंह नाथ विविध सुख दए,
जीवन जन्म सुफल मम भयऊ, तव प्रसाद संसय सब गयऊ॥

इन सभी विमोह से विमुक्त आत्माओं के अनुभव की कुछ विशेषताएं है, सभी का अनुभव निज अनुभव है, सभी तर्क की जगह प्रीति का सहारा लेते है, एक ऐसी प्रीति का जो नितनूतन है, मोह और सशय से मुक्त है और जो प्रभु की दया के फल स्वरूप उत्पन्न होती है। इस प्रीति के अभाव में वह संकल्प विकल्प जो अहंता और तर्क के संसार मे अवश्यम्भावी है और जो वस्तुत मोह जनित हैं अपना अस्तित्व खो देते है। परन्तु यह खोना और पाना तभी सम्भव है जब प्रीति प्रतीति पर स्थिर हो।

जानें बिनु न होइ परतीती, बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।

यह प्रतीति क्या है ? वह कौन सी प्रतीति है जिसके प्रभाव मे संशयात्माओं का हृदय परिवर्त्तन होता है ? निश्चित रूप मे यह प्रतीति उन व्याख्याओं के कारण नही होती जो शिव, काकभुंगुडि करते है। तुलसी स्पष्टत

इस प्रतीति का कारण एक ऐसी मनस्थिति बताता है जिसका आधार निज अनुभव और निज अनुभवों से उत्पन्न दृढ विश्वास है।

निज सुख बिनु मन होइ कि धीरा, परस कि होइ विहीन समीरा।

भारी तप करने पर भी सती के हृदय मे संशय बाकी ही रहता है। बहुत विद्वान और ज्ञानी होते हुए भी नारद मोह ग्रस्त हो ही जाते है भगवान के निकट होते हुए भी गरुड़ शकाओं के शिकार होते ही है। जन्म-जन्म मे अध्ययन और ज्ञानार्जन करते रहने पर भी काकभुशुडि के हृदय पर मोह के बादल छा ही जाते है और यह बादल छाए ही रहते है जब तक कि वे अपने को और ज्ञान और कर्तृत्व बुद्धि के उन मायावी सहारों को बिलकुल नहीं भुला देते जो उनकी शंकाओं के मूल कारण है। प्रत्येक शका ग्रस्त पात्र का मोह दूर होता है अपने को भुला कर कि मै देवी सती हूँ, मुनि नारद हूँ, विष्णु का वाहन गरुण हूँ, ज्ञानियो का शिरोमणि काकभुशुंडि हूँ। सब को यह प्रतीति होती है कि मेरी अहन्ता, ज्ञान का गर्व ही सब मे बडी बाधा थी प्रभु के उस प्रेम साम्राज्य मे प्रवेश करने की राह मे जिसने प्रेम और जागरूकता के अतिरिक्त और किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। वे सब एक झलक मे अपनी स्थिति और प्रभु से अपना सम्बन्ध समझ लेते है वे सब समझ जाते है कि उनके प्रश्नों का उत्तर है एक प्रश्न हीन प्रीति जो नित नूतन और नव जीवन दायिनी है। अतएव वे प्रभु के प्रेम साम्राज्य मे अपने सभी बाह्याडम्बर, अपनी सभी मान्यताए, अपने सभी विचार मूलक तर्कों के आवरण उतार कर प्रवेश करते हैं। उनको न कोई तर्क पेश करना है, न युक्ति सामने रखना है, न कुछ छिपाना है न कोई भय है और न कोई लालसा। युक्तियों, भयों, प्रश्नोत्तरों की दुनिया मे बाहर निकल कर ही वह प्रभु के प्रेम साम्राज्य में प्रवेश है और बिना किन्ही युक्तियों, शर्त्तो, साधनों के तत्काल उस सत्य से साक्षात्कार प्राप्त करते है जो उनके जीवन का परम सत्य हो जाता है। यह अनुभव निस्सन्देह वर्णनातीत है और जो वर्णनातीत है उसका वर्णन

करने की कवि कोई कोशिश भी नही करता। परन्तु यह चेतावनी देने की बडी कोशिश करता है कि वह क्षण जिनमे संशयों के बादल छूटते है तार्किक उपायो मे नही लाए जा सकते वे क्षण वस्तुत ऐसे अहंकार हीन आत्मविस्मृति के सृजनात्मक क्षण है जिनमे मन प्रेम और समर्पण द्वारा एक नित नूतन और द्वन्द्वहीन आनन्द प्राप्त करता है।

तुलसी का यह विश्वास केवल विशेष रूप से संशय ग्रस्त आत्माओं के विषय मे ही लागू हो ऐसा नही है। ऋषि, मुनि, साधक, ज्ञानी सभी प्रभु से साक्षात्कार होने के क्षणो मे आत्मविभोर अहन्ताहीन, कामनाहीन, विचारो की दुनिया से दूर, प्रेम रसमग्न अवस्था मे दिखाए गए है। अरण्यकाण्ड मे एक से एक ज्ञानी, तपस्वी ऋषि, मुनि प्रभु का दर्शन पाते है जो न जाने कबसे योग याग जप तप मे लगे रहे है। अत्रि, शरभग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य जैसे निष्ठावान्, ब्रह्म सुख निरत आगम निगम पारंगत ऋषियो से प्रभु की भेंट होती है परन्तु जब उनका प्रभु से साक्षात्कार का क्षण आता है तो उनकी बहुत कुछ वही दशा होती है जो सुतीक्ष्ण की होती है —

निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी, कहि न जाय सो दशा भवानी

उनकी सबकी प्राय यही भावना रहती है कि जो कुछ योग यज्ञ जप तप व्रत आदि भी मैने किये हों वह सब प्रभु को अर्पित करके बदले मे भक्ति प्रेम का वरदान माँग ले।

जोग जग्य जप तप व्रत कीन्हा प्रभु कहँ देइ भगति वर लीन्हा

मिलने के उन क्षणों मे सभी की यह भावना होती है कि मै नितान्त अकिंचन हूँ सभी सहारे सभी भरोसे जो मैने बाँध रक्खे थे सारहीन और व्यर्थ थे। यदि कोई सहारा है तो 'एक बानि करुनाधिान की सो प्रिय जाके गति न आन की'। सुतीक्ष्ण तो मानो उस अविरल, अनन्य, प्रेम पूरित भावमय प्रणति के सजीव मूर्ति ही हों जो तुलसी का प्रभु से साक्षात्कार के विषय मे अपना निजी और सुनिश्चित अनुभव है

मोरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं, भगति विरति न ज्ञान मन मांहीं
नहिं सतसंग जोग जप जागा, नहिं दृढ़ चरण कमल अनुरागा
एक बानि करुनानिधान की सो प्रिय जाके गति न आन की
होइहै सुफल आज मम लोचन देखि बदन पंकज भव मोचन
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी कहि न जाइ सो दसा भवानी

इस मिलने मे जो 'निर्भर प्रेम' 'अतिशय प्रीति' और आत्म विभोर दशा है वही तुलसी के अनुसार वास्तविकता म सम्पर्क स्थापित करने का अचूक उपाय है । यह दशा यदि प्राप्त की जा सकती है तो न प्रवचनों से, न मेधा से, न बहुश्रुत होने से, न उन परम्परागत उपायों से जिनसे अहन्ता और कर्तृत्व बुद्धि का पुट होता है । प्रेम, प्रणति और प्रभु की अहेतुकी कृपा मे आस्था ही उस अवस्था को प्राप्त करने का राजमार्ग है । वसिष्ठ जैसे प्रवीण, मेधावी, बहुश्रुत मुनि भी जब रामायण की कथा के अन्त मे प्रभु की विनती करते है तो इसी निष्कर्ष की पुष्टि करते है ।

ग्यान दया दम तीरथ मज्जन जहँ लग धर्म कहत श्रुति सज्जन
आगम निगम पुरान अनेका पढ़े सुने कर फल प्रभु एका
तव पद पंकज प्रीति निरन्तर सब साधन कर यह फल सुन्दर

उनका भी निश्चित मत है कि

सोइ सर्वग्य तग्य सोइ पंडित सोइ गुनगृह विग्यान अखंडित
दच्छ सकल लच्छन युत सोई जाके पद सरोज रति होई

तुलसी की तर्क और प्रयास मे इस अनास्था का एक विशेष कारण है । तर्क और प्रयास मे जो अहंकार है जो इच्छाओं, महत्वाकाक्षाओं को तृप्त करने की उत्सुकता है, जो पृथकता है वह उस मनोदशा की सृष्टि करने मे सहायक नही जिसमे प्रभु जन को अपना प्रेम देते है । वसिष्ठ मुनि के ही शब्दों मे

छूटइ मल कि मलहि के धोए घृत कि पाव कोइ वारि विलोए
प्रेम भगति जल विनु रघुराई अभिअंतर मल कबहुँ न जाई

यदि भ्रान्ति और क्लेश का समस्त संसार अहं की ही रचना है, उस मन की भाग दौड की रचना, जो लोलुप है, शंकाग्रस्त है, भयाकुल है तो यह लोलुपता, उद्वेग, सशय, भय, अभ्यंतर मे जमी हुई मैल मे और मैल मलने से दूर नही होगा। तर्क और प्रयास द्वारा प्रभु का स्नेह पाने की आशा वैसी है जैसे पानी को मथ कर घी निकालने की आशा। तुलसी ने अपने जीवन मे यह अवश्य अनुभव किया होगा कि तर्क और प्रयास का मार्ग एक अन्धी गली है जिसमे केवल संशय और संघर्ष जन्म पाते है। संशय ग्रस्त मन की वह सारी कुतर्की रचना जिनमे मनुष्य डूबता उतराता रहता है सिवाय और कुतर्क और अधिकतर संघर्ष के और किसी ओर नही ले जा सकते। इस सारी रचना और सारे सघर्ष की जड मे है हृदय की वह रिक्तता, हृदय का वह सूनापन जो प्रेम और भक्ति से खाली है। मन को प्रभु की ओर खोलकर और उसको प्रभु के प्रेम से भरने देकर ही मनुष्य इस मायावी रचना के चक्रव्यूह से निकल सकता है। अतएव स्वभावत तुलसी की प्रयास और संघर्ष के उस भ्रामक जगत् मे जिसकी तह मे अहन्ता और तर्क है गहरी अनास्था है।

इसी अहन्ता और मदान्धता की पराकाष्ठा को वह उन निशाचरों और दानवों के जीवन मे दिखाता है जो प्रेम और शान्ति की उन शक्तियो से संघर्ष मे आते है जिनके द्वारा राम अपने भक्तों को भव बन्धनों से मुक्त करते है। तुलसी के राम चरित मानस के वातावरण की यह एक विचित्र विशेषता है कि राम की कृपा और अपार अनुकम्पा की परिधि के बाहर कोई भी नही है देवता, मनुष्य, दानव, दैत्य सभी राम की व्यापक दया के पात्र है 'सब मम प्रिय सब मम उपजाए'। पापो को उसमे चाहे जितना निन्दनीय और त्याज्य दिखाया गया हो परन्तु

पापियों का उद्धार बराबर होता है। ऐसा जान पडता है जैसे कवि जान बूझ कर यह दिखा रहा हो कि प्रीति और समर्पण द्वारा जन प्रभु के कितने निकट आता जाता है, और अहन्ता, मदान्धता, घृणा और विद्रोह से अपने को आनन्द और मुक्ति के मार्ग मे कितना दूर करता जाता है। जो संघर्ष, भय और आशंका का जीवन निशाचर व्यतीत करते है उसका मूल कारण है जीवन के प्रति उनका दृष्टि कोण और वास्तविकता की ओर से जान बूझ कर आखें मीच लेना। वह सब अहकार, अभिमान बल, वैभव, प्रतिहिसा के पुजारी है। प्रेम और शान्ति की जिन रश्मियो का राम प्रसार करते है उनके तामसिक भौतिक मूल्यो से ढके हृदय उन मूल्यों से अछूते रह जाते है। अपने भौतिक बल के नशे मे चूर हो कर वे प्रेम और समर्पण की हसी उडाते है। फिर भी हर बार जब कवि इन निशाचरो के नेताओं का जिक्र करता है यह दिखाए बिना नही रहता कि अपने हृदय के अन्तस्तल मे उनको भी यह झलक मिलती है कि मै चराचर जगत् के स्वामी की शक्ति और उसके प्रभाव से टक्कर लेने जा रहा हूँ। खर दूषण के सहार का समाचार जब रावण को मिलता है तो उसकी पहली प्रतिक्रिया तो यही होती है

खर दूषण मोहि सम बलवंता, तिन्हहिं को मारइ बिनु भगवन्ता।
सुर रंजन भंजन महि भारा, जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा।
तौ मैं जाइ वैरु हठि करऊँ, प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।
होइहि भजनु न तामस देहा, मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा।

जब रावण राम को छलने के लिए मारीच को आदेश देता है तो मारीच का भी पहला उत्तर यही होता है।

तेहिं पुनि कहा सुनहु दससीसा, ते नर रूप चराचर ईसा।
तासों तात वयरु नहि कोजै, मारे मरिअ जिआएँ जीजै।

अपनी सेना का संहार होता देख जब रावण कुम्भकर्ण को जगाता है और उसे रणक्षेत्र मे उतरने को कहता है तो कुम्भकर्ण भी एक बार उसे यही परामर्श देता है ।

भल न कीन्ह तै निसिचर नाहा, अब मोहि आइ जगाएहि काहा ।
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना, भजहु राम होइहि कल्याना ।

रण क्षेत्र मे उतरते उसे उल्लास होता है कि मै राम के दर्शन पाकर लोचन सुफल करूँगा ।

स्याम गात सरसीरुह लोचन, देखौं जाइ ताप त्रय मोचन ।

सत्य की यह झलकियाँ इन राक्षसों को उनकी कठिन घडियों मे केवल उनके अन्तस्तल मे ही नही मिलती । उनको ऐसे सदाशय परामर्श दाता भी मिलते है जो उनकी कुतर्की मति और पैशाचिक परिस्थिति पर प्रकाश की किरणें डालते है । हनुमान, अगद, विभीषण, मन्दोदरि सभी रावण को वास्तविकता से परिचित करने की भरसक कोशिश करते है ।

परन्तु सत्य की यह झलकियाँ जो निशाचरों को मिलती है केवल क्षणिक होती है उनके जीवन और कार्य व्यापार पर वे कोई प्रभाव नही डालती । वे न केवल इन सत्य की झलकियों से आखे चुराते है वरन् उनसे सीधे सघर्ष मे आते है । अहकार, भौतिकता, पाशविकता का उन पर ऐसा भूत सवार रहता है कि मन्त्र मुग्ध की भाति वह अपने नारकीय जीवन की विवशताओं से वाहर आने मे असमर्थ है । ऐसा जान पडता है जैसे कवि जान बूझ कर निशाचरों की सजीव मूर्तियाँ तैयार करके दिखाना चाहता हो कि वह कौन सी रुकावटें है जो हमको प्रभु से सम्पर्क मे आने मे रोकती है । यह रुकावटें है उनका अहंकार, उनका प्रमाद, उनके हृदयों पर जमी हुई भौतिक मूल्यों की वह पर्तें जिनके कारण वह अपने हृदयो को राम की ओर खोल नही पाते । अपने पशुबल, पराक्रम द्वारा सिद्धिया प्राप्त कर सकने की अहन्ता मे

उन्हे ऐसा गहरा विश्वास है कि वह राम और उनके साथी उन भालुओं, बन्दरो की स्वभावत: हंसी उड़ाते है जिनके एक मात्र सम्बल है राम मे प्रेम, निश्छलता और आत्मसमर्पण । प्रेम और भक्ति के उन मूल्यो का जिनमे कवि का पूर्ण विश्वास है घृणा और अहंकार की उन शक्तियों स जिनके घमण्ड मे निशाचर हरदम चूर रहते है ऐसा सीधा संघर्ष साहित्य के पन्नों मे शायद ही कही और मिले जैसा तुलसी के रामायण मे मिलता है । यह वह आधार भूत संघर्ष है जिसके कारण मानव जीवन युग युग मे अभिशप्त रहा है और जिसके रहस्य को भेदने की जिज्ञासा कवि को भी अपने जीवन मे बराबर रही । वह राम रावण युद्ध के वर्णन मे कभी आसुरी ना के पशुबल को घटा कर पेश करने की कोशिश नही करता । पशुबल का वाह्य रूप कितना भयंकर और आतक जमाने वाला हो सकता है इसका बडा सजीव रूप लकाकाण्ड के उन स्थलों से आता है जहाँ रावण के दुर्दमनीय महारथी सेनापति कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि कुछ समय के लिए तो ऐसा जान पडता है कि राम के अनुयायियो को परास्त करके ही छोड़ेंगे । यह आतंक उन देवताओं और राम के ।उन अनुचरो के मनो को भी डावॉडोल किए बिना नहीं रहता जो राम के विजय की हृदय से कामना करते है । विभीषण जब रावण को अपने पशुबल के शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित देखता है तो उसके भी मन मे शंका होती है कि बिना रथ और सामरिक साधनों के राम कैसे रावण पर विजय पावेंगे ।

रावनु रथी, विरथु रघुबीरा-देखि विभीषन भयऊ अधीरा ।

और स्वभावत वह राम से पूछता है ।

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना-केहि विधि जितब वीर बलवाना ।

और राम का उत्तर इस समस्त सुरासुर संग्राम की असलियत को प्रकाशित कर देता है ।

सुनहु सखा कह कृपा निधाना, जेहि जय होइ सो स्यंदन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका, सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल विवेक दम परहित घोरे, छमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजनु सारथी सुजाना, विरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचण्डा, बर बिग्यान कठिन कोदण्डा।
अमल अचल मन त्रोन समाना, सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद विप्र गुर पूजा, एहि सम विजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जाके-जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ॥

कहा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो वीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर ॥

रण भूमि के बीच धर्ममय रथ और वास्तविक विजय के मूल मंत्र की यह व्याख्या अकारण नहीं और न यही अकारण है कि तुलसी युद्ध वर्णन में बार-बार यह दिखाता है कि निशाचरो का प्रधान और अन्तिम अस्त्र है अपनी मायावी शक्तियो का उपयोग। तुलसी के मन मे इस सघर्ष का अर्थ स्पष्ट है रावण उन तामसिक और मोहान्ध प्रवृत्तियों और शक्तियों का प्रतीक है जो 'मै तै मोर की मूढता' मे फंसी है और उस सहज सरल प्रीति और प्रणति की राह मे बाधक है जिनके द्वारा मानव राम की कृपा का भागी होता है। राम की कृपा के भागी सब है—रावण कुम्भकर्ण, मेघ-नाद सभी। जब वे देह त्याग करते है और उनका अपनी अहन्ता मे विच्छेद होता है तो वह सारा छल कपट, वह सारा माया का राज्य, जिसके वशवर्त्ती होकर वे वास्तविकता से आजन्म सघर्ष मे आते रहे उनकी आँखों के आगे से ओझल हो जाता है। कुम्भकर्ण देह त्यागता है तो

तासु तेज प्रभु वदन समाना, सुर मुनि सबहि अचंभव माना।

और शिव जो इन समस्त घटनाओं के टिप्पणीकार है ठीक ही कहते है।

निसचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंद मति जे न भजहिं श्रीराम ॥

रावण की मृत्यु पर भी यही होता है और मन्दोदरी ठीक ही कहती है :—

अहह नाथ रघुनाथ सम कृपा सिंधु नहि आन।
जोगि वृन्द दुर्लभ गति तोहि दीन्ह भगवान्॥

स्पष्टत राम का जो चित्र कवि के सामने है वह एक ऐसे व्यापक निर्विकार मुक्ति देने वाले प्रभु का है जो मनुष्यो, देवताओ, निशाचरों का विविध स्तरों पर तम नाश और उद्धार करते है जो कृपासिंधु है जो क्षमा, कृपा, समता द्वारा ही पतितों का उद्धार करते है।

यह असम्भव है कि प्रभु पापियों के पापमय कृत्यों का परिच्छेद समाप्त करके उनको भूल जायं। वह पतित पावन, व्यापक, निर्विकार मुक्ति देने वाले चराचर जगत के स्वामी न होगे यदि पापियो के साथ सिवाय उस प्रेम और अहेतुकी कृपा के कोई अन्य व्यवहार करे जो उनका स्वभाव और अपनी बान है। अतएव इस समस्त संघर्ष के भी पीछे कवि का जो एकमात्र अभिप्राय है वह यह दिखाना कि निशाचरों का भी उद्धार प्रभु उन्हो तरीको से करते हैं जिनसे देवताओ और ऋषियों और नर बानरों का। उनका भी उद्धार प्रीति की रीति से ही होता है बिमुख हो या उन्मुख, प्रभु की कृपा को जन तभी प्राप्त करता है जब उसकी प्रीति प्रतीति पर आधारित होती है। भरत, लक्ष्मण, हनुमान, शिव रामरस मग्न, निर्भय निश्चिन्त इसी कारण है कि उनको अपने निर्मल हृदयों मे उस प्रेम की प्रतीति निरन्तर बनी रहती है जिनमे उनका अन्तर पनपता है। राम के प्रेम से पृथक उनका न अपना कोई अस्तित्व है न अपनी कोई आकाक्षाएँ जिनकी पूर्ति की इच्छा उनको उद्विग्न करे। इसके विपरीत संशय द्वन्द्व मे फँसे हुए पात्रों की यह विशेषता है कि वह अपनी पृथकता बनाए रखने के लिए उत्सुक और प्रयत्नशील रहते है, उनकी अपनी वैयक्तिक, अहंकार पूर्ण इच्छाएं और योजनाएं है। यह इच्छाएं कभी कभी अत्यन्त मनोरम रूप धारण करके उनको छलती हैं परन्तु मनोरम होने के कारण वह कम विनाशकारक नही हो जाती। तुलसी तो इस विनाशकारी

पृथकता और अहंकार का जो हमको छलती है एक ही उपाय जानता है और बताता है। निश्छल हृदय से राम की कृपा मे विश्वास—'साधन सिद्धि रामपद नेहू'।

अतएव हम देखते है कि कवि ने प्रभु का स्वरूप और प्रभु के प्रीति की रीति दरसाने मे बार बार इस बात पर जोर दिया है कि प्रभु की कृपा अहेतुकी है, निश्छल, सरल प्रेम पर वे रीझते है, जो जितना असहाय है उसके उतने ही अधिक निकट है—'निदरि गनी आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई'। राम सनेह सगाई के ढङ्ग निराले है

सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई,
केवट मीत कहे सुख मानत बानर बन्धु बड़ाई।
थके देव साधन करि सब सपनेहु नहिं देत दिखाई,
केवट कुटिल भालु कपि कौनप किये सकल संग भाई।

इन उक्तियो मे केवल भावुकता की बाढ़ नही है। कवि अपने प्रभु को इसी रूप मे देखता है। उपाय और फल, प्रयास और परिणाम के कठघरों मे हम ऐसे जकड़े है कि इस सील सनेह की गहराइयों को नही पाते। तुलसी सशय द्वन्द्व सघर्ष के जीवन की यातनाओं को देख चुका था और उनको देख चुकने के बाद ही इस परिणाम पर पहुँचा था कि सरल मन और पूरी श्रद्धा और विश्वास मे अपने को प्रभु के चरणों मे अर्पित कर देना ही प्रभु की कृपा प्राप्त करने का परम साधन है। भरत के हृदय की भाव भूमि, लक्ष्मण की चरण रति, हनुमान का सेवा भाव, शिव की अडिग आस्था, शबरी, गीध, केवट की सरल प्रणति इन्हीं को वह साधन सिद्धि सब कुछ मानता था। उसके अनुसार प्रभु मूर्ति दर्शन का आवश्यक परिणाम है जीवन में परिवर्त्तन ही नही, एक नए जीवन मे प्रवेश, एक रसमय, प्रेममय, आनन्दमय जीवन मे प्रवेश। ऐसे आनन्दमय, राममय जीवन की भी रूप रेखा तुलसी ने बड़ी रुचि के साथ खीची है। इस जीवन का मूलाधार कोरी नैतिकता नहीं है। उसका प्रभु मूर्ति दर्शन से अभिन्न सम्बन्ध है।

पांचवां अध्याय

राममय रहनि

कबहुँक हौं इन रहनि रहौंगो

मानस की समस्त कथा और कवितावली, विनयपत्रिका के सभी उद्‌गारों मे उस जागृत, समर्पित जीवन की मनोरम झाकिया देखने को मिलती है जिसको तुलसी मानव जीवन की परम सार्थकता मानता था। इस राममय जीवन की रूप रेखा खीचने के लिये एक ओर तो उसने भरत, लक्ष्मण, हनुमान के सजीव और अर्थपूर्ण चित्र खीच कर अपने अन्तस्तल की गहरी आस्थाओ को प्रकट किया है और दूसरी ओर अनेक ऐसे प्रभावपूर्ण प्रसंगो की सृष्टि की है जिनमे राममय जीवन का रहस्य खुल जाय। शवरी को नवधा भक्ति के लक्षण बताने या लक्ष्मण को भक्ति के साधन समझाने या गरुड की शंकाओं का समाधान करने मे उसका एक मात्र उद्देश्य यही है कि राममय जीवन का स्वरूप प्रकट हो जाय। परन्तु हम इन दोनों मे से किसी प्रकार के चित्रो का ठीक अर्थ नही समझ पाते। भरत, लक्ष्मण, हनुमान के चरित्रो को हम उस सम्पूर्ण अन्तर्दर्शन और अन्यतम अनुभूति के आलोक मे नही देख पाते जिनको प्रकाश मे लाने के प्रयास मे कवि ने उनके चरित्रो का निर्माण किया है। दूसरी ओर शवरी, लक्ष्मण, काकभुशुडि से संबधित ज्ञानवार्त्ताओं का भी हम ऐसा संकुचित, शाब्दिक, भावशून्य अर्थ लगाते हैं कि बहुत अंश मे उस मर्मस्पर्शी अनुभूति से बचित रह जाते हैं जो कवि की रचनाओं की पृष्ठभूमि मे एक प्रभाव, एक अनवरत धारा के रूप मे निहित और व्याप्त है। सच तो यह है कि वह भक्ति भी जिसकी चर्चा तुलसी पग पग पर करता है केवल उन

भागवत के उद्धरणों, नारदीय सूत्रों और अध्यात्म रामायण के श्लोकों के प्रकाश मे नहीं समझी जा सकती जिनका साक्ष्य देने के तुलसी साहित्य के आलोचक इतने आदी है। इसका सीधा कारण यह है कि तुलसी की भक्ति भावना अपनी है। उसके लिये अपने हृदय की अनभुति ही अन्तिम और एक मात्र प्रमाण है उस आनन्दमय रसमय, राममय जीवन का जिसकी उपलब्धि उसके जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता और माग थी। ऐसे निज ज्ञान और निज अनुभव पर आश्रित जीवन ज्योति का रूढिगत, परम्परागत भक्ति सम्बन्धी मान्यताओं से मेल बैठाकर उसको भागवत् या अध्यात्म रामायण की प्रतिच्छाया मात्र समझना आलोचना सम्बन्धी सूझ बूझ का पूरा दीवालियापन है। परन्तु हुआ यही है कि टिप्पणी कारों ने तुलसी की मौलिक अनभूति के रस को प्रचलित धार्मिक अथवा दार्शनिक शब्दावलियो की भूल भुलैया म पडकर खो दिया है। ऐसा करने म तुलसी की रचनाओ के टिप्पणीकारों को सुविधा भी रही है क्योंकि तुलसी ने अपनी रचनाओ मे उन परम्परागत शब्दावलियों और उद्धरणों का जो भारतीय दर्शनशास्त्र के चलते सिक्के है कही कही प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया है। विशेष रूप से उन स्थलों पर जहा नवधा भक्ति का निरूपण करते हुये उसने अध्यात्म रामायण आदि प्राचीन ग्रन्थों की पंक्तियों पर पंक्तिया उद्धृत कर दी है यह समझ बैठना कि यह तो परम्परागत शास्त्रीय भक्ति की प्रतिच्छाया मात्र है बहुत आसान हो जाता है। परन्तु वह भक्ति जो तुलसी की कृतियों का जीवन प्राण है और जो कवि के निजी जीवन और निजी अनुभव पर शत प्रतिशत आधारित है भक्ति मार्ग जैसी वर्गीकृत, निर्धारित सीमाओं मे बाध कर नही रक्खी जा सकती। उसके सजीव रूप का फिर से निर्माण हम तभी कर सकते है जब सूचियों और परिभाषाओं से बाहर निकल कर यह समझने की कोशिश करें कि वह कौन सी खोज है जिससे कवि प्रेरित है और प्रेरणा मे अन्तर होने के कारण रूढिगत धारणाओं और कवि के दृष्टिकोण मे क्या अन्तर आ जाता है। मानस के चरित्रों

द्वारा प्रभु की जो मूर्ति कवि ने निखारी है उसकी चर्चा हम अन्यत्र कर चुके हैं। भक्ति निरूपण सम्बन्धी व्याख्याओं से जो चित्र निखरता है उसमें इस बात की पुष्टि होती है कि तुलसी की भक्ति एक दृष्टिकोण है, रहने का एक ढंग है, निश्चिन्तता, निर्भयता आत्मीयता की एक खोज है जो मानव जीवन की युग युग की विवशताओं और विषमताओं को दूर करने का मार्ग आलोकित करती है।

भक्ति का एक निरूपण तो शबरी की तुष्टि के लिये प्रभु ने मानस के अरण्य काण्ड मे किया है। शबरी के मन मे उठता है मै अधम, जाति हीन, कुलहीन स्त्री, जडमति, भला भगवान् की कृपा और भक्ति की अधिकारिणी कैसे हो सकती हूँ और प्रभु राम अपनी पहिली ही बात मे उन सब कृत्रिम मापदन्डों का खोखलापन प्रकट कर देते है जो हमारी नजरो मे इतने चढ़े रहते है और जिन्हे हम इतना महत्व देते है।

जाति, पॉति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, परिजन, गुन चतुराई।
भगति हीन नर सोहइ कैसा, बिन जल बारिद देखिअ जैसा॥

जाति पाति, कुल, धर्म, बडाई, धन, बल, परिजन, गुन चतुराई सभी उजले बादल है, देखने म शोभनीय परन्तु भीतर से खोखले, क्यो कि वारिद की सार्थकता उसके भीतर भरे हुये रस मे है और मानव जीवन की सार्थकता उस रसानभूति मे जिसे भक्ति कहते है। यह भक्ति क्या हे? तुलसी के ग्रन्थों मे अनेक प्रसंगों मे राम ने स्वयं इस भक्ति के लक्षण बताये है। शबरी को बताई हुई नवधाभक्ति इस प्रकार है

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं, सावधान सुनु धरु मन माहीं
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा दूसरि रति मम कथा प्रसंगा
गुर पद पकज सेवा तीसरि भगति अमान,
चौथि भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान।
मत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा, पंचम भजनु सो वेद प्रकासा
छठ दम सीलु बिरति बहुकर्मा, निरत निरन्तर सज्जन धरमा

सॉतव सम मोहि मय जग देखा, मोतें अधिक संत करि लेखा
आठवँ जथा लाभ संतोपा, सपनेहु नहिं देखइ परदोषा
नवम सरल सब सन छल हीना मम भरोस हिय हरप न दीना
नव महुँ एकहु जिनके होई नारि, पुरुष सचराचर कोई
सोई अतिसय प्रिय भामिनि मोरे सकल प्रकार भगत दृढ़ तोरे

यह सूची अनेक अशो म अध्यात्म रामायण ने दी हुई नवधा भक्ति की सूची से मेल खाती है। कुछ अंश इस सूची के भागवत् के निम्नांकित श्लोक से मिलते जुलते है

श्रवणं कीर्तन विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्।

इस सूची के प्राय सभी लक्षण उस प्रसंग मे भी गिनाये गये है जहा राम ने लक्ष्मण को ईश्वर, जीव, माया के स्वरूप तथा ज्ञान वैराग्य के साधनों को समझाते हुये भक्ति की श्रेष्ठता बताई है :

जाते वेग द्रवउँ मैं भाई, सो मम भगति भगत सुखदाई
सो सुतंत्र अवलम्ब न आना, तेहि आधीन ग्यान विग्याना
भगति तात अनुपम सुख मूला, मिलइ जो संत होंइ अनकूला
भगति कि साधन कहऊं बखानी, सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी
प्रथमहि विप्र चरन अति प्रीती. निज निज कर्म निरत श्रुति रीती
एहि करि फल पुनि विषय बिरागा, तब मम धर्म उपज अनुरागा
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाही. मम लीलारति अति मन माहीं
संत चरन पंकज अति प्रेमा. मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा. सब मोहि कहं जानै दृढ़ सेवा
मम गुन गावत पुलक सरीरा गद्गद गिरा नयन वह नीरा
काम आदि मद दंभ न जाकें, तात निरन्तर बस मैं ताके

बचन कर्म मन मोहि गति, भजनु करहिं निःकाम
तिन्हके हृदय कमल महुँ, करउं सदा विश्राम

श्री राम किस प्रकार के लोगों के हृदय मे निवास करते है इस संम्बन्ध मे वाल्मीकि ऋषि ने जो विविध धाम बताए हैं उनसे भी अनेक उन लक्षणो की पुष्टि होती है जिनकी चर्चा शवरी और लक्षमण की बताए गये नवधा भक्ति की सूचिओं मे आते है ·

सुनहु राम अब कहंउ निकेता, जहां वसहु सिय लखन समेता
जिनके श्रवन समुद्र समाना, कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे, तिन्ह के हिय तुम्ह कँह गृह रूरे
लोचन चातक जिन्ह करि राखे, रहंहिं दरस जलधर अभिलाषे
निदरहिं सरित सिन्धु सरभारी, रूप बिन्दु जल होहि सुखारी
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक, बसहु बन्धु सिय सह रघुनायक

जसु तुम्हार मानस विमल हंस न जीहा जासु
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हिय तासु ॥

काम कोह मद मान न मोहा, लोभ न छोभ न राग न द्रोहा
जिनके कपट दम्भ नहि माया तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया
सबके प्रिय सबके हितकारी, दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी
कहंहि सत्य प्रिय बचन विचारी, जागत सोवत सरन तुम्हारी
तुम्हहिं छॉड़ि गति दूसरि नाहीं राम बसहु तिनके मनमाहीं
जननी सम जानहिं परनारी, धनु पराव विषते विष भारी
जे हरषहिं पर संपति देखी, दुखित होंहि पर विपति विसेषी
जिन्हहि राम तुम प्रान पिआरे, तिन्हके मन सुभ सदन तुम्हारे

स्वामि सखा पितु मातु गुरु जिन्ह के सब तुम्ह तात
मन मन्दिर तिनके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ।

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं, विप्र धेनु हित संकट सहहीं
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका, घर तुम्हार तिन्ह कर मनु टीका
गुन तुम्हार, समुझइ निज दोषा, जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा
राम भगत प्रिय लागइ जेहीं, तेहि उर बसहु सहित वैदेही
जाति पाँति धनु धरम बड़ाई, प्रिय परिवार सदन सुखदाई
सब तजि तुम्हहिं रहइ उर लाई, तेहि के हृदय रहहु रघुराई
सरगु नरकु अपवरगु समाना, जहँ तहँ देख धरें धनु बाना
करम वचन मन राउर चेरा, राम करहु तेहि के उर डेरा

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु
बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेहु ।

स्वयं तुलसी की भी आस्था इन गुणो मे कितनी गहरी थी इसका आभास विनय के इस मर्मस्पर्शी पद से मिलता है —

कबहुंक हौं इन रहिन रहौंगो ।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपाते संत सुभाव गहौंगो ।१।
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सो कछु न चहौंगो
परहित-निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ।२।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
विगत मान, सम सीतल मन, परगुन, नहिं दोष कहौंगो ।३।
परहरि देह जनित चिन्ता, दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि भक्ति गहौंगो ।४।

इन विस्तृत सूचियों और निरूपणों की तह मे वह प्रेरणा, विश्वास और जीवन के प्रति दृष्टिकोण छिपा हुआ है जो तुलसी का अपना विश्वास और दृष्टिकोण है और यदि हम तुलसी के मन और हृदय की थाह लेना चाहते है तो हमे इन सूचियो और निरूपणों की जरा नजदीक से छान-बीन करनी चाहिये और यह देखना चाहिये कि वे राममय रहनि की रूपरेखा के समझने मे कितने सहायक है । यदि हम इन सूचियों मे आने

वाले लक्षणों अथवा साधनों का सुविधा के लिए वर्गीकरण करना चाहे तो वह तीन वर्गों में विभक्त किये जा सकते है। पहिले वर्ग मे तो वह गुण या लक्षण आएंगे जो ऊपर मे आचरण विषयक जान पड़ते है। अमान, दम, सील, विरति, सज्जन धर्म न निरतर निरत रहना, यथा लाभ संतोष, परदोष न देखना, व्यवहार मे सबमे सरल, छल हीन होना लक्ष्मण गीता की शब्दावली म काम आदि मद दम्भ न होना, एक शब्द मे निरत निरन्तर सज्जन धर्मा होना।

दूसरे वर्ग मे वह गुण आएंगे जो सत्संग सम्बन्धी है—सन्तन्ह कर संगा, गुरुपदपकज सेवा, मोते अधिक सत करि लेखा, लक्ष्मण गीता के शब्दो मे संत चरन पंकज अति प्रेमा।

तीसरा वर्ग उन लक्षणों का होगा जिनका सीधा सम्बन्ध भगवान मे स्थित जीवन से है—रति मम कथा प्रसगा, मम गुन गान, मंत्र जाप मम, मोहि मय जग देखा तथा सर्वोपरि मम भरोस ; लक्ष्मण गीता के शब्दों मे मम लीला रति, मम गुन गावत पुलक सरीरा, निह काम भजन, भगवान ही को गुरु पितु मातु बन्धु पति देवता जानना तथा वचन, करम, मन मोरि गति। पहिली बात जो इन लक्षणों और वर्गो के विषय मे ध्यान रखने की है वह यह है कि राम मे स्थित जीवन के यह लक्षण मात्र है, राम म स्थित् जीवन उनसे कही अधिक एकरस, व्यापक गहरी अवर्णनीय अवस्था है जिसके वाह्य लक्षणों की सूचियाँ इन प्रसंगों मे आई है। शबरी और लक्ष्मण, जिनको यह लक्षण गिनाए गये है स्वय राम मे रमे है राममय रहनि रह रहे है। बचन करम मन से राम के अतिरिक्त और कोई गति उनके लिए नही है। संकेत मात्र से वह उस अवस्था मे रस मग्न हो सकते है जिसके वाह्य लक्षणों का दिग्दर्शन मात्र इन सूचियों मे हुआ है। उस प्रणति, रसमग्नता, कृतार्थता का चित्र उगलियों पर गिनती गिनाकर नही किया जा सकता जिसके यह गुण

द्योतक है। गिनती तो नौ की ही है परन्तु गिन कर देखिए नौ मे कितने अधिक लक्षण है जो बीच २ मे आ जाते है और जिनकी चर्चा किए बिना भक्ति का वह स्वरूप नही बनता जो कवि लाना चाहता है। दूसरी बात यह कि भक्ति एक अवस्था है एक मनोदशा, एक रसानुभूति जो विभाजित करके विविध साधनो के रूप मे नही देखी जा सकती। वह एक स्वतंत्र दशा है जो किन्ही विशेष योग्यताओ पर अवलम्बित नही है प्रवचनों द्वारा, मेधावी होने से, बहुश्रुत होने से ही आप उस अवस्था को प्राप्त नही कर सकते :—

सो सुतंत्र अवलम्ब न आना, तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना।

तीसरे यह कि सभी लक्षण और साधन प्रतिच्छाया या प्रतिबिम्ब मात्र है उस 'मम भरोस के, जिसके वशवर्ती वह सभी लक्षण और साधन है जिनका वर्गीकरण और सूचीकरण हम करते रहते है।

साधारण रूप से जब हम भक्ति के पहले वर्ग के लक्षणों पर दृष्टि डालते है तो हमारी एक बार यही धारणा होती है कि दम, सील, बिरति, यम नियम, यथा लाभ सन्तोष, पर दोष न देखना, ईर्ष्या द्वेष से रहित होना केवल आचार सम्बन्धी नैतिक गुण है जो संसार प्राप्ति के लिए उतने ही आवश्यक है जितने भगवत्प्राप्ति के लिए। उनका आस्तिकता या आध्यात्मिक जीवन मे कोई सीधा सम्बन्ध नही। श्रवण कीर्तन वाली नवधा भक्ति मे तो इनका कही नाम भी नही है अवश्य ही तुलसी ने इनका समावेश सूची मे लोक सग्रह की दृष्टि से, लोगों का नैतिक सुधार करने के लिए किया होगा। यह धारणा अक्सर हमे भुलावे मे डाल देती है। हम इनको केवल सुन्दर नागरिकों के चरित्र निर्माण की दृष्टि से श्लाघनीय सज्जनोचित व्यवहार के लक्षण समझने लगते है और तुलसी के राममय, आनन्दमय रहनि से उनकी अभिन्नता नही देख पाते। और यह एक बहुत बडा दृष्टि दोष है जिसके कारण हम इन गुणों के रहस्य को छू नही पाते। यह गुण रामायणी कथा के प्राण है आनन्दमय जीवन

के साधन भी है और लक्षण भी, इनके बिना राममय जीवन सम्भव नही और राम मय जीवन के बिना इनका होना भी सम्भव नही। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है विनय पात्रिका के ऊपर दिए हुए पद 'कबहुँक हौ इन रहनि रहौगो, मे इन गुणों की भाव पूर्ण चर्चा कवि ने की है।

जथा लाभ संतोष सदा, काहू सो कछु न चहौंगो
परहित-निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निवहौंगो
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो
बिगत मान, मम सीतल मन, परगुन नहिं दोष कहौंगो
परहरि देह जनित चिन्ता, दुख सुख सम बुद्धि गहौंगो

ऊपर मे देखिए तो यहां भी जथा लाभ संतोष, दम, परदोष न देखना, परुष बचन मे विचलित न होनां, मान रहित होना, सज्जनोचित सरल व्यवहार की शिक्षा दिखलाई देगी। परन्तु पद के भाव, उसकी आत्मा, उसकी प्रेरणा के साथ सहृदयता और सहानुभूति स्थापित करके देखिये, क्या उसमे आचार व्यवहार अथवा नैतिक गुणों की तालिका मात्र है ? पद का सारा जोर और संकेत उस अवस्था, उस जीवन की ओर है जो सज्जनता और नैतिकता मात्र से कही ऊँचा, सम्पूर्ण, रसमग्नता से भरपूर जीवन है। जब कवि कहता है यथा लाभ सन्तोष तो उसका अभिप्राय केवल यही नही है कि जो कुछ मिल जाय उस पर सन्तोष करना, वह चाहता है काहू सों कछु न चहौगो—एक चाह रहित, इच्छारहित जीवन, एक ऐसा जीवन जो अहंकार और स्वार्थ को भूल कर निरन्तर परहित निरत है। कटु बचन सुन कर बिचलित न होना, दूसरे के दोषो को न देख कर उनके गुणों को देखना बहुत अच्छे गुण है परन्तु यह जीवन की वास्तविकताएं तभी हो सकते है जब अहता का भाव न रह जाय। अतएव तुलसी की प्रार्थना वास्तव मे है विगत मान, समसीतल मन के लिये, उसकी व्याकुलता इस कारण है कि

कब 'परहरि देह जनित चिन्ता, दुख सुख समबुद्धि गहौगो । यह देह बुद्धि का न होना, यह दुख सुख चिन्ता से मुक्त जीवन व्यतीत करना, प्रयास द्वारा नैतिक गुणों का संग्रह करना नही है ।

यह चाह रहित, इच्छारहित, मान रहित, देह जनित चिन्ता रहित जीवन ही वह जीवन है जिस ओर तुलसी हमे ले जाना चाहता है । राम मय रहनि और इस प्रकार के जीवन मे अभिन्नता स्थापित करने मे वह नही थकता, विविध प्रसंगो से तरह तरह मे ऐसे जीवन ही को मानव जीवन की सार्थकता बताता है और ऐसे ही जीवन को न केवल राममय रहनि का साधन वरन् उसका निश्चित लक्षण बताता है । राम उसी के हृदय मे बसते ही है जिसके हृदय म यह गुण हों.

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु
बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेहु ।

और यही वह आधार भूत, मौलिक प्रश्न हमारे सामने आता है जो निश्चय ही तुलसी के लिए भी जीवन का सबसे महत्व पूर्ण प्रश्न था । ऐसा जीवन कहा तक और कैसे सम्भव है ? बडा से बडा यथार्थवादी भी उस निर्भीकता से यह नही कहेगा जैसे तुलसी कहता है कि मनुष्य क्या ऋषि मुनि देवताओ के लिये भी ऐसा जीवन केवल शिक्षा, अभ्यास और प्रयास द्वारा प्राप्त कर सकना असम्भव है ।

नारद भव विरंचि सनकादी, जे मुनि नायक आतम वादी
मोह न अंध कीन्ह केहि केही, को जग काम नचाव न जेही
तृस्नां केहि न कीन्ह बौराहा. केहि कर हृदय क्रोध नहि दाहा
ग्यानी तापस सूर कवि कोबिद गुन आगार
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्ह न एहि संसार
श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता वधिर न काहि
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि
गुन कृत सन्निपात नहिं केही. कोउ न मान मद तजेउ निवेही

जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा, ममता केहि कर जस न नसावा
मच्छर काहि कलंक न लावा, काहि न सोक समीर डोलावा
चिन्ता साँपिन को नहिं खाया, को जग जाहि न व्यापी माया
कीट मनोरथ दारु सरीरा, जेहि न लाग घुन को अस धीरा
सुत वित लोक ईषना तीनी, केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी
यह सब माया कै परिवारा, प्रबल अमित को बरनै पारा
शिव चतुरानन जाहि डेराहीं, अपर जाव केहि लेखे माहीं

व्यापि रहे संसार महु माया कटक प्रचड
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषड

माया के इस प्रचंड कटक को हम केवल अपनी कोशिशों से बल पूर्वक तोड सकते तो क्या कहना था

जो निज मन परिहरै बिकारा
तौकत द्वैत जनित संसृत दुख, संसय सोक अपारा

यदि मन समस्त बिकारो का परित्याग स्वय कर सकता तो इच्छा, मान, मोह, चिन्ता हृदय से निकल जाने पर फिर दुख, संशय, शोक के लिये ठिकाना ही कौन सा बाकी रहता। परन्तु मन ऐसा कर पाता नही ! होता तो यह है कि जैसे काठ के बीच पुतली और सूत मे वस्त्र पहले ही से विद्यमान रहते है उसी प्रकार मन मे भी कामनाएँ छिपी रहती है और उपयुक्त अवसर और जलवायु पा कर प्रकट हो जाती है

विटप मध्य पुतरिका, सूत मंह कंचुकि बिनहि बनाए
मन मंह तथा लीन नाना तनु, प्रकटत अवसर पाए

इन मन मे दबी छिपी इच्छाओं, कामनाओं को कुचलने, उनको दबाने, उनको निर्मूल करने के बडे उपाय बताए है दार्शनिकों ने, कर्म कान्डियों ने, ज्ञान विज्ञान के महारथियो ने। तुलसी ने इन सब मतावलम्बियो की कृतियो को छाना था केवल बौद्धिक तार्किक दृष्टि से नहीं उनकी परीक्षा करके और वह ललकार कर अपना अनुभव बताता है।

तप तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो
पायेहि पै जानिबो करम फल भरि भरि वेद परोसो
आगम विधि जप जागकरत नर सरत न काज खरोसो
सुख सपनेहु न जोग सिधि साधन रोग वियोग धरो सो
काम क्रोध, मद लोभ मोह मिलि ग्यान विराग हरो सो
विगरत मन सन्यास लेत जल नावत आम घरो सो

तप, तीर्थ, उपवास, दान, यज्ञ आदि कर्मो द्वारा सुख पाने की कोशिश आप जी मे आवे तो करके देखिये। शास्त्रोक्त विधि विधान सब कुछ करने पर भी कोई काम तो खरा नही उतरता। योग, सिद्धि, साधनो मे सुख तो स्वप्न मे भी नही मिलता और रोग वियोग बने ही रह जाते है सारा ज्ञान वैराग्य, काम, क्रोध, मद, लोभ मिल कर हर लेते है और यदि कहिए कि ससार से छुटकारा पाने के लिये सन्यास लेते तो वह इसी प्रकार है जैसे कच्चे घडे मे पानी भरने की कोशिश करना, न कच्चा घडा पानी का भार सम्हाल सकता है न कच्चा मन कामनाओ के वेग को सह सकता है।

अतएव इस प्रश्न को कि हम उस राममय जीवन को, उस स्थायी आनन्द और रसमग्नता को कैसे पाएँ जिसका अभाव मानव जीवन का सबसे बडा अभाव है वह तरह तरह से उठाता है और अपने अनुभवों के प्रकाश म उनको तौलता है उनका समाधान करता है। एक परम्परा गत और अत्यन्त समादृत उत्तर इस प्रश्न का यह है कि हम ज्ञान द्वारा ही माया मोह से मुक्ति पा सकते है।

तुलसी ज्ञान को उचित महत्व देता है दार्शनिकों ने जो जो उदाहरण देकर जगत को मिथ्या बतलाया है उनको वह भी दुहराता है उनसे काम लेता है।

स्रग मँह सर्प विपुल भ्रम दायक प्रकट होइ अविचारे
बहु आयुध धरि, बल अनेक करि हारहि मरइ न मारे

निज भ्रमते रविकर संभव सागर अतिभय उपजावै
अवगाहत वोहित नौका चढ़ि कबहूँ पार न पावै
तुलसिदास जग आपु सहित जब लगि निमू'ल न जाई
तब लग कोटि कलप उपाय करि मरिय तरिय नहि भाई

अज्ञान के कारण यदि माला मे भयंकर सर्प का भ्रम आप के मन मे बसा हुआ है तो चाहे जितना हथियार और बल का प्रयोग कीजिए उसको नही मार सकते अथवा अपने ही भ्रम मे सूर्य किरणों से उत्पन्न मृग जल का सागर यदि आप को अत्यन्त भयकर जान पडता है तो ऐसे कल्पित सागर मे डूबा हुआ जन किश्ती जहाज मे चढकर कितना भी निकलने की कोशिश करे कभी बाहर नही आ सकता । अतएव आपे-सहित जब तक संसार निर्मूल न हो जायगा तब तक कोटि कोटि यत्न करके मर जाइए पार न पाइएगा ।

जब लगि नहि निज हृदि प्रकास अरु विषय आस मन माहीं
तुलसि दास तब लगि जग जोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं ।

अतएव आत्मबोध की आवश्यकता को तो तुलसी भी वैसे ही मानता है जैसे पेशेवर दार्शनिक परन्तु यह आत्मबोध हो कैसे ? यह जानकर उसको संतोष नही होता कि संसार भ्रम है और हम भ्रमग्रस्त है वह तो इस भ्रम से बाहर निकलने के लिए छटपटाता है उसके हृदय के अन्तस्तल से जो पुकार बार बार निकलती है वह यही ? हे हरि कवन जतन भ्रम भागै ? यदि हम अन्धकार में है तो यह अन्धकार तो अन्धकार मे बैठ कर दीपक की बाते करने से दूर नही होगा ।

वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन भव-पार न पावै कोई,
निसि गृह मध्य दीप की बातन्ह तम निवृत्त नहिं होई ।

वाक्य ज्ञान मे आप चाहे जितने भी निपुण हों वाक्य ज्ञान मे निपुणता के जहाज मे चढ कर आप भवसागर पार नही कर सकते

अन्धेरी कोठरी मे बैठे बैठे दीपक की बातें किया कीजिए अन्धकार तो वैसा ही बना रहेगा। तुलसी जहाँ ज्ञान की उपयोगिता को स्वीकार करता है वहाँ वह यह भी जानता है कि ज्ञान वाक्य ज्ञान मात्र नही, कुछ होना है केवल कुछ जानना नही ? और जो कुछ जानना है वह हो कर ही जाना जा सकता है। यह तो सही है कि बिना जाने स्थायी भक्ति नही हो सकती परन्तु अपने पुरुषार्थ से हम वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लें यह बात तुलसी के गले से नही उतरती ? उसका दृढ विश्वास है कि।

सोई जानै जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनन्दन, जानहि भगत भगत उर चदन।

अतएव वह ज्ञान सम्बन्धी वाद विवाद नासमझों के लिए छोड देता है और एक सयाने समझदार की तरह शरणागति की शरण लेता है। प्रभु ही । प्रार्थना करता है कि मुझे अन्धकार म ज्योति की ओर ले चल। इसलिए ज्ञान के असली तथ्य को जो जानते है वह तो शरणागति की ही शरण लेते है क्योंकि भक्ति और प्रेम के ही प्रभाव न ज्ञान की आंख खुलती हे।

ज्ञान ही के समान तुलसी विरति क प्रश्न को भी उठाता है। विरति बहुत आवश्यक है सुखमय जीवन के लिए। मनुष्य नित्य प्रति देखता है कि प्रत्येक इच्छा पूर्ति एक दूसरी इच्छा की पूर्ति की लालसा उत्पन्न करती हे और वह स्थिति कभी नही आती जब हम यह कह सकें कि हमारी इच्छाओं की पूर्ति की इच्छा ऐसी तृप्त हो गई की अब कोई इच्छा शेष नही रही। यह देखते हुए कि तृष्णा, चाह, इच्छा का जीवन स्वभावत. उद्वेग, अशाति, चिन्ता और भय का जीवन है कौन न मानेगा कि उनसे छुटकारा पाना हमारा परम कर्त्तव्य है। परन्तु विरति हो कैसे ? तुलसी के अनुसार विरति भी भगवत्कृपा से ही सम्भव है और विरति के सम्बन्ध मे भी तुलसी के अपने विचार हैं। तुलसी

की विरति एक नकारात्मक विरति नही जिममे मानसिक तनाव हों और जिसके आधार केवल निषेध और अवरोध हो ? तुलसी की विरति तो एक उच्चतर रति, राम-चरण-रति का स्वभाविक और अवश्यम्भावी परिणाम है। उस उच्चतर रति का आनन्द पाकर मान, मोह, चाह अपने आप ही क्षीण हो कर निर्जीव हो जाते है क्यों कि राममय रहनि से उनका कोई मेल नही खाता।

भोजन करिय तृपिति हित लागी, जिमि सो असन पचवै जठरागी।
असि हरि भगति सुगम सुखदाई, को अस मूढ़ न जाहि सुहाई।

राम चरण रति होती तो है आनन्द प्राप्ति के लिए परन्तु इस रति मे प्रविष्ट हो कर भौतिक प्रवृत्तियाँ अपने आप ही जलकर खाक हो जाती है जैसे भोजन किया तो जाता है तृप्ति के लिए परन्तु उस भोजन को जठराग्नि अपने आप ही बिना हमारी चेष्टा या प्रयास के पचा लेती है। ममता, राग का अस्तित्व मिटाने, उनका मूलोच्छेद करने के पीछे तुलसी नही पड़ता वह उनको प्रभु के प्रेम मे केन्द्रित करना चाहता है क्योकि वह जानता है कि प्रभु स्वयं कितने लालायित रहते है ऐसे जन के प्रेम को ग्रहण करने को जो अकिंचन है और जिसका एकमात्र सहारा प्रभु मे भरोसा है।

जननी जनक बंधु सुत दारा, तनु धनु भवन सुहृद परिवारा
सबकै ममता ताग बटोरी, मम पद मनहि बाँध बरि डोरी
समदरसी इच्छा कछु नाहीं, हरष सोक भय नहि मन माहीं
अस सज्जन मम उर बस कैसे, लोभी हृदय बसइ धनु जैसें

समस्त ममताएँ एकत्रित करके यदि राम चरण मे लगा दी जॉय

या जग में जहँ लगि या तन की प्रीत प्रतीति सगाई
तें सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहि सिमिटि इक ठाँई

तो उनका परिष्कार, शोध, उदात्ती करण तो स्वत: प्रभु की कृपा से होने लगेगा।

लोभ मोह मद काम क्रोध रिपु फिरत रैन दिन घेरे
तिनहिं मिले मन भयो कुपथ-रत, फिरै तिहारेहिं फेरे
दोष निलय यह विषय सोकप्रद कहत संत स्रुति टेरे
जानत हूँ अनुराग तहाँ अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे
विष पियूष सम करहु अगिनि हिम, तारि सकहु बिनु बेरे
तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहौं हेरे
यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुवीर भरोसे तेरे
तुलसिदास यह विपति बाँगुरो तुमहि सों बनै निबेरे।

श्रुतियों, स्मृतियों मे विषय वासना से मुक्ति प्राप्त करने के चाहे जो उपाय दिये हुए हों परन्तु उनको दूर करने का उत्तरदायित्व जिसने माया, मोह की रस्सियों का जाल बिछाया है उसी पर है :—

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों
साधन धाम विबुध दुरलभ तनु मोहि कृपा करि दीन्हों ॥
कोटिहुँ मुख कहि जाय न प्रभु के एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं दीजै परम उदार ॥
विषय वारि मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
ताते सहौं विपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक ॥
कृपा डोरि बनसीपद-अंकुस परम प्रेम मृदु चारो।
एहि विधि वेगि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो ॥
हैं स्रुति विदित उपाय सकल सर केहि केहि दीन निहोरै।
तुलसिदास यहि जीव मोह रजु जोई बाँध्यो सोइ छोरै ॥

विषय वारि से मन मीन अपने से तो अलग होना नही चाहता उसको तो परम प्रेम का मृदु चारा ही अपनी ओर खींच सकता है कृपा डोर लगाकर प्रभु स्वयं उसको विषय वारि से बाहर निकालें तो निकल जाय। प्रभु के लिए तो यह सरल है

विष पियूष सम करहु अगिनि हिम तारि सकहु बिनु बेरे।

परन्तु जन इस विषय मे जो कुछ कर सकता है वह यही कि

नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह बहैहों

अतएव सच पूछिये तो विरक्ति के लिए आवश्यकता है एक उच्चतर अनुरक्ति की—एक ऐसे अगाध अनुराग की जिसको पाकर छोटे मोटे राग अनुराग फीके पड़ जायँ।

जा पर तृन लौं वारिए राग विराग सुहाग
बड़े भाग सों पाइए सो अगाध अनुराग ॥

अतएव तुलसी यदि दम, सीलु, विरति, मैत्री समबुद्धि, निश्छल व्यवहार को भक्ति का अभिन्न अंग मानता है तो वह यह भी जानता है कि यह गुण मनुष्य मे तभी आवेंगे जब वह रामोन्मुख होगा और राम की कृपा के अतिरिक्त और किसी आस भरोस के भुलावे मे नही पड़ेगा। भक्ति के साधनों की गिनती चाहे जो हो सब साधनों की आधार शिला है राम की कृपा मे अगाध और अडिग विश्वास। दुर्भाग्यवश विश्वास को डिगाने वाले भुलावे बहुत है और इन्ही भुलावों मे ही पडकर हम उस राममय जीवन मे प्रवेश नही कर पाते जिसमे अनन्त प्रेम, रस, सौदर्य, आनन्द और निश्चिन्तता है। हमारी सबसे बड़ी भूल तो यह है कि हम अपनी उस विचार शैली, उस दृष्टि कोण को नही बदल पाते जिसके हम आदी हो गए है। राममय जीवन मे प्रवेश करने के मार्ग मे जो हम सबसे बड़ी कठिनाई खड़ी करते है वह यह कि इस जीवन मे प्रवेश करने के पहले हम उसी प्रकार शर्तें लगाते है, उसी प्रकार सौदा करते है जिस प्रकार हम भौतिक जीवन मे रात दिन किया करते है। जप तप, अभ्यास प्रयास, विधि विधान का पालन इसलिए करते है कि उनके फलस्वरूप किसी कामना की पूर्ति हो, या फल की प्राप्ति हो, या इष्ट की सिद्धि हो। एक तो यह कोई सौदा न हुआ, तुलसी के शब्दों में हाथी स्वान लेवा देई हुई। जन्म भर देवी देवताओं, वासव विरंचि, की हाथी जैसी भारी सेवा कीजिए, योग-याग, व्रत नियम कीजिए और उसके बदले में पाइएगा क्या ? कुत्ते के समान तुच्छ किसी मनोकामना की पूर्ति।

पहले तो हाथी देकर कुत्ता लेने वाला सौदा ही मूर्खता पूर्ण है हम चाहते तो है स्थायी आनन्द निश्चिन्तता, अभय और सौदा करते है किसी कामना पूर्ति का। दूसरे आशा निराशा, संकल्प विकल्प, संघर्ष तनाव की मनोदशा बनी ही रही तो हमारी पूर्व स्थिति मे कोई परिवर्तन भी नही हुआ हम जहाँ थे वही रहे। व्यापार की वस्तुयें वदल गइ व्यापार और बड़े पैमाने पर हो गया परन्तु संघर्ष और तनाव की मनोदशा बनी ही रही। तुलसी जिस विशुद्ध प्रणिपात को राममय रहनि का एक मात्र साधन और सिद्धि मानता है उस मे किसी प्रकार की व्यापार बुद्धि नही है। तुलसी भक्त और भगवान के बीच जो सहज स्नेह स्थापित करना चाहता है उसकी रूप रेखा कुछ दूसरी ही है। मूल मे इस सहज स्नेह मे जन की ओर से समर्पण और प्रभु की ओर से कृपा ही चाहिए।

तुलसी सहज सनेह राम बस—और सबै जल की चिकनाई।

इस सहज सनेह मे हमारी ओर से कोई माग नही और कोई शर्त नही।

यह विनती रघुवीर गुसांई।
और आस विश्वास भरोसो, हरौ जीव जड़ताई।
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि सिधि विपुल बड़ाई।
हेतु-रहित अनुराग राम पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई॥
कुटिल करम लै जाइ मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई
तहँ तहँ जनि छिन छोह छांड़िये कमठ अंड की नांई॥
या जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु हीं सों होहिं सिमिट इक ठांई।

और प्रभु की कृपा तो पूर्णतया हेतु रहित है ही। प्रभु की कृपा यदि अहेतुकी न हो तो फिर जन के लिए कोई गति ही नही। तुलसी का यह विश्वास कि राम अकारण ही कृपालु होते है बल्कि जो जितना ही

दीन, विवश अहंकार शून्य होता है उस पर उतने ही ज्यादा द्रवित होते है तुलसी साहित्य मे एक प्रकाश स्तम्भ की भाँति जगमगाता है ।

जो जप जाग जोग वर्जित केवल प्रेम न चहते ।
तौ कति सुर मुनिवर विहाय ब्रज गोप गेह वसि रहते ॥

बल्कि कभी कभी तो वह जरा बांकपन के साथ भी कहता है कि यदि सुकृती, गुणी संत जनो ही तक प्रभु की कृपा सीमित होती

तौ कत विप्र व्याध, गनिकहि तारेहु कछु रही सगाई ?

हृदय की सरलता और पूर्णतया विवश होकर आत्म समर्पण यही वह गुण है जिन पर द्रवित होकर प्रभु वह कृपा करते है जिनके फलस्वरूप जन कृत-कृत्य होकर भक्ति पथ पर अग्रसर होता है ।

यहै जानि चरनन्हि चित लायो ।
नाहिन नाथ अकारन को हितु तुम समान पुरान स्रुति गायो ॥
सुर, मुनि, मनुज, दनुज अहि किन्नर मैं तनु धरि सिर काहि न नायो ।
जरत फिरत त्रय ताप पाप बस, काहु न हरि करि कृपा जुड़ायो ॥
जतन अनेक किए सुख कारन हरि पद बिमुख सदा दुख पायो ।
अब थाक्यो जल हीन नाव ज्यों देखत बिपति जाल ज[illegible]यो ॥
मों कहँ नाथ बूझिये यह गति सुख निधान निज पति [illegible]यो ।
अब तजि रोष करहु करुना हरि तुलसिदास सरनाग[illegible]यो ॥

यह जान जाना कि हमारे त्रयताप, हमारी विवशता हमारी जल-हीन नाव की दशा हरि पद विमुख होने, सुख निधान की विस्मृति के ही कारण है और यही जान कर चरनन चित्त लाना, रामोन्मुख होना पर्याप्त तय्यारी है राम की अहेतुकी कृपा का पात्र होने के लिए ।

रामोन्मुख हो जाने पर तो

यह छर भार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहों,

राममय रहनि के मार्ग मे एक अन्य कल्पित कठिनाई यह है कि हमने उसको एक अत्यन्त कठिन, कष्टसाध्य, मानव पहुँच से बाहर,

ऐसा द्वन्द्व-रहित, ध्यानरत, विषय-विरत विविध प्रलोभनों और परीक्षाओं मे खरा उतरने वाले जीवन और प्रभु की कृपा मे कार्य कारण का सम्बन्ध है और प्रभु की कृपा से ही ऐसी मनोदशा वनती भी है ।

सर्वभूत हित निर्व्यलोक चित भगति प्रेम दृढ़ नेम एक रस ।
तुलसिदास यह होइ तबहि जब द्रवै ईस जेहि हतो सीस दस ॥

यह अवस्था जीवन मे उतर आई, प्रभु ने भक्त को अपना लिया इसकी कसौटी भी तुलसी ने दी है ।

तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै
जेहि सुभाव विषयनि लाग्यो तेहि सहज नाथ सों नेह छाँड़ि
छल करिहै
अपनो सो स्वारथ स्वामी सो चहुँ विधि चातक ज्यों एक टेक
ते नहिं टरिहै
प्रभु-गुन सुनि मन हरिषिहै, नीर नयननि ढरिहै
तुलसिदास भयो राम को विस्वास प्रेम लखि आनँद उमगि
उर भरिहै

'आपने मुझे अपनाया यह तो मै तभी समझूँगा जब मन 'फिर परिहै' उसको एक नई मोड़ मिलेगी वह विषयो से विमुख हो आपकी ओर उन्मुख होगा उसी तीव्र आसक्ति और अनुराग से, छल कपट छोड़ कर सहज स्वभाव मे आप मे लगेगा जैसे विषयों मे लगा करता था, चारों ओर से मन हटा कर आप ही मे अपनी भलाई देखेगा और इस भाव मे ऐसी अनन्यता से दृढ रहेगा जैसे चातक एक टेक से स्वाति के विन्दु के लिए टेक लगाए रहता है । स्वीकारात्मक पक्ष मे जब मेरा मन आप के गुणानुवाद सुन कर प्रफुल्लित हुआ करेगा हर्षातिरेक से 'नयननि नीर ढरिहैं' तभी विश्वास होगा और इस बात की पुष्टि होगी कि मैं आप का हुआ और आपने मुझको अपनाया, उस प्रेम को पाकर आनंद उमँगि उर भरि हैं ।

कैसी स्वीकारात्मक, आत्मीयता म पूर्ण रस मग्नता की स्थिति है यह ! इस सगुण, भाव पूर्ण, तरल आर्द्रता की स्थिति को तुलसी और किसी घटिया नीरस स्थिति से बदलने को तय्यार नही।

करम धरम स्रम फल रघुबर बिनु, राख कैसो होम, ऊसर कैसो वरसो।

और तुलसी स्वीकार करेगा तो उसी रस बिन्दु, स्वाति विन्दु को जिसकी रूप रेखा उसने अपनी सभी रचनाओ मे खीची है और जिसको उसने अनुभव के स्तर पर अपने जीवन मे उतारा है।

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास
जौ घन वरषै समय सिर जौ भरि जनम उदास
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस

यह अनन्यता ही तुलसी का सम्बल है और इस सम्बल का सहारा लेकर उसे दाएं-बाए देखना नही है और कोई अन्य छाया या आश्रय ढूँढना भी नही है।

एक अंगमग अगम गवन कर विलमु न छिन-छिन छाहैं,
तुलसी हित अपनो अपनी दिसि निरुपधि नेम निबाहै।

अतएव वह द्वन्द्व रहित, निश्चिन्तता, निर्भयता और प्रभु से आत्मीयता का जीवन जो तुलसी के अनुसार वास्तविक जीवन हैं एक साथ ही साधन भी है और साध्य भी, लक्षण भी और लक्ष्य भी। उसे एक उच्चस्थ धार्मिक आदर्श अथवा दुस्साध्य नैतिक विधि विधान समझ कर एक दूर मे ही प्रणाम् करने की चीज़ बना कर हमने तुलसी के स्नेहसिक्त, करुणा पूर्ण मंगल सन्देश के स्वरो को नही पहचाना। राममय जीवन का सन्देश और उसका आमन्त्रण वह उन धर्म गुरुओं की भाँति नहीं देता जो एक कठोर योगयाग, जप तप के बदले किसी अज्ञात भविष्य मे मुक्ति और निर्वाण की आशा दिलाते है। उसके स्वरों मे कृतकृत्यता और उल्लास है,

उसकी शरणागति मे निश्चिन्तता और आह्लाद है, उसके राममय रहनि मे शंसय, संघर्ष और भविष्य के भय से मुक्त नित नवीन रस से पूरित जीवन का स्वाद है। उसका दृढ विश्वास है कि राम के शरण मे आकार लोक पर लोक की सभी ससस्याएं अपने आप ही हल हो जाती है, संसार का दुर्गम मार्ग अपने आप ही सुगम और सुखकर हो जाता है, काल और कर्म की सभी चिन्ताएँ दूर हो जाती है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम उस जीवन मे प्रवेश करने मे न तो घबराएं और न इस दुराशा ही को मन मे रहने दें कि शायद राम से प्रथक संघर्षमय जीवन की धूल फाँकने से कुछ हाथ भी लग सकता है। तुलसी कोरे विचारकों की भाँति जीवन मे अलग-अलग कटघरे नहीं बनाता, न जीवन को भौतिक और आध्यात्मिक विभागों मे बाँट कर भौतिक स्वार्थो की पूर्ति के एक और आध्यात्मिक परमार्थ के कोई दूसरे साधन बताता है। उसका निश्चित मत है कि वास्तविक जीवन की केवल एक माँग है नित नूतन आनन्द की और उसका केवल एक मार्ग है प्रेम, प्रणति, और प्रेमास्पद से अभिन्नता। यह प्रेम और अभिन्नता कोटि-कोटि जन्मों के कल्मष को दूर करके ताप को हरने वाली और सम्पूर्ण आनन्द मंगल की स्रोत है।

जो पै चेराई राम को करतो न लजातो,
तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न विकातो।
जपत जीह रघुनाथ को नाम नहि अलसातो,
वाजीगर के सूम ज्यों खल खेह न खातो॥
जो तू मन मेरे कहे राम नाम कमातो,
सीतापति सनमुख सुखी सब ठाँव समातो।
राम सोहाते तोहि जो, तू सबहिं सोहातो,
काल करम कुल कारनी कोऊ न कोहातो॥
राम-नाम अनुराग ही जिय जोरति आतो,
स्वारथ परमारथ पथी तोहिं सब पतिआतो।

कैसा स्वस्थ, आश्वासनपूर्ण, मंगलमय, संकल्प विकल्प से मुक्त है वह प्रीति के प्रतीति से राम मे रमा हुआ जीवन, जिसकी सम्भावना कवि इसी अमर अगम मानव शरीर मे देखता है। उस जीवन मे प्रवेश करके न उसे लोक परलोक की चिन्ता है न काल कर्म की, न स्वार्थ परमार्थ की। जिस रस मग्न जीवन की वह वर्त्तमान मे ही, इस जगत मे ही सम्भावना चित्रित करता है उसके होते हुए उसे मृत्यु जन्म आवागमन सब हँसी खेल लगते है :—

भलो लोक परलोक तासु जाके बल ललित-ललाम को।
तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को॥

लोक परलोक, यमपुर सुरपुर की चिन्ता वे करें जो तर्क संशय, हानि लाभ के प्रश्नों मे माथा पच्ची करके वर्त्तमान् मे त्रस्त और भविष्य के विषय मे चिन्ता ग्रस्त रहते है। तुलसी को यह चिन्ताएं नही सताती क्योंकि वह वर्त्तमान में और इस जगत के जीवन मे ही प्रभु की कृपा वारि से तृप्त है —

को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर पर धाम को।
तुलसिहि बहुत भलो लागत जग जीवन राम गुलाम को॥

इस बहुत भले राममय जीवन का सन्देश ही तुलसी साहित्य का सच्चा सन्देश है इस सन्देश का स्वर न तो एक धर्म गुरु का है, न आचार्य का न सुधारक का, यह स्वर आदि से अन्त तक आनन्द विभोर साधक का है जिसने वास्तविकता से सीधा सम्पर्क स्थापित किया है, जिसके लिए इस जीवन से अलग और कोई जीवन नही है जिसने इस जीवन से अलग जीवन की कुरूपता, कल्मष, क्लेश, उद्वेग और मृत्यु जैसी जड़ता को नज़दीक से देखा है।

———

छठवाँ अध्याय

सत्संगति

मति कीरति गति भूति भलाई
जब जेहि जतन जहां जेहि पाई
सो जानब सत्संग प्रभाऊ
लोकहु वेद न आन उपाऊ

तुलसी की रचनाओं मे इस बात के लिए पर्याप्त अन्तर्साक्ष्य है कि तुलसी ने अपने जीवन का एक अत्यन्त मूल्यवान भाग गुरु के चरणों मे बैठकर और अपने समय के महान् पण्डितों के ससर्ग में रह कर नाना पुराण निगमागम के अध्ययन और मनन मे व्यतीत किया। जिस स्वतंत्रता और अधिकार पूर्ण ढंग से तुलसी प्राचीन ग्रन्थों के भावों और उक्तियो का उपयोग करता है, उनको जाँचता है, उन पर अपना रंग चढाता है उसमे इसमे कोई संदेह नही रह जाता कि जहाँ तक निगमागम पुराणो की जानकारी का प्रश्न है वह प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों का पारंगत पण्डित था, उन ग्रन्थों के लिए उसके मन मे आदर था, उन ग्रन्थों के विचार उसकी उगलियो पर नाचते थे ; फिर भी यह स्पष्ट है कि पाडित्य मात्र से, पाण्डित्य के प्रति उपयुक्त आदर भाव रखते हुये भी वह सतुष्ट नही था। वह तो जीवन की खोज मे था, एक ऐसे जीवन की खोज मे जिसमे निश्चिन्तता हो, निर्भयता हो, आत्मीयता हो, रसानुभूति हो। ज्ञान, योग, जप, तप, विधि विधान सभी के दरवाजे उसने खटखटाए, सभी दरवाजो मे होकर आने जाने के बाद वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि जो सत्य निज अनुभव पर आश्रित नही, अपने जीवन मे उतारा नही गया वह निरा वाक्य ज्ञान है बालू की सी भीत है।

अमान, विरति, समबुद्धि, सरलता जिनकी चर्चा हमने पिछले परिच्छेद मे की है राममय जीवन के उतने ही लक्षण भी हैं जितने कि साधन परन्तु साधन के नाम से तो तुलसी सत्संग ही को महत्व देता है। तुलसी के अनुसार सत्संग ही आनन्द और कल्याण की जड़ भी है और फल भी उसकी तुलना मे अन्य साधन तो केवल आकर्षक पुष्पों की छटा मात्र है आनन्द का स्रोत और आनन्द फल का रस तो सत्संग ही मे है

सतसंगति मुद मंगल मूला, सोई फल सिधि सब साधन फूला।

वह आलोचक जो इस सत्संग को केवल परम्परागत, सम्प्रदायों द्वारा प्रतिपादित गुरु पूजा मानते है तुलसी के जीवन दर्शन से पूर्णतया अपरिचित है। अनुभव की वह विभोरता, खोज के उस उल्लास को वह छू नही पाते जो सत्संग सम्बन्धी तुलसी के उद्गारों मे फूटी पडती है।

यह सत्संग है क्या? ओर उन सन्तों की पहचान क्या है जो आनन्द और मंगल के मार्ग के प्रकाश स्तम्भ है? इन प्रश्नों के उत्तरों मे तुलसी साहित्य भरा पटा है और इन उत्तरों का निश्चित संकेत यह है कि तुलसी किसी सीमित, संकुचित, परम्परागत, रूढिगत अर्थ मे सत्संगति शब्द का प्रयोग नही करता। उसके लिए सत्संग सत्य का साक्षात्कार है सत्य से सम्पर्क का एक ऐसा क्षण जिसमे ज्ञान की आखें खुल जाती है, एक ऐसा आध्यात्मिक अनुभव जिससे अधिक सुखकर और कोई अनुभव नही हो सकता।

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक संग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।

स्वर्ग अपवर्ग के सभी सुखो को एक पलड़े मे रखिये और दूसरे पलड़े मे सत्संग के एक क्षण का सुख, फिर भी वह सभी अन्य सुख एक क्षण के सत्संग के सुख से हलके ही पड़ेंगे। एक बात जो हमको न भूलनी चाहिए वह यह कि जिस सत्संग की तुलसी चर्चा करता है वह अवश्य उसकी अपनी अनुभूति थी एक ऐसी मूल्यवान् अनुभूति जिसके कारण

उसके जीवन में गहरा परिवर्त्तन हुआ था। इस अनुभूति और परिवर्त्तन की प्रतिध्वनि उसकी रचनाओं मे जगह जगह पर बार बार सुनाई देती है। मानस मे जब वह उन दिनों की याद करता है जब उसने गुरु से सूकर क्षेत्र मे राम कथा सुनी थी तो कैसे आत्मनिरीक्षण से भरे. स्वरों मे वह सोचता है कि वह कथा जिसने उसके जीवन की कायापलट कर दी तब कैसी लगती थी और आगे चल कर सत्संग और अनुभूति के फल स्वरूप क्या अर्थ देने लगी

मै पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकर खेत
समुझी नहि तसि बालपन तब अति रहेऊँ अचेत

कैसी गहरी आत्मकथा है 'तब अति रहेऊँ अचेत' मे और कैसे फल फूल दिये है उन अंकुरों ने जिनकी स्थापना उसके गुरु, नर रूप हरि गुरु ने उसके हृदय मे की थी।

सेइ साधु गुरु समुझि सिखि राम भगति थिरकाइ
लरिकाई को पैरिवो तुलसी विसरि न जाई

न बचपन मे सीखा हुआ तैरना फिर कभी भूलता है न सच्चे सत्संग और सद्गुरु की सेवा से प्राप्त हुई शिक्षा। अनुभवों के परिपक्व हो जाने पर, विविध मत मतान्तरों की छान बीन कर चुकने पर, जब वह विरोधी मतों सम्प्रदायों, शास्त्रज्ञों के वाद विवादों से ऊकता जाता है तब भी गुरु का ही दिया हुआ उपदेश उसका मार्ग प्रदर्शन करता है, राम भरोस के राज डगर पर सुदृढ रखता है और विनु परतीति प्रीति की भूल भुलैयां मे खो जाने से बचाता है।

बहुमत सुनि बहुपंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोंहि लगत राज डगरो सो॥
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि फिरि पचि मरै मरो सो।
राम नाम वोहति भव सागर चाहै तरन तरो सो॥

अतएव सत्संग सम्बन्धी तुलसी के विचारों के पीछे उस की जन्म भर की अनुभूति है और जब वह कहता है 'सत्संगत ही फल सिद्धि है और सब साधन केवल फूल है' तब वह एक ऐसे मार्ग की ओर संकेत करता है जिस पर वह स्वयं आरूढ हो कर सफलीभूत हुआ।

परम्परागत गुरु प्रणाली मे गुरु प्राय: एक मान्यताप्राप्त गुरु है जिसका व्यापार ही है एक जगह बैठकर शिक्षा दीक्षा देना, चेले बनाना; तुलसी जिस बात पर जोर देता है वह आधुनिक धारणाओं के अनुसार शिक्षण प्रशिक्षण नही है। वह सही अर्थो में सत्संग है। जब कभी जहाँ कही सन्त जनों से सम्पर्क स्थापित हो और सत्य की पकड़ के लिए अनुकूल वातावरण हो वही सत्य के प्रभाव मे आना और प्रभाव को ग्रहण करना ही उसकी दृष्टि मे सत्संगति है। यह प्रभाव एक अनवरतधारा है जो प्रभु की कृपा के समान ही सतत प्रवाहित है। यह सही है कि बिना प्रभु की कृपा के न वह विवेक और सन्मति उत्पन्न होगी जिसके फलस्वरूप जन राममय जीवन मे प्रवेश कर सके और न उस सन्मति और विवेक को जागृत करने वाली सत्संगति ही प्राप्त होगी। परन्तु तुलसी प्रभु की कृपा और सत्संगति दोनों ही को अत्यन्त सुलभ बनाता है क्योंकि वह प्रभु के वरदहस्त को और सत्य की व्यापक सता को चारों ओर फैली देखता है। राम की कृपा मे यदि हम सत्य के ससर्ग मे आ गए तो वह हम को निर्मल, पवित्र कर ही देगा।

राम कृपाँ तुलसी सुलभ गंग सुसंग समान।
जो जल परै जो जन मिलै कीजै आपु समान॥

तुलसी ने सन्तों की जो रूपरेखा खीची है उससे यह समझने में अच्छी सहायता मिल सकती है कि सत्संग से उसका क्या अभिप्राय है। नारद ने जब श्री राम से सन्तों के लक्षण पूछे तो उनके प्रश्न के उत्तर मे श्री राम कहते है।

सुन मुनि संतन्ह के गुण कहउँ, जिन्हते मैं उनके बस रहउँ।
षट विकार जित अनघ अकामा, अचल अकिंचन सुचि सुख धामा
अमित बोध अनीह मित भोगी, सत्य सार कवि कोविद जोगी।
सावधान मानद मद हीना, धरी धर्म गति परम प्रबीना ॥

गुनागार संसार दुख रहित विगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं, पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं।
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती, सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती।
जप तप ब्रत दम संजम नेमा, गुरु गोविंद विप्र पद प्रेमा।
श्रद्धा छमा मयत्री दाया, मुदिता ममपद प्रीति अमाया ॥
विरति विवेक विनय विग्याना, बोध जथारथ वेद पुराना।
दंभ मानमद करहिं न काऊ, भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला, हेतुरहित परहितरत सीला।
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते, कहि न सकहि सारद श्रुति तेते ॥

सन्तों के यह गुण न तो अति मानव के गुण है न चमत्कार पूर्ण, न रहस्य मय। उनमे न किसी साम्प्रदायिक विधि विधान, पूजा प्रणाली के लिए आग्रह है, न पण्डित्य या असाधारण विद्वत्ता पर जोर। सारा जोर जीवन और जीवधारियों के प्रति एक दृष्टि कोण और एक समर्पित, स्वार्थ रहित, परहितरत जीवन के ढङ्ग पर है।

नारद स्वयं एक विख्यात सन्त है फिर भी सन्तों की पहचान और उनके प्रभाव का राममय जीवन से ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि इस विषय की जिज्ञासा सभी रामोन्मुख जनों को होती है चाहे वे वाह्य रूप से सन्तों का बाना धारण किए हुए हों या न किए हों। भरत से अधिक राम चरण रति मे डूबा हुआ कौन हो सकता है और राम की कृपा मे व्याप्त होने के कारण उनसे अधिक निश्चिन्त और संशय रहित भी कौन हो सकता है ? भरत के ही शब्दों मे :

नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुं सोक न मोह,
केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह।

परन्तु भरत को भी मानस के उत्तर काड मै यदि कोइ जिज्ञासा है तो यही कि वस्तुत सन्त है कौन ? वह कैसे पहचाने जॉय ? राम से वह एक यही प्रश्न ही पूछते है।

करउँ कृपानिधि एक ढिठाई, मै सेवक तुम्ह जन सुखदाई
संतन्ह कै महिमा रघुराई, बहु विधि वेद पुरानन्ह गाई
श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई, तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई
सुना चहउं प्रभु तिन्हकर लच्छन, कृपासिंधु गुनग्यान विचच्छन

और प्रभु ने अपने श्रीमुख से सन्तों की जो पहचान पहले नारद को बताई थी उसकी पुष्टि और व्याख्या फिर इस प्रकार की :

संतन के लच्छन सुनु भ्राता, अगनित श्रुति पुरान विख्याता
संत असंतनि कै असि करनी, जिमि कुठार चंदन आचरनी
काटइ परसु मलय सुनु भाई, निज गुन देइ सुगंध बसाई

तातें सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु वदन यह दंड

विषय अलंपट सील गुनाकर, पर दुख दुख सुख सुख देखे पर
सम अभूत रिपु विमद विरागी, लोभामरष हरष भय त्यागी
कोमल चित दीनन्ह पर दाया, मन बच क्रम मम भगति अमाया
सबहि मान प्रद आपु अमानी, भरत प्रान सम मम ते प्रानी
विगत काम मम नाम परायन, सांति विरति विनती मुदितायन
सीतलता सरलता मयत्री द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री।
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर-जानेहु तात संत संतत फुर।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं, परुष वचन कबहूँ नहिं बोलहिं

निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज
ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुन मन्दिर सुख पुंज

नारद और भरत को समझाए गये सन्तों के इन गुणों का मिलान उन गुणों से कीजिये जिनको हमने (अध्ययन की सुविधा के विचार से) नवधा भक्ति के गुणों का पहला वर्ग बनाया था। देखते ही यह प्रकट हो जायगा कि यह वही सब गुण है जो उस वर्ग की सूची में हैं। समबुद्धि विराग, सन्तोष, निश्चिन्तता, दया अमान, मैत्री, सरलता जो अविचल भक्ति के साधन और लक्षण है सन्तों के इन दो चरित्र चित्रणों मे भी आते है। दूसरे शब्दों मे तुलसी के अनुसार सन्त उन गुणों के मूर्तिमान आगार है जिनकी चर्चा राममय रहनि शीर्षक परिच्छेद मे हमने की है। गुणों की सूची तो एक ही है जिनका तुलसी कायल है (और जिनके द्वारा राममय भक्तिमय जीवन में प्रवेश किया जा सकता है) परन्तु संतो की महिमा इस कारण है कि वे विशेष रूप मे उन्ही गुणों के आगार और प्रसार के केन्द्र है जो हमको प्रभु के निकट लाते हैं और जिनमे प्रभु निवास करते है।

स्पष्टत: यदि प्रभु इन गुणों में निवास करते हैं ओर इन गुणों का निवास सन्तों मे होता है तो सन्तों मे भी प्रभु ही का निवास होता है और प्रभु सन्त रूपी प्रसार केन्द्रो से अपनी कृपा का वितरण करते है। तुलसी ने जो सकेत संत महिमा और गुरु महिमा के विषय मे दिये है उनमे यह बात साफ झलकती है कि कोई गुरु नाम धारी, गुरु के कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व का पालन ही नही कर सकता यदि वह संत सुभाव का न हो और गुरु से जो सबमे मूल्यवान वस्तु हमको मिलनी है वह यही संत सुभाव है। सन्त के समान गुरु के भी असली गुण पाण्डित्य, वाकपटुता, ज्ञान का आडम्बर नहीं है यद्यपि साधारण धारणा यही है कि

पंडित सोइ जो गाल बजावा !
मिथ्या रंभ दंभ रत जोई, ता कहुं संत कहइ सब कोई।

परन्तु बात ऐसी नही है। संत और सज्जन में एक आधार भूत नैतिक और आध्यात्मिक समानता है, सज्जन और गुरु समान धर्मी भी

हैं और सहयात्री भी। अतएव संत और गुरू एक कड़ी है उस शृङ्खला मे जिससे हम प्रभु से जुटे है और प्रभु अपनी महती अहेतुकी कृपा की वर्षा करने के लिए ही उनको अपना माध्यम बनाते है और उनको हमारे सम्पर्क में लाते है।

जहाँ तक सत जिज्ञासु का विशेष सम्बन्ध है इस सम्पर्क को स्थापित करने मे सहायक गुण है जिज्ञासु मे श्रद्धा, जागरूकता, चेतनता, ग्रहण शीलता और गुरु मे निस्पृहता, समता, सरलता तथा अपार कृपा, दया, प्रेम। मानवीय स्तर पर और एक दूसरे पैमाने मे यह सम्बन्ध अनेक अंशों मे उस सम्बंध से मिलता जुलता है जो भक्त और भगवान् के बीच का है। गुरु मे वह अपरिमित समता, शीतलता, सहिष्णुता, अहंकार हीनता न हुई जो सन्त के लक्षण है तो वह गुरु के महान् पद के अयोग्य है। सन्त ही सफल गुरु हो सकता है क्यों कि गुरु को जो कुछ करना है वह हृदय परिवर्त्तन करके, ज्ञान विवेक के चक्षु खोल कर अतएव शिष्य की जिज्ञासा और गुरु की कृपा मे एक अवाधित अवगुण्ठन रहित तारतम्य होना चाहिए। गुरु यदि शिष्य की भूख, उसकी प्रवृत्ति, आवश्यकता और माँग को न समझ सका और शिष्य के गले वह ज्ञान उतारने की चेष्टा मे लगा रहा जो उसकी विशेष स्थिति मे उसके गले नही उतरता तो वह वैसा ही असफल रहेगा जैसे वह ऋषि जो काकभुशुंडि को एक जन्म मे निर्गुन मत सिखाना चाहता था। उस जन्म मे काकभुशुंडि एक मानव देह धारी ब्राह्मण बालक थे और उनकी हार्दिक इच्छा थी कि सगुण रूप मे भगवान् का दर्शन प्राप्त करें।

राम चरन वारिज जब देखौं, तब निज जन्म सफल करि लेखौं।

परन्तु जो भी गुरु मिलता था वह सगुण के बजाय निर्गुणमत का ही पाठ पढाता था।

जेहिं पूँछउँ सोइ मुनि असि कहई, ईश्वर सर्व भूत मय अहई।

अन्त मे इस जिज्ञासु नवयुवक ने एक अत्यन्त विज्ञानी, ब्रह्म ज्ञान-रत मुनीस का आश्रय लिया परन्तु उन्होंने भी वही।

अकल अनीह अनाम अरूपा, मनगोतीत, अखंड अनूपा।

तत्वमसि का निर्गुण मत दोहराना शुरू किया। स्वभावतः खण्डन मण्डन, उत्तर प्रतिउत्तर का सिलसिला जो चला तो गुरु महराज संत सुभाव भूल कर क्रोध मे आ गए, शिष्य को शाप दे दिया कि तू अपने पक्ष का हठ करता है तो जा काक हो जा। परन्तु शिष्य के मन मे तो जिज्ञासा थी और शिष्योचित विनम्रता वह 'पुनि मुनि पद सिरु नाई, सुमिरि राम रघुवंश मनि,' काक के रूप मे भी हर्षित हो कर चला। उसने अपनी सन्मति को नही खोया।

उमा जे राम चरन रत विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभु मय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध॥

उसने तो यही समझा कि प्रभु ने मेरे प्रेम की परीक्षा ली और मुझे इस परीक्षा मे पूरा उतरना चाहिए और वस्तुत यह प्रेम परीक्षा थी भी।

मन बच क्रम मोहि निज जन जाना, मुनि मति पुनि फेरी भगवाना।

और वही मुनि, गुरु महराज जो पहले इतने उत्तेजित और क्रुद्ध हो गए थे प्रभु की प्रेरणा से बदल गए! शिष्य की 'महत शीलता' और 'राम चरन विश्वास' को देख उन्होंने विविध विधि से शिष्य का परितोष करके उसे राममंत्र दिया और आशीर्वाद दिया कि :

सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान,
काम रूप इच्छा मरन ग्यान विराग निधान।

इस मनोरम व्यापार के पीछे जो संकेत है वह यही कि जहाँ शिष्य में नम्रता, एकाग्रता, जागरूकता होना चाहिए वहाँ गुरू के गुण हैं

असीम सहिष्णुता और असीम अनुकम्पा क्योंकि इस समस्त व्यापार के पीछे 'उर प्रेरक' तो रघुवंश विभूषन ही है और रघुवंश विभूषन अन्तर्यामी है उन्मुखता देखने वाले है मानवीय विवशताओं, असमर्थताओं का असर नही लेते। काकभुशुंडि के शब्दों मे

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्ह महारिषि साप,
मुनि दुर्लभ बर पायऊँ देखहु भजन प्रताप।

जे असि भगति जानि परिहरहीं, केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी, खोजत आकु फिरहिं पयलागी॥
सुनु खगेस हरि भगति विहाई, जे सुख चाहहि आन उपाई।
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी, पैरि पार चाहहि जड़ करनी॥

अतएव तुलसी जिस सत्संग और गुरु वन्दना की महिमा का बखान करने मे आत्मविभोर हो जाता है वह 'केवल ज्ञान हेतु श्रम' नही है ज्ञातव्य बातें तो ग्रन्थो मे भी दी है और जो चाहे उनको पढ सकता है उनके विषय मे तर्क कर सकता है उनकी शाखा प्रशाखा बढाता जा सकता है। तुलसी सत्सग को स्पष्टत: एक आध्यात्मिक अनुभव, एक हृदय परिवर्त्तन, एक नव चेतना का जागरण मानता है। उसके नजदीक सत्संग रस और आनन्द का मंगल द्वार है, मनुष्य के जीवन का वह प्रसंग जब मनुष्य अपनी पार्थिव परिस्थितियों को भूल कर, उनसे ऊपर उठकर, प्रभु की कृपा की अविरल धारा से सयुक्त हो जाता है। इस अनुपम स्थिति की एक झलक तो उस आशीर्वाद मे भी है जो काकभुशुंडि को अपने गुरु से प्राप्त होता है।

काल कर्म गुन दोष सुभाऊ, कछु दुख तुम्हहि न व्यापिहि काऊ।
राम रहस्य ललित विधि नाना, गुप्त प्रकट इतिहास पुराना,
बिनु श्रम तुम जानव सब सोऊ, नित नव नेह राम पद होऊ॥

परन्तु उपमाओं और प्रतीकों का सहारा लेकर सत्संग रूपी तीर्थ राज का जो जीता जागता चित्र तुलसी मानस के आरम्भ ही मे खीचता है वह देखते ही बनता है।

**मुद मंगल मय संत समाजू, जो जग जंगम तीरथ राजू।
राम भक्ति जँह सुरसरि धारा, सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा।।
विधि निपेधमय कलिमल हरनी, करम कथा रविनन्दनि बरनी।
हरि हर कथा विराजति बेनी, सुनत सकल मुद मंगल देनी।।
वट विस्वास अचल निज धरमा, तीरथ राज समाज सुकरमा।
सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा, सेवत सादर समन कलेसा,
अकथ अलौकिक तीरथ राउ, देइ सद्य फल प्रकट प्रभाउ।।**

**सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारिफल अछत तनु साधु समाज प्रयाग।।**

संतों का संसर्ग चलता फिरता तीर्थ राज प्रयाग है—चलता फिरता इसलिए कि जहाँ कही जब कभी यह ससर्ग स्थापित हो जाय यह सद्य फलदायक है इसके लिए किसी स्थान विशेष मे जाने की जरूरत नही। तीर्थराज मे गंगा, यमुना, सरस्वती की तीन धाराएँ है। सत्सग रूपी पावन अनुभव मे जिन तीन धाराओं का संगम होता है वह है राम भक्ति, ब्रह्म विचार और सात्विक आचरण। गंगा राम भक्ति है, यमुना सात्विक आचरण है और सरस्वती ब्रह्म विचार है जो प्रच्छन्न होती हुई भी संत समागम रूपी संगम मे मिलती है। राम और शिव के कथा की यह त्रिवेणी सभी को आनन्द मंगल कल्याण देने वाली है। इस सत्संग रूपी प्रयाग में अक्षयवट है अटल विश्वास, और परिकर हैं सदाचार। यह तीर्थराज सब देशों मे सब समय, सभी को सुलभ है, आदर पूर्वक इस सत्संग का सेवन कीजिए, क्लेश शान्त होंगे क्योंकि यह अकथनीय अलौकिक संगम प्रत्यक्ष फल देने वाला है। जो जन इस त्रिवेणी और तीर्थराज के आन्तरिक संकेतों को प्रसन्न चित्त हो कर

सुनते समझते है और उसमे गोते लगाते हैं वे यही इस शरीर के रहते ही धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों फल प्राप्त करते हैं ।

सत्संग जंगम गति शील तीर्थ राज है कोई जड़ परम्परा का पालन नही, इसके भी वही साधन और लक्षण है जो तुलसी की अनुभूतियो की आधार शिला है—राम भक्ति और सदाचार और यह आधार शिलाएँ स्थित है अचल विश्वास पर ऐसा अचल विश्वास जिसका अक्षयवट के समान कभी क्षय न हो। राम भक्ति, सदाचार, विश्वास ऐसे तत्व है जिनके समझने मे किसी को दार्शनिक होने की कोई जरूरत नही। सभी इन्हे समझते है 'सर्वहि सुलभ सव दिन सब देसा,' केवल सादर, समुचित, और सच्ची भावना से हम उनका सेवन नही करते यही हमारी राह मे रुकावट है, यदि भावना समुचित और सच्ची हो तो

मज्जन फल पेखिअ ततकाला, काक होंहि पिक वकउ मराला।
सुनि आचरज करै जनि कोई, सत संगति महिमा नहिं गोई।
बालमीकि नारद घट जोनी निज-निज मुखनि कही निज होनी।

तुलसी का विश्वास है कि सत्संगति की त्रिवेणी मे स्नान का तुरन्त और चमत्कार पूर्ण फल होता है। इसमे स्नान करके काक पिक और बगुले हंस हो जाते है। इस चमत्कार के दावे को सुन कर जिन्हें आश्चर्य हो उनको वाल्मीकि, नारद, अगस्त्य की आत्मकथाएँ याद करनी चाहिए इन महर्षियों की सत्संगति से ही काया पलट हो गई।

इन महर्षियों का अनुभव तुलसी का भी अपना अनुभव था, उसकी भी काया पलट सत्संगति से ही हुई यह बात उसने अपनी रचनाओं मे निहित आत्मकथा मे बार बार दुहराया है। फिर भी तुलसी के मन मे यह विचार स्वभावतः उठता है कि साधारण तार्किक बुद्धि वाला मनुष्य जो सत्संगति के चमत्कार पूर्ण प्रदेश के बाहर का रहने वाला है पहले तो सत्सगति के प्रभाव के विषय में इस दावे को अतिशयोक्ति ही समझेगा कि उसके प्रभाव से पापी पुण्यात्मा और डाकू वाल्मीकि हो सकता है।

इसलिए वह सत्संगति के प्रश्न को तटस्थ होकर एक ऊँचे स्तर पर चढ कर देखता है और उस उच्चस्तर से उसे ऐसा दिखाई देता है कि 'जड चेतन जग मे जो भी जीव है सकल राममय है और साधु असाधु, वस्तु कुवस्तु, गुण दोष के विभाग और वर्गीकरण ऐसे मानसिक ढाचे है जो जगत ने बना रक्खे है सच पूछिए तो

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती, साधु-असाधु सुजाति कुजाती ।
दानव देव ऊँच अरु नीचू, अमिय सजीवन माहुर मीचू ।
माया ब्रह्म जीव जगदीसा, लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ।
कासी मग सुरसरि क्रमनासा, मरु मारब महिदेव गवासा ।
सरग नरक अनुराग विरागा, निगमागम गुन दोस विभागा ।

दुख सुख, पाप पुण्य, रात दिन, साधु असाधु, सुजाति कुजाति, दानव-देव, उच्च नीच, अमृत विष, माया ब्रह्म, जीव-परमात्मा, धन दारिद्रय, राजा-रंक, काशी-मगहर, गंगा-कर्मनाशा, मारवाड मालवा, ब्राह्मण कसाई, स्वर्ग नरक, अनुराग वैराग्य यह गुन दोष की सारी गणना और विभाजन निगमागम कृत, शास्त्रों के बनाए हुये है । वास्तव मे जिनको हमने भला नाम दे रक्खा है वह भी और जिनको बुरा कहते है वह भी ब्रह्मा के ही उत्पन्न किए हुये है

भलेउ पोच सब विधि उपजाए, गनि गुन दोष वेद विलगाए ।

अतएव वस्तुएँ आप अपने मे तो सभी राममय है उन पर गुण दोष का आरोप उनकी संगति के अनुसार होता है । अपने मे वस्तु कुछ भी हो वह संगति के प्रभाव से कुछ की कुछ हो जाती है

उपजहिं एक संग जग माहीं, जलज जोंक जिमि गुन विलगाहीं,
सुधा सुरा सम साधु असाधू, जनक एक जग जलधि अगाधू ।
भल अनभल निज निज करतूती, लहत सुजस अपलोक विभूति ॥

जगत रूपी अगाध समुद्र ही ने अमृत और मदिरा, सन्त असन्त दोनों को उत्पन्न किया है परन्तु वे अपनी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार स्तुत्य या निन्दनीय हो जाते है। अतएव वास्तविक प्रश्न यह नही है कि वस्तु अपने मे क्या है वास्तविक प्रश्न यह है कि वह किसमे किस प्रकार संयुक्त है :

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा, कीचहि मिलइ नीच जल संगा,
धूम कुसंगति कारिख होई, लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई।
सोई जल अनल अनिल संघाता, होइ जलद जग जीवन दाता ॥

ग्रह भेखज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग ॥
सम प्रकास तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह ॥

वायु का सङ्ग पाकर वही धूलि आकाश पर चढ़ जाती है और नीचे बहने वाले पानी का साथ पाकर कीचड़ मे मिल जाती है। कुजोग से वही धुआँ कालिख बन जाता है सुजोग से वही कालिख रोशनाई बनकर सद्ग्रन्थों के लिखने के काम मे आती है। धुआँ तो एक ही है परन्तु वही धुआ जल, पवन, अग्नि की संगति पाकर बादल हो जाता है और संसार को जीवन दान करता है ग्रह, ओषधि, जल, वायु और वस्त्र अपनी जगह पर कुछ और है कुसंग, सुसङ्ग पाकर कुछ और असर देने लगते है। परन्तु सङ्गति के इस काया पलट करने वाली शक्ति को सुलक्षण सात्विक वृत्ति वाले ही देख पाते है। सोचिये तो महीने के दोनों पखवाड़ों मे आलोक और अन्धकार तो बराबर ही मात्रा में होते है परन्तु एक को शुक्ल पक्ष कहते है दूसरे को कृष्ण पक्ष। क्यों? केवल इसलिए कि एक पक्ष चन्द्रमा का बढ़ाने वाला दूसरा घटाने वाला है।

इस प्रकार तुलसी एक अत्यन्त मौलिक निष्कर्ष पर पहुँचता है। यह गुण दोष, शुभ असुभ, स्तुत्य निन्दनीय नामक वर्ग और विभाग जो हमने बना रक्खे है उन पर गम्भीर विचार करें तो हम पायेंगे कि चीजें

अपने मे न भली हैं न बुरी उनका भला बुरा होना उनकी संगति पर निर्भर है ·

सुधा सुधाकर सुरसरि साधू, गरल अनल कलिमल सरि व्याधू।
गुन अवगुन जानत सब कोई, जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

भलो भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ, गरल सराहिअ मीचु॥

अमृत, चन्द्रमा, गंगा, साधु, विष, अग्नि कलि की मलीनता की नदी कर्मनाशा, हिंसक व्याध उच्चतम समझी जाने वाली वस्तु और नीचतम कही जाने वस्तु सभी को मालूम है किसी से छिपी नही है परन्तु ग्रहण तो जो जिसको भाता है उसी को वह करता है और वही उसके लिए अच्छी है। सभी अपने स्वाभाविक गुण का ही अनुसरण करते हैं। भला भलाई से ही सराहनीय होता है नीच को नीचता ही फबती है। अमृत की सार्थकता अमरत्व देने मे है विष की मार डालने मे।

तुलसी जिस मुक्त हृदय से संतों ही की तरह असन्तों की भी वन्दना करता है उसको लोग समझते है कि यह कवि का कोई गहरा व्यंग है या एक तरह की उल्टवासी है। भला खलो की बन्दना करने का क्या अभिप्राय हो सकता है ? परन्तु तुलसी तो खलगन की वन्दना 'सतभाएँ' करता है और वह भी यह जानता हुआ कि 'ए बिनु काज दाहिने बाएँ।' खल वन्दना अकारण नही। वह उस समस्त समुदाय के विषय मे पूरी तरह जागरूक है जिसके बीच मानव जीवन व्यतीत होता है। वह जानता है कि ससार सागर मे सभी प्रकृति, सभी स्वभाव के जीव हैं अमरत्व देने वाले और मृत्यु देने वाले। वह यह भी जानता है कि इनमे जो दुष्ट, असज्जन हैं वह अपनी आदत से मजबूर है अपनी दुष्टता त्यागेंगे भी नहीं

मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा, तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा।

फिर भी वह जिस द्वन्द्वरहित दृष्टि कोण से इस समस्त प्रश्न को देखता है उसके पीछे ऐसी सहिष्णुता ऐसी अनुकम्पा, एक ऐसा अलौकिक रूप से सर्वभूतरत हृदय है जो अपने इस विश्वास को नही छोड सकता कि दुष्ट भी सत्संगति पाकर सुधर सकते हैं और सत् मे ऐसी संजीवनी शक्ति है जो दुष्टता और दोष को तत्काल दूर कर सकती है।

सठ सुधरहिं सत संगति पाई, पारस परस कुधात सुहाई।
विधि बस सुजन कुसंगत परहीं, फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं।

अतएव जिस अहिसा और प्रेम की भावना को वह रामोन्मुख जीवन की कुंजी मानता है उस भावना के प्रकाश मे दुष्ट के प्रति द्वेष या असाधु के लिए घृणा का कोई स्थान ही नही रहता।

उमा जे राम चरन रत विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखिहिं जगत केहि सन करहिं विरोध॥

और इस प्रकार वह गुण दोष, संत असंत के प्रश्न पर एक नया दृष्टिकोण रखता है जिसके पीछे गहरी आस्था और अपार सहिष्णुता है। वह देखता है कि समस्त जड़ चेतन राम के दयामय तत्व मे निहित है और गुण दोष के आरोप वस्तुत. मायाकृत है। वास्तविक गुण तो यही है कि इन दोनों को न देख कर उस तत्व का आश्रय लिया जाय जो इन सब के पृष्ठ मे है।

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहि देखिअ सो अविवेक॥

इस अविवेक को त्यागने पर निश्चय ही सभी राममय है और सभी वन्दनीय।

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल, सदा जोरि जुग पानि ॥

समस्त जड़ चेतन से राम के नाते आत्मीयता स्थापित हो जाने पर गुण दोष का द्वन्द्व तो अपने आप ही मिटने लगता है और सच पूछिए तो यही सत्संगति की अर्थात् सत्य से संयुक्त होने की चरम स्थिति और परम पहचान है। इस उन्नत, विशाल, व्यापक दृष्टि कोण के प्रकाश मे वह देखता है कि जीवों और वस्तुओं की विशेषता उनकी संगति के प्रभाव मे ही बनती है और जगत् मे जड़ चेतन जो भी जीव है उनमे जिसने जहाँ भी जिस प्रकार भी सन्मति, सत्कीर्ति, सद्गति, विभूति प्राप्त की है उस सब मे सत्संगति का ही प्रभाव है क्योंकि सत्सगति के अतिरिक्त इनको पाने का और कोई उपाय ही नहीं है।

जलचर थलचर नभचर नाना, जे जड़ चेतन जीव जहाना।
मति कीरति गति भूति भलाई, जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई।
सो जानव सतसंग प्रभाऊ, लोकहु वेद न आन उपाऊ।

यह सत्संग कैसे प्राप्त हो और प्राप्त हो जाने पर यह किस प्रकार अपना प्रभाव डालता है? तुलसी के अनुसार संत समागम भी राम की ही कृपा से होता है।

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान।

और इस हरि कृपा के ढङ्ग निराले है। हम पहले पहल उसको अक्सर समझ भी नहीं पाते। गरुड़ को मोह होता है कि चिदानन्द सन्दोह राम साधारण मनुष्य की तरह व्याकुल कैसे हो गए। यह मोह ही उसको चैन नहीं लेने देता वह स्वयं व्याकुल होकर अपने भ्रम निवारण के लिए संत शिरोमणि काकभुशुंडि के पास जाता है और भ्रम दूर होने पर सोचता है कि मेरा भ्रम ही मेरे लिए कैसा हितकर साबित हुआ।

सोई भ्रम अब हितकरि मैं माना, कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना।
जो अति आतप व्याकुल होई, तरु छाया सुख जानइ सोई।
जौ नहिं होत मोह अति मोहीं, मिलितेउँ तात कवन विधि तोहीं।
सुनतेउँ किमि हरि कथा सुहाई, अति विचित्र बहु विधि तुम्ह गाई।
निगमागम पुरान मत एहा, कहहिं सिद्ध मुनि नहिं संदेहा।
संत विसुद्ध मिलहिं परि तेही, चितवहिं राम कृपा करि जेहि।

अतएव प्रभु की अनुग्रह कभी भ्रम और मोह से उत्पन्न होने वाली आकुलता का रूप भी धारण करती है। जन यदि उत्सुक है, व्याकुल है तो उसको कही आना जाना भी नही है वह चाहे राक्षसों के बीच लङ्का मे ही क्यों न हो उस के पास संत घर बैठे पहुँच जाँयगे और वह भी संत-हृदय हनुमान के दर्शन पर विभीषण के समान आनन्द विभोर होकर कह उठेगा।

अब मोहि भा भरोस हनुमंता, बिनु हरि कृपा मिलहि नहिं संता।

तुलसी सत्संग को एक परिवर्त्तनकारी अनुभव मानता है एक साधन नही वरन् एक सिद्धि।

सत संगति मुद मंगल मूला, सोइ फल सिधि सब साधन फूला।

सच्चे आनन्द मंगल की यदि खोज है तो उसका स्रोत तो सत्संग है। यदि और सब साधनों को हम फूल की उपमा दें तो सत्संग फल सिद्धि है। इस फल सिद्धि के वशवर्त्ती अन्य सभी सफलताएँ हैं। तुलसी जब बार बार कहता है सन्त परमेश्वर के तुल्य है, 'जानेसु संत अनन्त समाना' वल्कि (स्वयं प्रभु राम के शब्दों में) 'मोंते अधिक संत करि लेखा' तो लोगों की यही धारण होती है कि संतों की महिमा बढ़ाने के लिए यह भी एक काव्योचित अतिशयोक्ति है। परन्तु तुलसी सरल हृदय से, अपने अनुभव के आधार पर मानता है कि सच्चे संत का संसर्ग प्रभु की प्रसन्नता और कृपा दृष्टि का सब से बड़ा प्रमाण और भगवत्प्राप्ति

का सब से सुन्दर लक्षण है । सच्चे संत मिल गए तो नर भेष मे नारायण ही मिल गए । उनका दर्शन

अनुभव सुख उतपति करत भय भ्रम धरै उठाइ,
ऐसी बानी संत की जो उर भेदै आइ।
मुख दीखत पातक हरै परसत कर्म बिलाहिं,
बचन सुनत मन मोह गत पूरब भाग मिलाहिं।
तन करि मन करि बचन करि काहू दूषत नाहिं।
तुलसी ऐसे संत जन राम रूप जग माँहि।

इन्ही सन्तों के माध्यम से राम जन मन को भव-भय से मुक्त करते है और इन्हो संतों के लिए स्वयं भी नर देह धारण करते है- 'धरौ देह नहि आन निहोरें' ! वैसे तो राम एक है और वही आनन्द और अभय के देने वाले हैं परन्तु अपनी कृपा वे सतो के माध्यम से ही व्यक्त करते है।

संसय समन, दमन दुख, सुख निधान हरि एक
साधु कृपा बिनु मिलहिं न करिय उपाय अनेक
भव सागर कहँ नाॅव सुद्ध संतन के चरन
तुलसिदास प्रयास विनु मिलहिं राम दुख हरन

इस संत समागम का प्रभाव जिस आस्था, जिस उत्साह, जिन निजी अनुभव से आर्द्र शव्दो मे तुलसी ने अपने गुरु की बन्दना के सम्बन्ध मे किया है उससे स्पष्ट मालूम होता है जैसे उसे नई आँखें, नई दुनिया मिल गई हो।

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि,
महा मोह तम पुंज जासु बचन रविकर निकर।

वंदउं गुरु पद पदुम परागा, सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।
अमिअ मूरिमय चूरन चारु, समन सकल भव रुज परिवारू ॥
सुकृति संभु तन विमल विभूती, मंजुल मंगल मोद प्रसूती।

जन मन मंजु मुकुर मल हरनी, किए तिलक गुन गन बस करनी ॥
श्री गुरु पद नख मनि गन जोती, सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती।
दलन मोह तम सो सुप्रकासू बड़े भाग उर आवइ जासू ॥
उघरहिं विमल विलोचन ही के, मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।
सूझहिं राम चरित मनि मानिक, गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥

जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान,
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान।

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन, नयन अमिय दृग दोष विभंजन।
तेहि करि विमल विवेक विलोचन, बरनउं राम चरित भव मोचन ॥

अतएव गुरू की सबसे बडी देन यह है कि जिज्ञासु को दिव्य दृष्टि देता है उसकी आँखों मे जादू का वह अंजन लगा देता है जिसमे उसे एक सिद्ध की भाँति सब कुछ दिखाई देने लगता है राम तत्व के जो भी गुप्त प्रकट मणि माणिक्य है सुस्पष्ट यथा स्थान अपने वास्तविक रूप मे चमकने लगते है। भौतिक संसार की सभी विषमताएँ और भ्रान्तियाँ मिट जाती है, मन दर्पण के समान स्वच्छ और निर्मल हो जाता है। यह विमल विवेक की दिव्य दृष्टि ऐसी विभूति है जिससे बडी और विभूति नही हो सकती। तुलसी ने जो कुछ राम चरित के मणि माणिक्य पहचाने और संसार को दिखलाए इसी दिव्य दृष्टि के फल स्वरूप और इसी दिव्य दृष्टि के लिये सत्संगति आवस्यक है।

एक अद्भुत तारतम्य, एक दूसरे पर आश्रित, एक दूसरे मे गुथा हुआ संबंध, एक अत्यन्त अर्थपूर्ण एकता और एकरसता है तुलसी के विचारों और उसकी आस्थाओं मे। प्रभु की जो मूर्ति वह देखता है और उस मूर्ति के दर्शन के लिए जिस मार्ग को वह आलोकित करता है उनमे ऐसा गहरा संबंध है कि दर्शन और जीवन, भक्ति और सदाचार, साधन और सिद्धि सब के तागे शरणागति रूपी केन्द्रीय तत्व मे आकर जुट जाते हैं। नाम और रूप की व्याख्या, राम चरित की चर्चा, रामायणी कथा

के पात्रों का आचरण, द्वन्द्व और संघर्ष के विवरण, भक्ति निरूपण और सतसंग महिमा सभी एक केन्द्रीय अनुभूति की विविध शीर्षकों के अन्दर व्याख्या और विस्तार जैसे लगते है। स्वभावत: यह अनुभूति तो अनुभव का ही विषय हो सकती है, विचार द्वारा उसका हम केवल विश्लेषण मात्र कर सकते है। स्वभावत: जिस भक्ति का कवि गायक है वह कुछ होना है केवल कुछ जानना नहीं, वह जीवन है केवल दर्शन नही, वह एक मणि के समान सदा प्रकाशमान है, एक जलता बुझता टिमटिमाता दीपक नहीं। तुलसी को ज्ञान और भक्ति के अखाड़े मे घसीट कर आलोचक उसके साथ बड़ा अन्याय करते है। उसकी इस वाद विवाद मे जरा भी रुचि नही परन्तु जीवन मे, सरस आनन्दमय जीवन में, उसकी गहरी रुचि है और इसी नाते वह ज्ञान और भक्ति सबंधी वह चर्चा करता है जिसके सकेतों को पहचानना तुलसी के दृष्टिकोण को समझने के लिए आवश्यक है और जिसकी चर्चा हम अगले अध्याय मे करेंगे।

———

सातवाँ अध्याय

दीपशिखा और मणिप्रभा

सो मनि जदपि प्रकट जग अहई, राम कृपा बिनु नहि कोउ लहई
सुगम उपाय पाइबे केरे नर हत भाग्य देहिं भट भेरे

तुलसी साहित्य मे इस बात के अनेक संकेत है कि दार्शनिकों के कृत्रिम विभाजनों और तार्किकों के वाग्जाल से तुलसी ऊबा हुआ था। सगुण और निर्गुण में भेद स्थापित करने की निस्सारता उसने स्वयं देखा था, उसका स्वय अपना अनुभव था कि सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा, इसी प्रकार ज्ञान और भक्ति के विभेदों का भी खोखलापन यदि उसने देखा था तो उसका प्रधान कारण यही था कि तार्किक विभाजनों को पार करके वह उस अवस्था मे पहुँचा हुआ था जहाँ जीवन और आनन्द की अनुभूति ही सब कुछ है साधन भी और साध्य भी, तमनाशक भी और पथ प्रदर्शक भी, जहाँ पहले से निर्धारित और ऊपर से आरोपित साम्प्रदायिक विचार शैली कोई मूल्य नही रखती। तुलसी के चारों ओर ज्ञान और पाडित्य का जो वातावरण था उसका उसने कोना कोना छाना था अपनी सीमाओं मे पाडित्य जो कुछ दे सकता है उसका ग्रहण भी उसने बड़े आदर और अध्यवसाय से किया था। जो आलोचक तुलसी की कृतियों मे नानापुराण निगमागम की प्रतिच्छाया मात्र पाते है उनको तो यह मानने मे कोई कठिनाई ही नही हो सकती कि तुलसी ने अपने स्रोत ग्रन्थों को खूब पढा था। परन्तु जिस प्रकार बार बार तुलसी ने सच्चे हृदय से अनुभूति और शरणागति के आगे 'निगमागम, ज्ञान, पुराण' की जानकारी मात्र की व्यर्थता दिखाई है उससे यह भी स्पष्ट है कि कोरे

पांडित्य और तर्क से वह न केवल असंतुष्ट और अतृप्त था वरन् उनमे उसकी आस्था भी नही थी। उद्दण्ड सुधारकों की भाँति उसको पाडित्य की मूर्तियों का न तो खण्डन ही अभीष्ट था न उसके स्वभाव के अनुकूल। अपने मन ही मन शायद वह यह समझता भी होगा कि खण्डन और आक्रमण मे अनास्था उत्पन्न हो सकती है परन्तु वह आलोक नही मिल सकता जिसमे पांडित्य और प्रयत्न अपने आप ही समाप्त हो जाते है। उसे तो वही आनन्द के द्वार खोलने थे और उनके मार्ग प्रशस्त करने थे जिनका अनुसरण करके वह ग्रन्थिया छूट जाय जिनके कारण हम अन्धकार मे हैं और अविरल आनन्द के अपने मौलिक अधिकार से वंचित हैं। अतएव अपने विनम्र परन्तु दृढ ढंग मे वह ज्ञान और भक्ति की गुत्थियों को सुलझाने की आवश्यकता को भी पूरी तरह समझता था। ज्ञान का जहाँ तक वह आत्मानुभूति की राह मे उपयोगी और सहायक है वह निरादर नही करता, न हठ करके दुराग्रह से ज्ञान की गरिमा को अस्वीकार करना वह ठीक समझा है। परन्तु ज्ञान मार्ग के जो धोखे है उनको भी दिखलाने मे नही चूकता।

मानस के उत्तरकाण्ड मे ज्ञान और भक्ति के प्रश्न पर एक अत्यन्त सुन्दर रूपक द्वारा तुलसी ने प्रकाश डाला है। इस प्रश्न को उठाने मे उसका यह अभिप्राय बिलकुल नही है कि वह एक अखाड़े मे उतर कर किसी मत विशेष का प्रतिपादन करे। द्वन्द्वों को दूर करके राम मे जो सच्ची प्रीति वह उत्पन्न करना चाहता है उसकी राह मे इस प्रकार के बौद्धिक द्वन्द्व ऐसे रोड़े हैं जिनका हटाना आवश्यक है :—

औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रवीन
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अविछीन

थोड़ी बहुत झलकियाँ तुलसी को सन्तुष्ट नहीं कर सकती है अवि-छिन्न रामपद प्रीति तो तभी हो सकती है जब वह प्रकाश जिसमें आप प्रभु को देखें जलती बुझती दीप शिखा न हो बल्कि एक सतत

देदीप्यमान् मणिप्रभा जिस पर बाहरी झोकों का कोई असर न हो।
अतएव ज्ञान रूपी दीपशिखा और मणिप्रभा रूपी भक्ति का निरूपण
एक अनिवार्य आवश्यकता है उस अनुभूति को आलोकित करने के लिये
जो मानस में व्याप्त है।

वह युक्तियाँ जिनके द्वारा काकभुशुंडि ने उत्तरकाण्ड मे इस विषय
की व्याख्या की हैं इस प्रकार हैं :

जीव जो अविनाशी ईश्वर का अंश है चेतन और अमल है। उसको
स्वभावतः सुख की राशि होना चाहिए, परन्तु देखिए तो वह कीर या
मरकट के समान बन्दी है। अतएव कही कोई गड़बडी अवश्य हुई है
जिसके कारण वह एक दयनीय बन्दी की दशा मे है। हुआ यह है कि
जड चेतन मे एक ग्रन्थि पड़ गई है और जब तक यह ग्रन्थि सुलझती
नही जीव सुखी होने के अपने मौलिक अधिकार को प्राप्त नहीं कर
पाता। ग्रन्थि है तो मिथ्या ही परन्तु ऐसी कठिन पड गई है कि छूटना
तो दूर रहा दिखाई ही नही देती। ज्ञान का दीपक जला कर इसको
छुड़ाने की चेष्टा की जाती है परन्तु इस दीपक को जलाने के लिए जो
उपाय है वह भी अत्यन्त कष्ट साध्य है।

पहली सीढी तो है उस गाय की सेवा जिसके दूध से दीपक के लिए
घी बनाया जाय। सात्विकी श्रद्धा रूपी गौ हो, जप तप यम नियम
रूपी हरित तृण उस गौ को चराया जाय, भाव रूपी बछड़े से उसे
पेन्हाया जाय, निवृत्ति रूपी रस्सी से गौ के पिछले पैर बाँधे जाँय, दूध
दुहने का पात्र विश्वास हो, दुहने वाला अहीर अपना वशवर्त्ती निर्मल
मन हो, इतना प्रबन्ध करने पर तो धर्म रूपी दूध दुहा जा सकता है।
इस दूध को औटाने के लिए अग्नि अकाम हो और ठंडा करने के लिए
वायु क्षमा और संतोष। जामन इसमे धृति तथा शम का डाला जाय
और जामन डालने पर जो मुदिता रूपी दही बने उसे मथने के लिए
मथानी विचार अर्थात् विवेक की हो। इस प्रकार प्राप्त किए गए दही

को द्रुम रूपी आधार पर स्थित करके सत्य बचन की रस्सी लगा कर विचार की मथनी से जब मथा जाय तब कही जा कर विमल विराग रूपी नवनीत तय्यार किया जा सकता है ।

परन्तु यह तो अभी पहली ही सीढी है। इसके आगे चल कर शुभाशुभ कर्मो का ईंधन लगाकर योग की अग्नि प्रकट करना होगा। इस योग अग्नि मे समस्त शुभाशुभ कर्मो का ईंधन लगाकर उन्हें भस्म करना होगा। इस अग्नि के तप मे जब ममता रूपी मल जल कर भस्म हो जायगा तभी विशुद्ध ज्ञान रूपी घृत प्राप्त हो सकेगा। परन्तु घी प्राप्त हो जाने ही से क्या ? अभी तो दीपक जलाना बाकी ही है। अतएव एक तीसरी सीढ़ी और चढना है जिस पर पहुँच कर पहले तो चित्त रूपी दीपक मे ज्ञान रूपी घृत भरना होगा, समता का दीवट बना कर उसे खूब सुदृढ करके रखना होगा। अब रही बत्ती जलाने की बात। तीन अवस्थाओ (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) और तीन गुणों (सत्व, रजस, तमस) का कपास लेकर उससे तुरीयावस्था की रुई निकाले और उसे भली भाँति संवार कर गाढी बत्ती बनावे। इन सब साधनों को जुटा कर, विधि विधानों को पूरा कर के, जो तेजराशि, विज्ञानमय दीपक जलेगा उसे ऐसा होना चाहिए कि जिसके समीप जाकर मद आदि शलभ जलकर भस्म हो जॉय। सोऽहमस्मि इस वृत्ति की उसकी प्रचण्ड दीप शिखा होगी तब जो प्रकाश होगा उस प्रकाश मे ही संसार के मूल मे स्थित भेद का भ्रम दूर हो सकता है, आत्मानुभाव का सुख प्राप्त हो सकता है और जीव आत्म प्रकाश पाकर हृदय रूपी घर मे बैठकर जड़ चेतन की गाँठ को सुलझा सकता है।

कितनी कठिन और कष्टसाध्य है वह मंजिलें जिनको इस मार्ग मे पार करना पड़ता है। साधारण मनुष्य तो यही कहेगा कि न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी। परन्तु इतना सब करने पर भी जीव कृतार्थ हो तो आत्मानुभव और आत्म प्रकाश ऐसे परम लाभ के लिए

वह यह सब भी कर सकता है। सब से बड़ी विडम्बना तो यह है कि यह सब करके भी वह ग्रन्थि को नही सुलझा पाता।

छोरन ग्रन्थि पाव जौं सोई, तब यह जीव कृतारथ होई।
छोरत ग्रन्थि जानि खगराया, विघ्न अनेक करइ तब माया।

यह विघ्न अत्यन्त वास्तविक है और अत्यन्त प्रबल। एक तो तरह तरह की ऋद्धियों सिद्धियों, का प्रलोभन है जो बुद्धि को कुण्ठित कर देता है। अनेक कल बल छल मे ज्ञान दीप के निकट आकार यह ऋद्धियाँ सिद्धियाँ अपने आँचल की हवा से उसको बुझा देती है। कोई विरला ही ऐसी सयानी बुद्धि का होगा जो इन ऋद्धियों सिद्धियों के प्रलोभन मे अपना अनहित जानकर उनकी कलाओं से बच निकले और यदि कोई ऐसी प्रखर बुद्धि हुई भी जिस पर इस बाधा का प्रभाव न पड़े तो उसके लिए और भी दूसरी विघ्न बाधाएँ सामने खड़ी है। यह बाधाएँ है इन्द्रियाँ और उन के देवता जो नई नई उपाधि खड़ी करने मे सदैव तत्पर रहते है। इन्द्रियो के द्वार झरोखों के समान हैं जिन पर उन इन्द्रियों के अपने देवता अड्डा जमाए बैठे रहते हैं। यह देवता जहाँ देखते हैं कि विषय बयार के झोके आ रहे है अपने झरोखों के कपाट हठ करके और भी खोल देते है। फिर तो जहाँ विषय बयार के तेज झोको ने हृदय रूपी घर मे प्रवेश किया वहाँ लाख जतन से जलाए गए विज्ञान के दीप के बुझने मे देर नहीं लगती। ग्रन्थि छूटने की कौन कहे वह प्रकाश ही लुप्त हो जाता है जिसमें ग्रन्थि दिखाई पड़ सके। विषय वायु मे बुद्धि व्याकुल हो जाती है और सब किया कराया मिट्टी में मिल जाता है। इन्द्रियो के देवताओं को ज्ञान का दीप बिलकुल नही सोहाता। उनकी तो विषय भोग मे ही प्रीति रहती है। जब बुद्धि को ही विषय समीर ने बावली बना दिया तो फिर से कौन जलावेगा? ऐसा दुस्तर है ज्ञान का मार्ग!

कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन विवेक।
होइ घुंनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक।

ज्ञान मार्ग की कठिनाइयों का जो निष्पक्ष और जीता जागत वर्णन इस रूपक में है वह कोई ऐसा ही लेखक दे भी सकता था जिसने स्वयं ज्ञान मार्ग का अनुसरण किया हो, ज्ञान का दीपक जलाया हो और उन इन्द्रियों के देवताओं के कल बल छल को भी देखा हो जो इस दीपक को बुझाने में सदैव तत्पर रहते हैं। अन्य प्रसंगों मे भी तुलसी ने इन्द्रियों के दुर्दमनीय शक्ति का बड़ा वास्तविक वर्णन दिया है और दिखाया है कि केवल बुद्धि का सहारा रखने वाला मानव उन अनेक और प्रबल शक्तियों के मुकाबले मे कैसा निर्बल निरुपाय और निस्सहाय है जिन का काम ही है कि ज्यों ही ज्ञान की लौ लगे उसको बुझा दें।

ग्यान पंथ कृपान कै धारा-परत खगेस होइ नहिं वारा।

ज्ञान का मार्ग तलवार की धार पर चलना है, इसमें नीचे गिरते देर नही लगती।

तुलसी जिस पक्षपात रहित अन्वेषक की दृष्टि से ज्ञान मार्ग का विश्लेषण करता है और उसकी कठिनाई ही नही गरिमा का भी आभास देता है उससे कोई भी यह नही कह सकता कि उसको किसी पक्ष का हठ पूर्वक समर्थन अभीष्ट है।

फिर भी वह यदि भक्ति पथ का अनुगामी है तो अवश्य ही इसके उसकी निजी अनुभूतियों से सम्बन्ध रखने वाले कोई गहरे कारण होंगे जिनका समझना उसके काव्य और सन्देश के समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

भक्ति की परिभाषा परिभाषा देने के विचार से तुलसी ने कहीं नही की। भक्त की दशा, भक्ति के प्रभाव के विशद वर्णनो से तुलसी साहित्य भरा पटा है। परन्तु संकुचित अर्थ में एक आचार्य या शास्त्रज्ञ के दृष्टिकोण से वह इस प्रश्न पर विचार नहीं करता। भक्ति उसके लिए कोई पद्धति

या पंथ नही हैं भक्ति उसका जीवन है उसके रग-रग मे परिव्याप्त है। अनुभव द्वारा प्रभु की कृपा प्राप्त करने वाले कवि के लिए यह स्वाभाविक है कि वह व्याख्या और परिभाषा से अधिक अनुभवों और अवस्थाओं के निरूपण मे रुचि रक्खे। कोरे शास्त्रियों और साधकों में यही अन्तर ही है कि साधक साधन को उतना ही महत्व देता ह जितना कि साध्य को। केवल सिद्धान्त के कथन या प्रतिपादन मात्र से साधक को कोइ संतोष या तृप्ति नहीं होती। और यह साधक का दृष्टिकोण ही तुलसी का ज्ञान और भक्ति के प्रति दृष्टि कोण निर्धारित करता है।

तुलसी ने ज्ञानदीप की भाँति भक्ति मणि का भी एक सुन्दर रूपक बाँधा है जो उसके विशिष्ट दृष्टि कोण के उद्घाटन मे सहायक है अतएव इस भक्ति मणि का भी स्वरूप हमें देख लेना चाहिए।

उसका कहना है कि ज्ञान यदि दीपक है तो भक्ति एक मणि है। इस मणि में रात दिन प्रकाश की ज्योति रहती है उसमे प्रकाश लाने के लिए बाहरी साधनों की आवश्यकता नहीं रहती।

परम प्रकास रूप दिन राती नहिं कछु चहिअ दिया घृत वाती।

इस स्वयंभ्रन रूप मणि के निकट मोह की दरिद्रता तो ठहर ही नही सकती ओर न लोभ के झोके इसके प्रकाश को बुझा सकते है। ज्ञान दीप को बुझाने के लिए काम, क्रोध, मोह, लोभ सदा घेरे रहते हैं परन्तु इस भक्ति मणि के पास यह दुष्ट फटकते नही। एक अजीब दशा होती है उस जन की जिसके पास भक्ति रूपी मणि है। विष उसके लिए अमृत है और शत्रु मित्र के समान। वह सब मानस रोग जिनके चंगुलो मे पड़ा जीव बेचारा छटपटाता रहता है भक्ति मणि को छू नही पाते। दुख का लवलेश भी नहीं रह जाता। अतएव-'चतुरशिरोमनि ते जग माही जे मणि लागि सुजतन कराही।' और 'सुजतन' क्या है ? यदि वेदों पुराणो को हम पर्वत मान ले तो उन पर्वतों में राम की विविध कथाएं खानों के समान है, उन गुप्त खानों के जानने वाले संत जन हैं, खानों के खोदने का

अब सुमति है, उनको देखने के लिए नेत्र ज्ञान और वैराग्य है। शर्त यही है कि खोज करने वाले प्राणी का भाव सच्चा हो।

भाव सहित खोजइ जो प्रानी-पाव भगति मनि सब सुख खानी।

भाव सच्चा हो, सुमति हो, सतों का सम्पर्क हो, तो पहाडो और खानों मे से इस भक्ति मणि को ढूँढ निकालना कुछ कठिन नही है। कैसा सरल और कैसे सरल ढंग से समझाया गया वह 'सुजतन' है जिससे भक्ति मणि प्राप्त किया जा सकता है।

सो मनि जदपि प्रकट जग अहई-राम कृपा बिनु नहि कोउ लहई।

सुगम उपाय पाइवे केरे-नर हत भाग्य देहिं भट भेरे।

तुलसी का विश्वास है कि जिस भक्ति की चर्चा वह करता है वह प्रकट है, सरल है, सुगम है, परन्तु मनुष्य ऐसा अभागा है कि उसको सामने पाकर भी उसकी अवहेलना करता है।

वास्तव मे क्या स्वरूप है उस भक्ति का जिसको तुलसी इतना प्रकट और सुगम मानता है परन्तु जिसको अपनी स्थिति मे हम इतना दुर्लभ और दुस्साध्य माने बैठे हैं? क्या यह भक्ति वही भक्ति है जिसका ढोंग करने वाले हमको कदम-कदम पर मिलते हैं या कोई ऐसी वास्तविकता जिसको तुलसी ने अपने जीवन मे पाया और जिसको सुविधा के लिए एक परम्परागत नाम दे दिया? इसमे तो सन्देह ही नहीं कि जिस भक्तिमणि, की कवि चर्चा करता है वह उसकी अपनी अनुभूति की चीज है जिसको निगमागम पुराण के पर्वतों से, राम कथा की गुप्त खानों में प्रवेश करके उसने स्वयं बाहर निकाला है। हम पर्वतों से टक्करें लेते है और निराश होकर बैठ जाते हैं। तुलसी ने उनका पल्ला पकड़ा जो मर्मी सत है, पत्थर और हीरे मे फर्क जानते हैं, जिनकी आँखे खुली हैं, जिन्हों ने खोज की है भाव सहित, प्रेम से द्रवित हो कर, अपने आप को भुला कर। हममें और तुलसी में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि भक्ति उसकी आवश्यकता थी हमारे

लिए वह एक कुतूहल या वादविवाद की चीज है। उसने जग नभ बाटिका की निस्सारता का अनुभव किया था और विविध आकर्षक प्रलोभनों का खोखलापन देख कर एक विश्वसनीय सम्बल की खोज की थी। स्वभावतः भक्ति उसके लिए एक पद्धति या विधान नहीं है, उसके लिए भक्ति एक अवस्था है, एक जीवन है जो इस मानी में सरल है कि उसको कोई भी, वह चाहे विद्वान हो या अविद्वान, राजा हो या रंक अपना सकता है, कहो रह कर अपना सकता है यदि उसमे अनन्यता हो और अहंकार न बाकी रहे। फलतः ज्ञान और भक्ति मे कौन बड़ा है कौन छोटा, कौन सच्चा मार्ग है कौन झूठा, इस व्यर्थ की बहस में वह नहीं पड़ता। उसको यह कहने में कोई संकोच नहीं कि

भगतिहि ग्यानिहि नहिं कछु भेदा-उभय हरहिं भव संभव खेदा।

परन्तु अपने अनुभव की बात वह जरूर बताता है और बिना किसी संशय सकोच के कहता है कि

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका-साधन कठिन न मन कहुँ टेका।

केवल यही नही कि ज्ञान मार्ग मे अनेक विघ्न बाधाएं है उसमे सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उसमे मन को कोई टेक ही नही मिलता। ज्ञानी मे अपने पुरुषार्थ का ऐसा भरोसा होता है या यों कहिए कि वह अपने पुरुष स्वभाव से ऐसा मजबूर है कि उसकी राह में संघर्ष रुकावटों, प्रलोभनों का होना स्वाभाविक है।

ग्यान, विराग, जोग विग्याना-ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना।

और यह तो पुरुप स्वभाव ही है कि वह नारी के रूप पर मोहित हो जाय। ज्ञान पुरुष का माया नारी के मोह पाश मे फंस जाना स्वाभाविक है। भक्ति के मार्ग मे यह भय नहीं है। भक्ति स्वयं नारि है उस पर माया क्या डोरे डालेगी ?

मोह न नारि-नारि कें रूपा-पन्नगारि यह रीति अनूपा।

फिर यह भी है कि दोनों नारियों, भक्ति और माया, मे भगवान् को भक्ति ही प्रिय है।

पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी-माया खलु नर्त्तकी बिचारी।
भगतिहि सानुकूल रघुराया-ताते तेहि डरपति अति माया।

ज्ञानी और भक्त में एक दूसरा अन्तर भी है। ज्ञानी को अपने ज्ञान के प्रबल प्रताप का भरोसा होता है परन्तु भक्त को एक अबल अबला की भाँति एक राम का भरोसा है। राम की शरण मे आकर न उसे कोई दूसरा सहारा लेना है न उसकी राह मे कोई वाधा रुकावट है।

राम भगति निरुपम निरुपाधी-वसइ जासु उर सदा अवाधी।
तेहि विलोकि माया सकुचाई-करि न सकइ कछु निज प्रभुताई।

भक्त की राह मे एक तो बाधाएं आती ही नही क्यों कि वह राज डगर है तलवार की धार पर दौड़ना नही, एक आनन्दमय स्थिति है जिस मे माया नर्त्तकी के सभी हाव भाव फीके पड़ जाते है, दूसरे एक बार भक्त ने जब राम की शरण ले ली तो फिर उसकी राह मे कोई बाधा खडी भी हो जाय तो उसके दूर करने का भार राम पर होता है क्योंकि भक्त तो अपना सर्वस्व राम पर निछावर पहले ही कर चुका है।

गहि सिसु वच्छ अनल अहि धाई-तहँ राखइ जननी अरगाई।

बच्चा आग और साँप को पकड़ने दौड़े भी तो यह माँ का काम है कि वह उसे आग और साँप से अलग करके रक्खे। अतएव भक्ति कवि के लिए एक साथ ही साधन, साध्य, जीवन और परमलाभ है। ज्ञान मे सिद्धान्त की प्रधानता है भक्ति में अनुभूति की, ज्ञान मे अहं और कर्तृत्व बुद्धि है भक्ति मे शरणागति और अनन्यता, ज्ञान मुक्ति के अधीन है भक्ति स्वतंत्र, ज्ञान के कतिपय सिद्धान्त संसार के प्रति अनुत्तरदायित्व की प्रवृत्ति उत्पन्न कर सकते है, भक्ति सरल सहज समता और प्रेम पूर्ण आचरण पर जोर देकर मानव जीवन को सुखमय आनन्दमय

बनाना चाहती है। ज्ञान मार्ग की कष्ट पूर्ण परीक्षा की जोखिम हम प्रायः मुक्ति के लिए उठाते है परन्तु भक्त जिस सहज रसमग्नता की दशा मे रहता है उस दशा मे मुक्ति अनइच्छित अपने आप ही मिल जाती है।

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं, अनइच्छित आवइ बरिआई।

सच पूछिए तो मुक्ति भक्ति की अनुगामिनी है जैसे बिना स्थल के जल नही रह सकता वैसे ही बिना भक्ति के मुक्ति नही रह सकती।

जिमि थल विनु जल रह न सकाई, कोटि भाँति कोउ करै उपाई।
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई, रहि न सकइ हरि भगति विहाई।

जिस अवस्था मे भक्त रहता है उसमे अविद्या भी जिसको दूर करने मे ज्ञानी अपनी सारी शक्ति लगा देता है, नही टिक सकती। उस अवस्था मे तो अविद्या और अविद्या जनित संसृति का अपने आप ही, बिना यत्न किए ही, लोप हो जाता है।

भगति करत विनु जतन प्रयासा, संसृति मूल अविद्या नासा।

अतएव स्रोत ही की खोज क्यों न की जाय, उस भक्ति को ही क्यों न अपनाया जाय जिसमे ऋद्धि सिद्धि, मुक्ति आदि का पीछा नहीं करना पड़ता वे स्वय भक्त के पीछे पीछे लगी रहती हैं। ज्ञान मार्ग मे मुक्ति साध्य हो परन्तु भक्ति मार्ग मे तो वह घलुए मे मिलती है।

अस विचारि हरि भगत सयाने, मुक्ति निरादर भगति लुभाने।

इस प्रकार भक्ति मणि एक जीवनज्योति है जो जीवन मे समता, निश्चिन्तता, एकरसता लाती है। वह कुछ होना है अन्धेरे मे बैठ कर दीप की बातें करना नही है।

वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातन्ह तम निवृत्त नहिं होई।

दीपक की बातें कर कर के हमने अपना ऐसा स्वभाव बना लिया है कि दीप की बातें कर सकने ही को हमने ज्ञान समझ लिया है।

परन्तु वाक्य निपुणता ज्ञान नही है वह एक ऐसा जाल है जिसमे फँसकर फिर निकलना मुश्किल है बातों की उलझने ही बढती है निशा के अन्धकार मे कोई कमी नही होती।

छूटइ मल कि मलहि के धोएँ, घृत की पाव कोउ वारि विलोएँ।

अभ्यन्तर का मैल तो और मैल से धोकर दूर नहीं किया जा सकता न पानी मथ कर घी निकाला जा सकता है तार्किकता केवल और तार्किकता, तनाव, संघर्ष को ही जन्म दे सकती है। तुलसी के अनुसार

प्रेम भक्ति जल विनु रघुराई, अभिअंतर मल कबहुँ न जाई।

सत्य को हम प्रेम द्वारा ही ग्रहण कर सकते है और असत्य की मैल भी प्रेम के ही जल से धोई जा सकती है। सच तो यह है कि जिस आनन्दमय, प्रेममय राममय जीवन की ओर तुलसी हम को ले चलता है उसमें द्वन्द्वो और विभेदों को पास रखकर हम प्रवेश ही नही कर सकते। ज्ञान और भक्ति के प्रचलित अर्थो से जो कुछ हम समझते हैं, शुष्क टीकाओं और व्याख्याओं ने जिस अर्थ को घनीभूत कर दिया है, उसमें और उस सजग, सजीव, सहज रसमग्नता मे बड़ा अन्तर है जिसकी ओर तुलसी का स्पष्ट संकेत है। ज्ञान का दीपक जलाने के लिए भी जिन गुणों को वह आवश्यक बताता है वह है श्रद्धा, भाव, विश्वास; और भक्ति मणि ढूढने वाले के लिए भी विवेक और वैराग्य की आखो से काम लेना जरूरी है। अतएव पारिभाषिक शब्दावलियों मे कवि के तरल, तरंगित अनुभव को बाँध कर रखने का प्रयास व्यर्थ है। तुलसी के काल मे और वर्तमान काल मे भी वाक्य ज्ञान मे निपुण पण्डित मण्डली का कुछ ऐसा रोब दाब रहा है कि हम सरल, समर्पित जीवन के गहरे सृजनकारी गुणों को नहीं पहचान पाते। मानस, विनय, कवितावली में तुलसी ने जिस जीवन का रंग रूप उतारा है जिन मर्मस्पर्शी अनुभवों को व्यक्त किया है उनकी अपरोक्ष ध्वनि यही है कि भवपार तो भगवत्कृपा से होगा परन्तु भगवत्कृपा प्राप्त करने के लिए

जो कुछ हम अपनी ओर से कर सकते है, वह है आत्मसमपर्ण और भाव परिबर्तन । इतना ही हम कर सकते हैं, यही हमे करना चाहिए, यही आनन्दमय, राममय जीवन का राज मार्ग है। इस पथ पर आरूढ हो जाने पर जीवन एक देपीप्यमान मणि हो जाता है, जिसकी ज्योति एक अवाधित प्रकाश के समान पथप्रदर्शन करती है। इस ज्योतिमय मणि के मिल जाने पर जलती बुझती दीप शिखाओं के जलाने का प्रयास समाप्त हो जाता है क्योंकि

रघुपति भक्ति वारि छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै।

२

काव्य जगत्

आठवाँ अध्याय

अनुभव और अभिव्यक्ति

संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी, राम चरित मानस कवि तुलसी।

तुलसी के विषय मे अक्सर यह प्रश्न उठाया जाता है कि वह मूलतः कवि है या भक्त। यह प्रश्न ऐसे ही लोगों के मन मे उठता ही है जिन्होंने न तो उसकी भक्ति का स्वरूप पहचाना है न उसके काव्य का। भक्ति और काव्य के विषय मे ऐसे लोगों के मन मे कुछ ऐसी धारणाएं बनी रहती है जिनके कारण वे उस नैसर्गिक तारतम्य और लय को नहीं देख पाते जो कवि ने अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति मे स्थापित की हैं। तुलसी के लिए उसकी काव्य शक्ति और भक्ति दोनो ही 'प्रभुप्रेरित' हैं। वह क्षण भर के लिए भी ऐसा नही समझता कि आध्यात्मिक क्षेत्र मे तो उसकी सारी शान्ति और निश्चिन्तता प्रभु की दी हुई है परन्तु काव्य रचना का श्रेय स्वयं उसको मिलना चाहिए। उसको बराबर ऐसा प्रतीत होता है कि जो काव्य प्रतिभा की अधिष्ठात्री देवी उसके हृदय के आगन मे बराबर नाचती रहती हैं उसके सूत्रधार स्वयं प्रभु है। इस प्रतीति के कारण कविता के जन्म, काव्यसृजन की प्रक्रिया और कवि धर्म के विषय मे उसकी कुछ आस्थाएं है जिनकी जानकारी तुलसी साहित्य के रसास्वादन के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

सबसे पहले तो वह इस भ्रम को पास नही फटकने देता कि कविता एक प्रकार का साहित्यिक कौशल है, एक शब्दचातुरी, एक-कारीगरी। संस्कृत ललित साहित्य के अनेक नमूने उसके सामने थे जिनमे कवि का प्रधान उद्देश्य चातुरी, चमत्कार, कलाकारी का प्रदर्शन करने से अधिक और कुछ नही। अकबर और जहाँगीर का वह जमाना जब काव्य, संगीत, चित्रकारी,

शिल्प कला के विविध क्षेत्रों मे कलावन्त अपनी कारीगरी द्वारा धन और यश लूट रहे थे उसकी आँखों के नीचे गुजर रहा था। परन्तु यह सब आकर्षक, भड़कीली सफलताएं उसके लिए कोई मूल्य नही रखती थी उस स्रष्टा कवि और भक्त के धर्म के आगे जो उसने जाना पहचाना था। यदि तुलसी की कविता के विषय मे कोई बात स्पष्ट रेखाओं मे दिखाई देती है तो वह यह है कि उसकी कविता रामयश कीर्त्तन का साधन है, उसकी उस अनुभूति का बाहरी पहिरावा जिसमे वह स्वयं रसमग्न है।

कवि न होऊँ नहिं चतुर कहावउँ-मति अनुरूप राम गुन गावउँ।

कविता के विषय मे यह पकड़ कि वह अनुभूति है कृति नही, कृति अनुभूति के पीछे-पीछे चलने वाली है, तुलसी की कविता की कुंजी हैं। यह नही कि वह कलावन्तों की कलाकारी से अपरिचित हो या यह न जानता हो कि कलाकारी की गति कहां तक है :

आखर अरथ अलंकृति नाना-छंद प्रबंध अनेक विधाना
भाव भेद रस भेद अपारा-कवित दोष गुन विविध प्रकारा
कवित विवेक एक नहिं मोरे-सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे
भनिति मोरि सब गुन रहित विस्व विदित गुन एक
सो विचारि सुनिहहिं सुमति जिनके विमल विवेक।

तुलसी का यह निश्चय कि आखर अरथ अलंकृति के कारागारो से निकाल कर मै अपनी कविता को उन स्वरो मे उतारूंगा जिनका मेरी अनुभूति स्वयं निर्माण करेगी एक अत्यन्त महत्व पूर्ण निश्चय था जिसके दूरवर्त्ती परिणामों को समझे बिना उसकी कविता का वास्तविक रूप हम नही पहचान सकते।

तुलसी जब कहता है कि कवितविवेक एक नहि मोरे तो वह केवल विनम्रतावश नहीं, वह कवित विवेक के अनुशासन मे रची गई कविता की असमर्थता और खोखलेपन को समझता है। वह जानता है कि जिस

दर्शन, जिस साक्षात्कार, जिस अनुभूति को वह कविता के स्वरों मे उतारना चाहता है उसको केवल कवित विवेक के वल पर मूर्तिमान करने का प्रयास कोरा प्रमाद है। कृत्रिम ढाँचे उस परिवर्तनकारी, सृजनकारी, व्यापक,, आनन्दमय अनुभूति के भार को सम्भाल ही नही सकेंगे जिसको वह व्यक्त करना चाहता है। अतएव वह कवित विवेक का भरोसा न कर, केवल अपने विवेक, अपनी अनुभूति की आवश्यकताओं और प्रभु की प्रेरणा का भरोसा करता है।

जस कछु बुधि विवेक बलमोरे-तसि कहिहउँ हियँ हरि के प्रेरे।

उसका दृढ विश्वास है कि उसकी कविता हरि प्रेरित है हरि की ही प्रेरणा से वह उसकी धारा को संसार मे प्रवाहित कर रहा है।

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी-राम चरित मानस कवि तुलसी।

यह विश्वास उसकी कविता को नया रंग, नया रूप, नई ऊँचाई देता है जिसको ध्यान मे न रख कर पिटे-पिटाए मापदण्डों से उसके काव्य की गहराई नही नापी जा सकती। उसका अपना अनुभव है कि कविता कुछ मान्यताओं को सुन्दर शब्दों में सजाना नही है, कविता का असली स्रोत है दैवी प्रेरणा। कवि कुछ मार्मिक अनुभूतियो को व्यक्त करना चाहता है उनको वह व्यक्त किए बिना नही रह सकता। तुलसी का विश्वास है कि ऐसी दशा मे प्रेरणा अपने आप सक्रिया हो उठती है :

सारद दारुनारि सम स्वामी-राम सूत्रधर अंतरजामी।
जेहि पर कृपा करहि जनु जानी-कवि उर अजिर नचावहि वानी॥

शारदा (कवित्व शक्ति) तो अपने स्वामी और सूत्रधार अंतर्यामी श्रीराम के हाथ की कठपुतली है। अपना जन जान कर प्रभु जिसके भी हृदय रूपी आंगन मे उसको नचावें वही वह उनके इशारे पर नाचेगी। यह विश्वास जहाँ कवि के आधारभूत आध्यात्मिक अनुभूतियों के अनुकूल है वहाँ वह कबिता के क्षेत्र में ऐसी सृजनकारी सम्भावनाओं

को जन्म देता है जिन के प्रभाव मे तुलसी साहित्य आप अपना रंग पकड़ता है।

तुलसी का अपना अनुभव है कि काव्य की अधिष्ठात्री देवी का सच्ची भावना से आह्वान किया जाय तो वह स्वयं भागी चली आती है, कवि को प्रेरणा देती है। कवि के लिए केवल यही आवश्यक है कि इस दैवी प्रेरणा के प्रति वह जागरुक हो, उसके संकेतो को समझे, उसका सदुपयोग करे। दैवी शक्ति का किसी छोटी मोटी कारीगरी, वासना की तृप्ति, सांसारिक श्रीमन्तो या स्वार्थो की पूर्ति के लिए दुरुपयोग करना काव्य की अधिष्ठात्री देवी के प्रति विश्वासघात करना है।

भगति हेतु विधि भवन विहाई, सुमिरत सारद आवति धाई।
राम चरित सर विनु अन्हवाए, सो श्रम जाइ न कोटि उपाए।
कवि कोविद अस हृदय विचारी. गावहिं हरि जस कलिमल हारी।
कीन्हें प्राकृत जनगुन गाना, सिर धुनि गिरा लगत पछिताना।

भक्ति की पुकार पर सरस्वती तो ब्रह्मलोक को छोड़ कर स्वयं भागी चली आयेगी परन्तु उसका समादर तो राम चरितसर मे नहला करके ही किया जा सकता है। उसको उस सृजनकारी, मंगलकारी, कल्याणकारी कार्य मे लगाना जो प्रभु को अभीष्ट है काव्य की देवी का सच्चा आदर और कवि की प्रतिभा का सच्चा सदुपयोग है। यदि दैवी शक्ति हरिगुण गान के स्थान पर प्राकृत जनों के गुण गान मे लगाई गई तो देवी भी सिरधुन कर पछताएगी कि उसका किन सारहीन निकृष्ट अभिप्रायों की पूर्ति मे दुरुपयोग किया जा रहा है। काव्य के विषय मे यह विचार कि वह भक्ति हेतु होने पर ही सार्थक होती है क्योंकि उसको अधिष्ठात्री देवी भक्ति की पुकार पर तुरन्त प्रकट होती है अत्यन्त अर्थपूर्ण है। पहले तो यह विचारशैली ऐसे प्रश्नो की सारहीनता तुरन्त प्रकट कर देती है कि तुलसी कहाँ तक कवि है और किस हद तक भक्त। तुलसी का काव्य उसकी भक्ति से अभिन्न है। उसका काव्य उसके प्रभु के

चरणों मे इतना ही अर्पित है जितना कि वह स्वयं। सासारिक प्रलोभनो से विमुख हो कर, शरणागति द्वारा वह स्वयं भी कृतकृत्य हुआ और उसकी कविता भी इसीलिये अनुपम और धन्य है कि वह प्राकृत जन और प्राकृतिक संसार के प्रलोभनों के गुणगान के मोह से मुक्त है।

दूसरे तुलसी का यह दृढ विश्वास है कि काव्य तभी सफल और सार्थक हो सकता है जब कवि अपनी प्रेरक अनुभूतियों के प्रति पूर्णतया ईमानदार हो और किन्ही बाहरी व्यक्तियों या शक्तियो की प्रसन्नता या परितोष के मूल्य पर अपनी स्वाधीनता न जाने दे।

कविधर्म के विषय मे तुलसी के इन विचारों को कुछ विदेशी विद्वान अत्यन्त क्रान्तिकारी मानते है। काव्य की उत्पत्ति और विकास मे सामाजिक कारणों की खोज करने वाले आलोचक इस बात से अत्यन्त प्रभावित होते है कि तुलसी ने अपने विचारों द्वारा कवि की वैयक्तिक और आर्थिक स्वतन्त्रता ऐसे काल मे स्थापित की जब साहित्य सेवी के लिये राज्य दरबारो और प्राकृत जनो की छत्र छाया मे ही ठौर और आश्रय मिलता और मिल सकता था। पश्चिम के साहित्य मे ऐसे उदाहरण है जब एक व्यक्ति ने साहित्य सेवी की आर्थिक और वैयक्तिक स्वतंत्रता की घोषणा करके और श्रीमन्तों का आश्रय ठुकरा कर साहित्य क्षेत्र मे एक नए युग का आरम्भ किया। तुलसी के प्रति ऐसे आलोचको की सद्भावना अत्यन्त आकर्षक है परन्तु सचाई तो यह है कि तुलसी की स्वाधीनता की जड़े इससे कही अधिक गहरी है। तुलसी तो समाज क्या संसार की भी परतन्त्रता को पूरी तरह अस्वीकार कर चुका था। कोई चाँदी के टुकड़े, कोई वाहवाही, कोई सांसारिक तड़क भड़क उसका राम और रामयशकीर्तन स सम्बन्ध विच्छेद करने मे समर्थ नही थे।

मोर दास कहाइ नर आसा—चहइ तौ कहहु कौन विस्वासा।

फलतः काव्य की सफलता के लिये भी अपने प्रभु पर वह इतना ही:

आश्रित था जितना कि जीवन की विषमताओं से मुक्ति और आनन्द की प्राप्ति के लिये ।

उस कवि के लिये जो स्वान्त: सुखाय काव्य रचना करता है यह आवश्यक और स्वाभाविक है कि वह कवि की स्वाधीनता के सिद्धान्त का पोषक हो और संसार की निन्दा स्तुति से ऊपर उठे । परन्तु कारण जो भी हो तुलसी का कविता सम्बन्धी दृष्टिकोण काव्य और कविधर्म सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों को जन्म देता है । उस दृष्टि कोण का सीधा अर्थ यह है कि कविता का जन्म सत्यानुभूति से होता है और काव्य साधना का मूलमंत्र है अपनी अनुभूति के प्रति ईमानदारी । अतएव कवि किसी परम्परा, प्रचिलित मान्यता, रुचि, पसन्द, फरमाइश का दास नही है । स्वभावत: प्रश्न उठता है कि कवि को क्या लोक प्रशंसा और लोक मनोरंजन की सर्वथा उपेक्षा करना छाहिये ? क्या तुलसी अपने अन्त: के सुख मे इतना निमग्न है कि समाज के प्रति अपने काव्य का उत्तरदायित्व नही समझता । यह प्रश्न भी उसकी भक्ति और कविता के विषय मे मौलिक भ्रान्ति पर आधारित है । संसार से उपेक्षित और निराश हो कर ही उसने संसार की सारहीनता देखी और प्रभु प्रेम का रस प्राप्त किया । अतएव जग नभ वाटिका के धुआँ ऐसे धौरहर तो उसके खूब जाने पहचाने थे और इस लुभावनी नभ वाटिका के गीत वह गाता भी नही, न आदेश और उपदेश द्वारा समाज का सुधार करने वालो का अहंकार ही उसके भीतर है । परन्तु प्रभु मे स्थित हो कर जो सबसे बड़ी निधि उसने पाई और जिसको वह प्रभु की सबसे बडी उपाधि समझता है वह है प्रभु की कृपा और उसका हृदय मानव मात्र के लिये करुणा से भरा है । उसके हृदय मे केवल उस समाज के लिये ही नहीं जिसमें उसने जन्म लिया है वरन् भवसागर मे डूबते उतराते मानव मात्र के लिये अपार करुणा और अनुकम्पा है । वह स्वयं माया कृत गुण दोष मय संसार के थपेड़े खा चुका था । उससे अधिक और कौन उन थपेड़ों की चोट से परिचित हो सकता था । परन्तु उनसे छुटकारा

पाने के वह कोई सस्ते नुस्खे जिन्हें उसने स्वयं न आजमाया हो नहीं लिखता। शरणागति और अनन्यता जिनके द्वारा उसने भवसागर को पार किया उन्ही को वह मानव मात्र के लिये अमोघ औषधि बताता है और उसके मन मे क्षण भर के लिए भी, लेश मात्र भी यह सन्देह नहीं होता कि जो रामयश कीर्त्तन वह अपने काव्य द्वारा कर रहा है वह मोह नाश और मानव कल्याण करने मे समर्थ नही है। अपनी निजी अनुभूति के बल पर वह आनन्द विभोर होकर कहता है कि रामचरित चिंतामणि द्वारा संसार के सभी दुखदर्द, सारी अविद्या, असहायता, दुर्भाग्य, विफलता दूर की जा सकती है। राम चरित जगत् का कल्याण करने वाला, मुक्ति, धन, धर्म, परम धाम सब कुछ देने वाला है। वह सारे पाप सन्ताप दूर करने वाला, विषय रूपी सर्प का जहर उतारने वाला, भाल मे लिखे प्रारब्ध के कुलेखों को मिटाने वाला है। कुपथ, कुतर्क, कुचाल, कपट, दंभ, पाषण्ड सभी राम कथा की प्रचंड अग्नि मे भस्म हो जाते हैं।

जग मंगल गुन ग्राम राम के दानि मुकुति धन धरम धाम के
समन पाप संताप सोक के प्रिय पालक परलोक लोक के
मंत्र महा मनि विषय काल के मेटत कठिन कुअंक भाल के
अभिमत दानि देव तरुबर से सेवत सुलभ सुखद हरि हर से
सकल सुकृत फल भूरि भोग से जगहित निरुपधि साधु लोग से

कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषण्ड
दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड

ऐसी मानव कल्याण के भावों से भरी रचना के संबन्ध मे समाज के प्रति उदासीनता का प्रश्न खड़ा करना कथा के आन्तरिक सन्देश को न ग्रहण करना है। तुलसी ऐसा व्यक्ति जिसने देश भर का पर्यटन कर के समाज के सभी स्तरो के लोगों की दशा और दुख सुख की गहरी जानकारी प्राप्त की, जिसको अपने जीवन मे आलोक मिला तो दुख और

निराशा की ठोकरे खाकर, वह भला जन की पीड़ा की ओर से उदासीन कैसे हो सकता था ? सच बात तो यह है कि तुलसी कविता के सृजन और वितरण के सम्बन्ध मे बड़े सुस्पष्ट और सुनिश्चित विचार रखता था। सृजन के क्षणो मे उसकी कविता उसके और उसके प्रभु के बीच की चीज है और उस अनुभूति मे जो उसने पाया है न तो जन रुचि की फरमाइश पूरी करने के लिये और न विद्वत्ता की माग को सन्तुष्ट करने के लिये वह किसी प्रकार की मिलावट लाने को ,तैयार है। अपनी अनुभूति को तो वह बड़ी सतर्कता से अपने विशुद्ध, अक्षुण्ड, मौलिक रूप मे प्रकट करता है और जहाँ देखता है कि यह संकुचित परम्परागत विचारों से मेल नही खाती वह बड़ी विनम्रता पूर्वक यह कह कर क्षमा प्रार्थी होता है 'कि वेद न पुरान जानौ।' सृजन के क्षण उसके अन्तः सुख के क्षण है। सृजन उसके लिए अनुभूति है कृति नही। परन्तु वह उन कोरे सिद्धान्त वादियो मे नही है जो प्रेषणीयता के प्रश्न को कोई महत्व ही नही देते। |वह कविता की प्रेषणीयता के विषय मे इतना जागरूक और सतर्क है कि सारी परम्परा, ख्याति और मान अपमान को तिलाजलि देकर उसने अपनी कविता को संस्कृत के बजाय भाषा मे लिखने का महान् निश्चय किया। उसका तो दृढ विश्वास था कि

कीरति भनिति भूति भलि सोई –सुरसरि सम सब कँह हित होई।

काव्य वही भला है जो गंगा की धारा के समान सब के लिये हितकारी हो। अपनी तरफ से प्रभु के सन्देश को सरल, सुगम, सभी के लिये सुलभ बनाने मे उसने कोई कसर भी नही रक्खी क्यों कि वह जानता था कि काव्य का सृजन हो जाने पर उसकी सार्थकता इसी मे है कि वह पाठकों और श्रोताओ तक पहुँचे। वह भली भाँति जानता था कि कविता का जन्म कही और होता है परन्तु वह शोभा कही और पाती है :–

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी-अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी

नृप किरीट तरुनी तनु पाई-लहहि सकल सोभा अधिकाई
तैसेहिं सुकवि कवित बुध कहहीं-उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं।

मणि माणिक मुक्ता का जन्म स्थान तो है सर्प के सिर, पर्वत के शिखर और हाथी के मस्तक मे परन्तु उनकी शोभा अपने जन्म स्थान मे नही, उनकी शोभा और सार्थकता है राजा के मुकुट मे, तरुणी के शरीर के आभूषणो मे। ऐसे ही सुकवि की कविता का जन्म तो होता है एक जगह, कवि के हृदय मे, प्रभु की प्रेरणा म, परन्तु वह शोभा पाती है, सार्थक होती है कही और ही, रसिक पाठक या श्रोता के मन मे।

अतएव तुलसी श्रोता और पाठक की उपेक्षा नही करता। वह अधिकारी पाठक के प्रशंसा का आदर ही करता है।

जे प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कवि करहीं।

परन्तु वह यह भी जानता है कि काव्य का रसास्वादन वही कर सकता है जिसका हृदय निर्मल है, स्वस्थ है, ग्रहणशील है। सच्चाई, अनुभूति की गहराई, चित्त की शुद्धि वैसे तो काव्य मे झलके बिना नही रह सकती परन्तु जिस अनुभूति को तुलसी ने अपनी कृति मे संजो कर रक्खा है वह उन्ही को रुचेगी भी जो स्वयं सहृदय हों और जिनके चित्त निर्मल हो चुके हों।

राम चरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु
सज्जन कुमुद चकोर चित हित विशेष बड़ लाहु।

पाठक की पात्रता के विषय मे उसकी एक ही मांग हैं– राम की ओर उन्मुखता और राम की कृपा मे श्रद्धा

जे श्रद्धा संवल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ॥

जो विषयी है जो विषय वस्तुओं मे लिप्त है जिन्हे राम की कृपा मे श्रद्धा नही है वे कवि की रचना के पास आते ही नही क्योकि उनकी रुचि तो विषय रस की कहानियाँ पढ पढ के दूषित हो गई है। उनके रामचरितमान सरोवर की ओर पैर ही नही पडते।

अति खल जे विषई बगकागा। एहिं सर निकट न जाहिं अभागा।
संवुक भेक सेवार समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना।

रुचि दूषित होने के कारण ऐसे पाठक यदि तुलसी के काव्य सरोवर के पास आवे भी तो कुछ पाते नही, कथा का अर्थ संकेत उनके गले के नीचे उतरता ही नही —

जौ करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नींद जुड़ाई होइ।
जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गएउँ न मज्जन पाव अभागा।

अतएव तुलसी काव्य के पाठक और श्रोता के लिये यह आवश्यक नही है कि वह बहुत विद्वान, वहुश्रुत मेधावी हो, उसकी रुचि परिष्कृत होनी चाहिए और उसके हृदय मे प्रभु का प्रेम लहराना चाहिए, दूसरे शब्दों मे कवि के अनुभव से सहानुभूति, प्रभु के प्रेम रस मे लीनता उसके प्रथम और अन्तिम गुण हैं।

अपनी कविता के विषय मे यह विश्वास की वह हरिप्रेरित है तुलसी के एक अन्य विश्वास को जन्म देता है और वह यह कि वह और उसका काव्य एक महान् अनुभूति की प्रेरक शक्ति से सम्बद्ध हैं जो उसको और उसके काव्य को ऊपर उठा देंगी और अपने उच्च स्तर पर कायम रक्खेगी। कथा वस्तु की महानता कहाँ तक कविता को महानता प्रदान करती है यह एक आकर्षक साहित्यिक प्रश्न है। यह तो सही है कि विषय के विशाल और ऊन्नत होने ही से कविता विशद और उच्च कोटि की नही हो जायगी परन्तु यह भी सही है कि महान् कविता की सृष्टि बिना एक सम्पूर्ण और विराट दर्शन के, केवल पहलुओ

और स्फुस्ट विचारों को लेकर नही हो सकती । तुलसी की कविता की महानता केवल कथा वस्तु के विस्तार या पृष्ठ नूमि की महानता पर आधारित नहीं है, उसकी वास्तविक भव्यता ।और दिव्यता उस सृजनकारी अनुभव से उत्पन्न होती है जिसके संसर्गमात्र से भाषा और अभिव्यक्ति की समस्याएँ हल हो जाती है । उसको बराबर ऐसा जान पड़ता है कि मै एक निमित्त मात्र हूँ, एक वाहक, मेरी कविता, एक पात्र मात्र है प्रभु के प्रेम रसामृत को ग्रहण करने के लिये । अपने अस्तित्व को गला कर वह रामयश संकीर्त्तन करता है और बरावर यह विश्वास रखता है कि परम तत्व से संयुक्त होने के कारण उसकी कविता मे शक्ति, माधुर्य, हृदय मे उदात्त वृत्तियों को जगाने का सामर्थ्य अपने आप आ जायगा । अतएव तुलसी की रचनाओ के सम्वन्ध मे यह विवाद उठता ही नही कि उसकी रचना की महिमा अधिक उसकी उच्च प्रेरणा और उच्च लक्ष्य के कारण है या वस्तु विषय की विशदता और विस्तार के । लक्ष्य और वस्तुविषय का ऐसा सामंजस्य जैसा तुलसी मे है ससार के साहित्य मे ढूंढने से न मिलेगा । तुलसी के काव्य का जो लक्ष्य है वही उसके जीवन का लक्ष्य है । भक्ति से भिन्न न उसका कोई जीवन है और न काव्य । और उसके महान् लक्ष्य के अनुरूप ही उसके काव्य का वस्तु विषय भी है—रामचरित । राम के अपार चरित से अधिक उपयुक्त वस्तुविषय भक्ति के लोकोत्तर आनन्द देने वाले तत्व के उद्घाटन के लिये हो भी नहीं सकता । सच पूछिए तो विषय की महानता अपने मे कोई चीज नही है जब तक कि उसको प्रकाश और जीवन देने वाली प्रेरणा की सत्संगति न प्राप्त हो । तुलसी मे भक्ति की प्रेरक अनुभूति मे ऐसी श्रद्धा है कि वह छन्द प्रबन्ध के० यवस्थापकों की बनाई हुई सभी व्यवस्थाओं को दूर से नमस्कार करता हुआ सृजनकारी काव्य की चरम सीमाओं को छूता है । मानसकार के मन मे यह वात उठी होगी की छन्दः शास्त्र के पण्डितो, वैयाकरणों, संस्कृतज्ञों को यह बात खटकेगी कि मैं परम्परा की लीक छोडकर जन भाषा मे निज मति

अनुसार प्रभु से प्रेरित हो कर, स्वान्तः सुखाय काव्य रचना करने चला हूँ। परन्तु उसके मन मे क्षण मात्र के लिये संशय सन्देह नही हुआ कि उसकी प्रेरणा का पावन सत्संग उसकी सभी वाह्य कमियो को पूरा करने मे पूर्णतया समर्थ है। अतएव अपनी स्वाभाविक विनम्रता मे वह कहता है :

जदपि कवित रस एकउ नाहीं। राम प्रताप प्रकट एहि माहीं
सोइ भरोस मोरे मन भावा। केहि न सुसंगबड़प्पन पावा
धूमउ तजइ सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगंध बसाई
मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की,
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की।
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी।
प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग,
दारु विचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग
स्याम सुरभि पय विसद अति गुनद करहिं सब पान,
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गाँवहि सुनहिं सुजान

तुलसी की स्पष्ट चेतावनी है कि हमे कृत्रिम मापदण्डों और बाहरी बातों की ओर न जाकर वास्तविक मूल्यों को समझना चाहिए, उस अनुभूति को पकड़ना चाहिए जो उसकी कविता मे निहित है और जिस पर उसकी कविता आश्रित है। कोई अगरु सुगन्ध को इसलिए नही त्यागता कि वह धुएँ जैस कड़ुवे पदार्थ के माध्यम से फैलता है; कोई गंगा की धारा की अवहेलना नही करता केवल इस लिये कि वह टेढ़े मेढ़े रास्तों से होकर बहती है; कोई भगवान् शंकर के अंग की भस्म को केवल इसलिये अपावन नहीं समझता कि वह श्मसान की भस्म है, कोई मलयागिरि चन्दन को इसलिये तुच्छ नही कहता कि वह काष्ठ पदार्थ है कोई विशद

गुणकारी दूध को पीने से इसलिए इनकार नहीं करता कि जिस गाय का वह दूध है वह काली है। अतएव आप तत्व को पहचानिए मेरी राम प्रताप प्रकट करने वाली कविता की अवहेलना इसलिये न कीजिये कि उसका ऊपरी पहिरावा 'ग्राम्य गिरा' का है। तुलसी ने संस्कृत छोड़कर भाषा मे अपनी काव्य रचना क्यों की इसके अनेक कारण है परन्तु जो कारण अनुभव और अभिव्यक्ति के प्रश्न से संबन्ध रखते है उनको जाने विना हम उसके काव्य की रूप माधुरी का रसपान नही कर सकते। उसका राम सर्वभूतरत है, उसकी चित्तवृत्ति सर्वभूतरत है, उसकी भाषा भी सर्वजन सुलभ होनी चाहिये क्योंकि उसके मन से क्षणभर के लिये भी यह वात नही उतरती कि मै यह रचना विद्वन्मण्डली की प्रशसा और अपने वैयक्तिक यश लाभ के लिये नही कर रहा हूँ वरन् प्रभु की कृपा से प्रभु की कृपा का सन्देश जन जन के मन मे अंकित करने के लिये कर रहा हूँ।

यह हरि प्रेरित कविता है क्या चीज ?

हरि प्रेरित कविता कोई बिषय से अलग होकर, शब्दों को ढूँढ ढूँढ कर, सजा सजा कर नही कर सकता, न अपनी शक्तियो मे से किसी एक शक्ति के सहारे कर सकता है। उसकी सभी शक्तियाँ, मन हृदय, आत्मा, उसका सम्पूर्ण अस्तित्व हरि प्रेरित अनुभव मे ऐसा तल्लीन रहता है कि ऐसी कविता बहुत कुछ विना प्रयास के ही अपने को व्यक्त करती है। अनुभव और अभिव्यक्ति मे एक ऐसा तारतम्य बन जाता है कि ऐसा लगता है कि जिस रूप मे उसकी अनुभूति व्यक्त हुई है उसके अतिरिक्त और कोई रूप वह ग्रहण ही नही कर सकती थी। कोई दूसरी शब्दयोजना, भाषा, शैली उसको अपने वास्तविक रुप मे व्यक्त ही नही कर सकती थी। यह धारणा कि विषय और माध्यम अलग अलग चीजे हैं और कविता एक बात को चुने हुये लच्छेदार शब्दों मे अलंकृत करना है सच्ची कविता के विषय मे पूर्णतयाभ्रामक और अर्थहीन है।

सच्चा कवि अपनी भाषा की स्वयं सृष्टि करता है शब्दों को रंग, रूप हाव भाव, व्यक्तित्व देता है। यह रंग रूप की विशिष्टता भाषा को उस अनुभूति से प्राप्त होती है जिसके वश में कवि स्वयं होता है। तुलसी की कविता मे अनुभव और अभिव्यक्ति निस्सन्देह अभिन्न है कोई दूसरे शब्द, उल्था, अनुवाद कारीगरी तुलसी की अनुभूति को उस रूप मे व्यक्त नही कर सकते जिस रूप में स्वयं कवि उसको व्यक्त करता है।

कवि की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति को दो अलग अलग चीजे मान कर, उसकी अनुभूति को परम्परागत शास्त्र सम्मत विचारों की प्रतिच्छाया और उसकी अभिव्यक्ति को प्रचलित दोहा चौपाई कवित्त आदि छन्दों की नकल मान कर और उनको तत्कालीन प्रचलित विचार धाराओ और काव्य रूपों की कसौटियों पर कसने की परिपाटी जितनी सुविधा जनक है उतनी ही भ्रमपूर्ण भी। तुलसी साहित्य के जीवित प्रभाव को निर्जीव और निष्फल बनाने का इससे आसान कोई और तरीका नही हो सकता कि उसकी कविता को हम रूढियो और परम्पराओं की कसौटियों पर कसते रहे। तुलसी अपने समय के सभी प्रचलित ढांचो, बर्त्तनों को एक एक कर के उठाता है उनको ठोंक बजा कर देखता है इन पात्रों की पात्रता की परीक्षा करता है यह देखने के लिये कि कौन सा रस किसमें भरने के लायक है और जब वह देखता है कि जो रस इनमे वह भर रहा है वह तो वह नही है जो उनमे प्राय: भरा जाता है तो 'छन्द प्रबन्ध विधान अनेका के' कुम्हारो और कारीगरों से क्षमा प्रार्थी होता है

कवि न होउँ नहिं बचन प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू
राम भगति भूषित जियँ जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुवानी।

कविता के लक्ष्य और वस्तु विषय के सम्बन्ध मे ऐसे स्पष्ट और सुनिश्चित विश्वास ऐसे ही कवि के हो सकते है जिसने अपने काव्य का

सृजन के क्षणो मे निकट से निरीक्षण किया हो। तुलसी ने मानस के प्रारम्भ ही मे काव्य के सृजन की प्रक्रिया पर दृष्टिपात किया है। यह प्रश्न अक्सर उठाया जाता है कि कविता प्रधानत: हृदय की चीज है या बुद्धि की, वह भाव प्रधान है या विचार प्रधान। सभी क्षेत्रों मे द्वन्द्वो को मिटाने वाले मानसकार से तो हमे यही आशा करनी चाहिये कि वह काव्य के क्षेत्र मे भी द्वन्द्वो को मिटा कर वास्तविकता से हमारा परिचय करावेगा। तुलसी बुद्धि और हृदय मे कोई द्वन्द्व नही स्थापित करता वरन् प्रत्येक को उपयुक्त भूमिका और कार्य प्रणाली बतलाता है।

हृदय सिन्धु, मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहंहि सुजाना
जौं बरषइ वर वारि विचारू। होहिं कवित मुकता मनि चारू।

हृदय यदि सिन्धु है तो बुद्धि सीप है, सरस्वती (प्रेरणा) स्वाति नक्षत्र और वर्षा विचार। जब हृदय, बुद्धि, प्रेरणा, विचार सभी का सगठन और स्वर्ण संयोग होता है तभी काव्य के मुक्तामणियों की सृष्टि होती है। अतएव तुलसी काव्य के सृजन मे बुद्धि और विचार की उपेक्षा नही करता काव्य मुक्ता मणि होते तो हृदय रूपी सिन्धु मे ही है और प्रेरणा रूपी स्वाति विन्दु के ही प्राप्त होने पर, परन्तु उनको ठौर ठिकाना देने, उनकी रूप रेखा बनाने मे बुद्धि रूपी सीप और विचार रूपी जल वर्षा का भी अपना हिस्सा है। हृदय की अनुभूतिया तो, कवि के अनुसार सिन्धु के समान अगाध और अपार है परन्तु इस अगाधता मे कोई तलस्पर्शी ठौर ठिकाना भी जरुरी है और यह तलस्पर्शी ठौर सुमति या बुद्धिहै।

एक अन्य रूपक बाँधते हुए वह इस बात पर फिर जोर देता है। इस रूपक मे वह बुद्धि को भूमि कहता है हृदय को अगाध बताता है वेद पुराण को उदधि कहता है साधु जनों को मेध, राम सुयश को मंगलमय जल और इस मंगलमय जल के गुणगान मे फिर काव्य की उत्पत्ति की प्रक्रिया की ओर अपनी अर्थ पूर्ण भाषा में संकेत करता है —

सुमति भूमिथल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू
वरषहिं राम सुजस वर वारी। मधुर मनोहर मंगलकारी।

इस मधुर मनोहर मंगलकारी श्रेष्ठ जल का सुकृत और राम भक्ति से अभिन्न सम्वन्ध दिखाता हुआ कवि बताता है कि जब यह जल बुद्धि रूपी पृथ्वी पर गिरता है तों सिमट सिमट कर कान रूपी मार्ग से होता हुआ मानस (अर्थात् हृदय) रूपी श्रेष्ठ स्थल की गहराइयो मे बैठ कर स्थिर हो जाता है। पुराना हो कर हृदय की गहराइयों मे अवगाहे जाने के बाद वह सुखद सुशीतल, रुचिकर कल्याण कारी हो जाता है।

सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई,
मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन।
भरे सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना,

हृदय की गहराइयो मे बैठ कर स्थिर होने और पुराना हो कर शीतक्ष सुखद होने की प्रक्रिया एकाएक एक सुविख्यात अँगरेजी कवि की कविता सम्बन्धी उक्ति की याद दिलाता है जिसमे वह कहता है कि कविता भावों का सुस्थिर मनोदशा मे पुन स्मरण है। स्पष्टत: तुलसी भक्ति के उमग को शब्दो मे उतारने के लिए सुमति की ठोस जमीन पर उतारने का महत्व मानता है। परन्तु काव्य का श्रोत तो हृदय ही है। राम चरित मानस-सरोवर को देखने के लिये तो हृदय के ही नेत्र होने चाहिए और काव्य के सृजन के क्षण हृदय मे आनन्द और उत्साह के उमंगने के ही क्षण होते हैं ऐसे क्षण जिनमे कवि प्रेम और आनन्द के समुद्र मे लहराता होता है।

अस मानस-मानस चख चाही, भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही।
भयउ हृदयँ आनन्द उछाहू, उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू ॥
चली सुभग कविता सरिता सो, राम विमल जस जल भरिता सो ॥

महान काव्य के विषय मे यह विश्वास कि उसका जन्म स्थान हृदय है जहाँ एक ओर सृजनकारी काव्य के स्रोतों की सच्ची पकड़ है वहाँ

दूसरी ओर वह तुलसी जैसे कवि के काव्य की आवश्यकता भी है क्योंकि रस की सृष्टि उसके काव्य का माध्यम भी है और लक्ष्य भी। जिस भक्ति और प्रेमरस की सृष्टि कवि ने अपनी रचनाओ मे की है उसकी सृष्टि कोरी बुद्धि और प्रयास के बल पर हो ही नहीं सकती थी। लक्ष्य और माध्यम की ऐसी एकरसता जैसी तुलसी की कृतियो मे है कम देखने मे आती है यद्यपि सफल साहित्य सृजन की यही पहली और आखिरी माग है।

अभिव्यक्ति की सब से बड़ी समस्या यह है कि जिस माध्यम से अनुभूतिथों को व्यक्त किया जाय वे रस सृष्टि करने मे सशक्त, समर्थ और पर्याप्त हो। और यह व्याकुलता सभी महान् कवियों को होती है कि साहित्यिक माध्यम आध्यात्मिक अनुभूतियो को पूरी तरह व्यक्त नही कर पाते। हृदय में जो कवि देखता है शब्दों मे वह उतरता नही। जिस मानस का रूपक बड़े यत्न से कवि बाँधता है उसका रूप उतार चुकने पर वह स्वयं कहे बिना नही रह पाता कि 'अस मानस मानस चख चाही।' फिर भी अभिव्यक्ति के जो साधन कवि को उपलब्ध है उनकी सीमा और गति वह भली भाति समझता है। वह जानता है कि शब्द और अर्थ ही उसके प्रधान साधन और शक्ति है 'अरथ आखर बल साँचा।' उसकी अनुभूतिया चाहे जितनी गहरी परिवर्त्तनकारी आनन्द दायिनी हों उनकी अभिव्यक्ति के विषय मे वह शब्दार्थ के घेरे में बंधा है। जैसे नट की ताल ही के अनुसार नाचना पड़ता है ताल के बाहर उसकी गति नही वैसे ही कवि को अपनी मति को व्यक्त करने मे शब्दार्थ का ही एक मात्र अवलम्ब है। अतएव तुलसी शब्द की शक्ति को पहचानता है और शब्दों मे अर्थ भरने की कला को अभिव्यक्ति की सब से बड़ी सफलता मानता है। परन्तु वह कला के लिए कला के उन पुजारियों मे नही है जो साहित्य की सार्थकता शब्दों और शैली को रोचकता मे ही देखते है।

वह इस बात से कि मेरी कविता प्रभु की कृपा से प्रेरित है इतना सच्चे भाव से मानव कल्याण का साधन समझता है, कि वह किन्ही सस्ती साहित्यक और शाब्दिक तड़क भड़क से सन्तुष्ट नही हो सकता ।

भनिति मोरि सिव कृपाँ बिभाती ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती ।
जे एहि कथहि सनेह समेता कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेत ।
होइहहिं राम चरन अनुरागी कलिमल रहित सुमंगल भागी ।

अपनी कविता के प्रभाव मे ऐसी गहरी आस्था रखने वाले कवि के लिए केवल भाषा की बनावट और सजावट का कोई महत्व नही हो सकता था और वह जानता भी था कि लोग इस सजावट और बनावट की कमी की ओर उँगली उठावेंगे ।

राम सुकीरति भनिति भदेसा, असमंजस अस मोहि अंदेसा ।

परन्तु उसको अपनी अनुभूति का ऐसी सच्ची पकड़ थी कि वह किसी बाहरी तड़क भड़क पर फिसलने वाला नहीं था और वह कवियों से हाथ जोड़ कर कहता है आप रक्खे रहिए अपने अलंकार आभूषण मै तो सिलाई का कायल हूँ वस्त्र का नही, भाव यदि पकड़ मे न आया तो शब्दो की सुन्दरता का कोई स्वतन्त्र महत्व नही ।

तुम्हरी कृपाँ सुलभ सोउ मोरे, सिअनि सुहावनि टाट पटोरे ।

फलतः तुलसी ने सच पूछिए तो अपनी अनुभूति और कविता की माँग के अनुरूप अपनी भाषा स्वयं बनाई है एक ऐसी भाषा जो उसकी तरल, व्यापक कृतकृत्य करने वाली अनुभूति के अनुकूल ही सरल, लचीली, हृदय मे उतर आने वाले प्रसाद गुण से संयुक्त है । उसकी भाषा और उसके भाव एक ताल मे बँधेहैं जल और जल की लहरों के समान एक दूसरे से अभिन्न हैं :-

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न ।

नवाँ अध्याय

मानस-परम्पराएँ और काव्यरूप

नाना भांति राम अवतारा-रामायन शत कोटि अपारा
कलप भेद हरि चरित सुहाए। भांति अनेक मुनीसन्ह गाए

रामायणी कथा की परम्परा जितनी प्राचीन है उसका विकास भी उतना ही विचित्र और प्रचार भी उतना ही व्यापक और दूर दूर तक फैला हुआ रहा है। विश्व साहित्य मे शायद ही कोई ऐसी कथा हो जिसने इतनी बहुसंख्यक साहित्यिक कृतियो को उनकी कथावस्तु दी हो जितनी राम कथा ने दी है। भारतीय भाषाओं मे तो शायद ही कोई ऐसी प्रमुख भाषा हो जिसकी अपनी रामायण न हो! तमिल, तेलुगु, मलयालम, कनड, दक्षिण की अनेक भाषाओं मे राम काव्य की रचना और उसका प्रचार रहा है। उत्तर भारत मे तुलसी कृत रामायण के अतिरिक्त कितनी ही ऐसी रामायणें रची गई जिन्होने अपनी भाषा के क्षेत्र मे राम भक्ति को जागृत और पुष्ट किया। बंगाल की कृत्तिवासीय रामायण का नाम विख्यात है परन्तु गुजराती, मराठी, उड़िया, काश्मीरी, नेपाली, असमिया सभी भाषाओं की अपनी अपनी रामायणें हैं और जिस आधारभूत भारतीय एकता का हम दम भरते है उसका एक वहुत बड़ा कारण हमारी राम के प्रति वह आस्था और भक्ति है जिसको इस विपुल राम साहित्य ने जन जन के मन में अंकुरित और पल्लवित किया।

जहाँ तक वाल्मीकीय रामायण की कथा से उत्पन्न होने वाली राम काव्य की प्रधान धारा का सवन्ध है वह तो सदियों तक अप्रतिहत रूप से प्रवाहित होती रही। जव महर्षि बाल्मीकि ने आदि रामायण की रचना की होगी तो आदि कवि के मन मे शायद ही यह विचार उठा

हो कि जिस कथा की रचना वह कर रहा है उससे इतनी विविध भाषाओ के इतने बहुसख्यक कवियो को इतनी लम्बी शताब्दियो तक ऐसी प्रचुर मात्रा मे सामग्री और प्रेरणा मिलती रहेगी जैसी कि उसकी रामायणी कथा से उनको मिली है। इस विषय मे वाल्मीकीय रामायण विश्व साहित्य मे अद्वितीय है और ऐसा ही अद्वितीय है वह उपयोग जो तुलसी ने इस पुरानी कथा को एक नए जीवन के सन्देश का माध्यम बना कर किया। रामायणी कथा के इस कायाकल्प का महत्व समझने के लिये हमे उस परम्परा पर भी नजर डालनी चाहिए जिसमे वह सदियों तक ढाली जाती रही।

बाल्मीकीय रामायण के राम तो मूलत: एक आदर्श मानव है। जब हम सस्कृत के उस विशाल साहित्य पर नज़र डालते है जिसमे रामायणी कथा का उपयोग हुआ है तो यह देखे बिना नही रह सकते कि शताब्दियों तक संस्कृत कवियो ने अपने काव्यो और नाटकों मे जिस खुले दिल और जिन खुले हाथो से राम को मानव मान कर कथा मे रंगीन शृंगारिक सामग्री भरी है उससे इसमे कोई सन्देह नही रहता कि उनका दृष्टिकोण प्रधानत: एक साहित्य सेवी का था न कि एक धर्मप्राण उपासक का। एक कालिदास या भवभूति ने अपनी सहज प्रतिभा से यदि राम कथा को एक नया रंग, एक नई ऊँचाई दी है तो ऐसे अनेक अन्य कवि है जिन्होने राम कथा को अपने काव्य कौशल और पांडित्य प्रदर्शन का ही साधन बनाया है। इनमे ऐसे कवि भी है जिनके काव्य मे रामायण की कथा के साथ साथ व्याकरण के नियमो का निरूपण भी हुआ है। जब तुलसी अपनी कृति मे कहता है कि 'कवि न होउँ नहि चतुर कहावउँ' तो ऐसी ही काव्य चतुरी उसके मन मे रही होगी। संस्कृत के काव्यो, नाटकों, श्लेषकाव्यों की एक लम्बी सूची बनाई जा सकती है जिसमे ऐसी रचनाओं का नाम आएगा जिनमे या तो रामायण की पूरी कहानी या कोई प्रसंग विशेष लेकर कविता की गई है। किसी मे अंगद के दूत कार्य का वर्णन है तो किसी मे सीता की खोज का, किसी मे

कथा सन्देश के रूप मे चलती है तो किसी मे एक दूसरे ही रूप मे। प्रसन्नराघव की प्रस्तावना मे सूत्रधार की वड़ी सुन्दर उक्ति है। वह कहता है यदि कविगण बार बार राम की कथा ही को लेकर काव्य रचना करते है तो यह कवियों का दोष नही, गुणो का दोष है जिन्होने राम को ही अपना एकमात्र आश्रय बना लिया है। अतएव वृहद्धर्म पुराण के लेखक की उक्ति मे तथ्य है जब वह कहता है :

रामायणं महाकाव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम्
तन्मूलं सर्वकाव्यानामितिहास पुराणयो:

काव्य और इतिहास की इस परम्परा के अतिरिक्त ग्यारहवी बारहवी शताब्दी के आस पास एक दूसरी परम्परा विशेष रूप से देखने मे आती है—रामभक्ति की परम्परा। चौदहवी शताब्दी के लगभग रामानन्द ने राम को अपना इष्ट और रामनाम को साधना का मूलमंत्र मान कर जो भक्ति की धारा प्रवाहित की उसके फलस्वरूप राम कथा को भक्ति के साँचे में ढालने की प्रवृत्ति ने बडा जोर पकडा, रामभक्ति का शास्त्रीय प्रतिपादन, उसको एक दार्शनिक आधार देना, उसे एक साम्प्रदायिक साँचे मे ढालना इस भक्ति परम्परा की प्रमुख विशेषताएँ थी। रामायणे इस लिए लिखी जाने लगी कि उनके द्वारा उन तर्कों और सिद्धान्तों को समर्थन मिले जो साम्प्रदायिक आचार्यो को मान्य हो। अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण अद्भुत रामायण, भुशुण्डी रामायण अनेक ऐसी रामायणें हैं जिनमे काव्योचित गुणों की मात्रा तो कम ही है परन्तु दार्शनिक विवेचनों और भक्ति के निरूपण की काफी भरमार है। इनमे से अध्यात्म रामायण विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंक पन्द्रहवीं शताब्दी के आस पास लिखी गई इस रामायण के अनेक अशों को तुलसी ने अपनी कृति मे स्थान दिया है और इन अंशों के समावेश के कारण लकीर के फकीर समालोचक कुछ ऐसी धारणा बना लेते है जैसे रामचरितमानस के लेखक का मुख्य कार्य केवल एक ऐसे संग्रह कर्त्ता

का था जिसने अपने पूर्ववर्त्ती कवियो की रचनाओं से अच्छे अंश निकाल कर अपनी कृति मे रख लिया हो। परन्तु तुलसी साहित्य पर रामकाव्य के पूर्ववर्त्ती कवियों की रचनाओं के प्रभाव के पकड़ हम ऐसी आसानी से नहीं पा सकते। तुलसी संस्कृत ललित साहित्य के रामकाव्य का, प्रसन्नराघव का, उतना ही उत्तराधिकारी है जितना राममक्ति काव्य और अध्यात्म रामायण का परन्तु अनुयायी वह दो मे से किसी का भी नही है। तुलसी ने जब रामकाव्य के क्षेत्र मे प्रवेश किया तो उसका भाव न तो संस्कृत के ललित साहित्य के अखाड़ियों का था जो अपनी काव्य चातुरी की धाक जमाने के लिए अपनी एक रामविषयक काव्य कृति लेकर अखाड़े मे उतरते थे, न उन साम्प्रदायिक द्वैताद्वैत विषयक वाद विवाद मे भाग लेने वाले प्रतिद्वन्दियों का जो रामकाव्य के बहाने भक्ति और दर्शन के किन्ही बिशेष सिद्धान्तो का प्रतिपादन करने का बीडा उठाए हों उसकी मनोवृत्ति जीवन की विषमताओं से प्रताड़ित एक ऐसे जिज्ञासु की थी जिसे भवसागर के थपेड़ो के बीच एक सहारा मिला हो और जो पूर्ववर्त्ती साहित्य के अंशों का इसी अभिप्राय से और इसी हद तक उपयोग करता हो जिस अभिप्राय से अपनी निजी अनुभूतियों को अधिक आकर्षक और सुपरिचित भाषा मे व्यक्त करने के लिए एक लेखक उद्धरणों का सहारा लेता है।

परम्परा संबंधी यह छानबीन कोई अर्थ नही रखती यदि वह हमें तुलसी के काव्य के विशिष्ट वातावरण को अलग कर सकने और कवि की निजी अनुभूतियों को अलग कर सकने और समझने मे सहायक न हो। मानस के प्रारम्भ मे जब तुलसी पूर्ववर्त्ती कवियो की स्तुति करता है तो वह किसी को नही भूलता। उसे व्यास याद आते हैं :

व्यास आदि कवि पुगंव नाना जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना
चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे पुरवहु सकल मनोरथ मेरे

उसे वाल्मीकि याद आते है :

बंदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहि निरमयउ
सखर सुकोमल मंजु दोषरहित दूषन सहित

वह प्राकृत के कवियों को भी नही भूलता :

जे प्राकृत कवि परम सयाने भाषाँ जिन्ह हरि चरित बखाने

वह कलि के कवियों की कृतियो से भी परिचित है :

कलि के कविन्ह करउँ परनामा जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा

रामकाव्य की कोई परम्परा ऐसी नही है जिससे वह परिचित हो और जिसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने मे वह संकोच करता हो। नाना पुराणनिगमागम से, रामायणो से, क्वचिदन्यतोपि जो कुछ उसने पाया उसके लिये आभार प्रदर्शन वह खुले दिल से और खुले आम करता है क्यों कि उसकी कविता तो स्वान्त. सुखाय है, अपने अन्त: के प्रकाश मे वह जो ठीक समझता है लेता है जो चाहता है त्यागता है, जिसकी चाहता है सराहना करता है जिसकी चाहता है उपेक्षा करता है। भाव साम्य की भूलभुलैया मे चक्कर लगाने वाले कल्पना विहीन समालोचकों को कवि की स्वाभाविक विनम्रता से अक्सर धोखा भी होता है। ऐतिहासिक विकास और आधार ग्रन्थ संबन्धी प्रश्नों मे रुचि रखने वाले लेखकों ने बड़े परिश्रम से यह दिखलाने की चेष्टा की है कि तुलसी को राम चरित मानस के लिखने मे उस वनी बनाई सामग्री से बड़ी सहायता मिली जो पूर्ववर्त्ती रामकाव्य में विखरी पड़ी है और इसमे सन्देह नहीं कि जिस स्वतत्रंता से, एक प्रकार के स्वयंसिद्ध अधिकार को वरतते हुए कवि ने अपने पूर्ववर्ती लेखको की कृतियों मे पाई जाने वाली सामग्री को अपनाया है उससे ऐसे लेखकों की बातो में एक ऊपरी चमक तो आ ही जाती है। तुलसी के कौन से आधारग्रथ है उनको कहाँ तक और किस मानी मे आधार ग्रन्थ कहा जा सकता है तुलसी इन कथित आधार

ग्रन्थो का कहाँ तक ऋणी है यह प्रश्न अपनी जगह पर शोध कार्य करने वालो के लिये एक उपयोगिता रखते हैं। परन्तु इस ढंग के तुलनात्मक अध्ययन की जो सबसे बड़ी उपयोगिता है वह यह कि तुलसी के मानस और पूर्ववर्ती राम साहित्य मे जो भारी और आधारभूत असमानता है वह तुरन्त प्रकट हो जाती है। उसकी कृतियों और पूर्ववर्ती कृतियो मे भाव, वातावरण, दृष्टिकोण, उद्देश्य, माध्यम, अनुभव की गहराई मे जमीन आसमान का फर्क है। इस वात के अनेक और स्पष्ट प्रमाण है कि तुलसी जिस खोज मे था और जिस प्रकार के काव्य जगत को सृष्टि करना चाहता था वह कोई दूसरी ही खोज थी और कोई दूसरा ही काव्य जगत् था जो उस जगत से बिलकुल ही भिन्न है जो उसके पूर्ववर्त्ती कवियों का काव्य जगत् है। वाल्मीकीय रामायण और तुलसी के मानस मे ध्वनि, संकेत, रसविशेष की दृष्टि से कितना अन्तर है! अध्यात्म रामायण का रचयिता जहाँ दार्शनिक सिद्धान्तो के बोझ से दबा हुआ है, उनके शिकंजों मे कसा हुआ है, ज्ञान की गुफाओं से बाहर विकलने मे असमर्थ है वहाँ तुलसी दार्शनिक सिद्धान्तो को जाँच कर, उनको जीवित अनुभूतियाँ बना कर, उन्हे ऐसे कौशल से, ऐसे मुक्त स्वच्छन्द स्वाभाविक ढंग मे सामने लाता है, उनको हल करता है उनसे ऊपर उठता है कि रामचरितमानस को उस धरातल पर रखना जिस पर अध्यात्म रामायण है आलोचनात्मक सूझ बूझ की कमी के अतिरिक्त और कुछ नही! अध्यात्म रामायण का लेखक सिद्धान्तो के प्रतिपादन मे इतना उलझा हुआ है कि उस रसानुभूति, भाव शीलता, सहृदयता की छाह भी आप उसकी कृति मे न पाइएगा जो मानस के जीवित तत्व है!

परम्परागत रामकाव्य मे से तुलसी ने जो कुछ भी मधुसंचय किया हो, परन्तु उसकी कृति अपनी जगह पर इतनी मौलिक है कि उसके रामचरित-मानस की परम्परा मे कोई दूसरा वैसा सफल, हृदय की तन्त्रियों को छूने वाला, या करीब करीब वैसा सफल काव्य, आज तक लिखा ही नही गया।

मानस के काव्य जगत के जलवायु मे परिचित होने के लिए उसकी काव्य परम्परा के अतिरिक्त उसके काव्य रूप पर भी ध्यान रखना चाहिए ।

सच पूछिए तो ।रामचरितमानस को परम्परागत अर्थ मे महाकाव्य मानने की केवल सीमित उपयोगिता है । थोडी ही दूर के बाद परम्परागत मापदण्ड न तो मानस के मूल्याकन मे ही सहायक होते है न उसके रसास्वादन मे, हम •महाकव्य के गुणों को ढूढने ,मे ऐसे जुट जाते है कि काव्य के विशिष्ट और अनूठे गुण आँख मे ओझल हो जाते है । अतएव विना पहले मे ही मानस पर महाकाव्य का चिप्पक लगाए यदि हम उसे केवल महान् काव्य के रूप मे देखें तो उसकी आत्मा से अधिक निकट हो सकेगे ।

मानस के प्रारम्भ मे ही तुलसी अपनी कृति पर जो दृष्टिपात करता है तो उसके मन मे जो चित्र और मूर्तियाँ उठतो है उनसे हमें उस रूप के पहचानने मे सहायता मिल सकती है जिस रूप मे कवि अपनी कृति को स्वयं देखता है और जो रूप वह उसको देना चाहता है । यह एक विचित्र बात है कि कथा के रूप का बखान करने के प्रयास मे कवि रूपकों, उपमाओं, शब्दचित्रों की एक झडी सी लगा देता है । वह स्पष्टत. सचेष्ट है कि कथा के वाह्य रूप से श्रोता और पाठक की दृष्टि हटा कर उन आन्तरिक गुणो पर स्थित करे जिनको वह अपनी कृति का सारतत्व मानता है ।

निज संदेह मोह भ्रम हरनी करउँ कथा भव सरिता हरनी
बुध विश्राम सकल जन रंजनि राम कथा कलि कलुष विभंजनि
राम कथा कलि पन्नग भरनी पुनि विवेक पावक कहुँ अरनी
राम कथा कलि कामद गाई सुजन सजीवनि मूरि सुहाई

राम कथा की महिमा, उसके गुण प्रभाव, उसके चित पर ऐसे चढ़े हैं कि वह उनकी मणिमाला पिरोता चला ही जाता है ।

राम चरित चिंतामनि चारू संत सुमति तिय सुभग सिंगारू
जग मंगल गुनग्राम राम के दानि मुकुति धन धरम धाम के

उपमाओं की यह अविरल धारा यदि कोई बात साबित करती है, तो वह यह कि कवि इस कथा को एक महान् विजेता और जन नायक के साहस और शौर्य की कहानी के रूप मे नही देखता, न उसका भाव उस यशलोलुप कलाकार का है. जो यह कहता है देखिए मै एक वाल्मीकीय रामायण, एक श्रीमद्भागवत के टक्कर की चीज लिखने जा रहा हूँ। उसके उद्गारों मे आस्थाएँ भरी है। उसके लिए राम कथा भवसरिता हरनी है, 'कलि कलुष विभंजनि, भव भंजनि, भ्रमभेक भुअंगिनि, विस्वभार भर अवल छमा सी, जीवन मुकुति हेतु जनु कासी'। अतएव उसके मन मे यह बात बनी रहती है कि मेरी कथा कुछ निराली सी, कुछ अलौकिक सी है ग्यानी जन ही इस कथा के असली रूप को पहचान लेंगे तो उसके रूप पर आश्चर्य भी नही करेंगे।

कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी नहिं आचरज करहिं अस जानी
राम कथा कै मिति जग नाहीं असि प्रतीत तिन्ह के मन माँहीं

एक रूपक द्वारा भी कवि कथा को अपने मन मे चित्रित करता है जिसके अनुसार उसकी कथा एक सरोवर है, एक विचित्र सरोवर, गुप्त, रहस्यमय, चमत्कार पूर्ण सरोवर जिसको हृदय के नेत्रो से देख कर और जिसमे गोता लगाकर कवि की बुद्धि निर्मल हो गयी, हृदय मे आनन्द भर गया, प्रेम प्रमोद की एक धारा उमड पडी।

भयउ हृदयँ आनन्द उछाहू, उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू।

चारों घाटों और सात सीढियों वाले इस गहरे सरोवर की सभी विशेषताओं का कवि यत्नपूर्वक वर्णन करता है प्रभु की अगुन अनन्त महिमा रूपी अगाध जल राशि का, राम सीय जस रूपी अमृतजल का, सत्कर्म रूपी भौरो का, ज्ञान वैराग्य विचार, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जप, तप, योग, यज्ञ रूपी जलचरों का, संतो की चारो ओर छाई हुई

अमराई का, क्षमा दया इन्द्रियनिग्रह के लता मण्डपों का, ज्ञान के फल का और इन सब के ऊपर प्रभुचरणरति रूपी रस का; दूसरे शब्दो मे वह प्राणतत्व जिनके कारण राम चरितमानस की कथा सजग हो उठती है और जिनमे स्वयं उसका मन भी रमा रहता है उसकी निगाह के सामने साकार हो उठते है। वह आग्रह के साथ कहता है कि इस मानस को देखने के लिए अन्तर्दृष्टि चाहिए।

अस मानस मानस चख चाही भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही

इस सुन्दर रूपक के खीचते समय स्वयं कवि की भी दृष्टि विशेष रूप से कथा भाग पर नही जाती बल्कि उन लोगो को जो केवल कथा के लिए इस सरोवर के निकट आना चाहते हो वह पहले से ही चेतावनी देता है।

अति खल जे विषयी वग कागा एहि सर निकट न जाहिं अभागा
संबुक भेक सेवार समाना इहाँ न विषय कथा रस नाना
तेहि कारन आवत हियँ हारे कामी काक बलाक विचारे
आवत एहिं सर अति कठिनाई राम कृपा विनु आइ न जाई

यह बात कि कवि का प्रधान उद्देश्य एक सर्वव्यापी सर्व शक्तिमान् सत्ता की प्रतीति को मूर्त्तिमान करना है और उन ढंगो को दिखाना है जिनमे प्रभु अपने को व्यक्त करते है, तुलसी के मानस को उसका विशिष्ट और स्वाभाविक काव्य रूप देती है और उसके प्रभाव को निर्धारित करती है। उसकी कृति का काव्यरूप न कथा निर्धारित करती है, न नमूने; उसकी कथा का रूप वह दिव्य दर्शन निर्धारित करता है जो उसने पाया है और जिसमे वह प्रभावित है। कथा मानस मे है परन्तु वह कवि के हाथ मे कच्ची मिट्टी के समान है जिसे वह अपना मनचाहा रूप देता है। प्रेम और आनन्द के स्रोतों को खोलने के प्रयास मे कथा को जो भी घुमाव फिराव देने की जरूरत हो, उसकी गति मे जो भी घुमाव फिराव, अवरोध लाने की जरूरत

हो, उस घुमाव फिराव, अवरोध को कवि किसी का मुँह ताके बिना ले आता है और सभी स्रोतों को प्रभु प्रेम के महासागर मे ले आकर मिला देता है। उसने अपने देशव्यापी पर्यटन मे देखा है कि देश की नदियाँ किस प्रकार टेढ़े मेढ़े रास्तो को पार करती हुई, घूमती फिरती महासागरों मे मिलती है। वह अपनी कथा के विविध भागों को भारतीय नदियों के रूप मे देखता है परन्तु वह केवल उनकी प्रगति और प्रवाह से ही प्रभावित नही है, उसकी दृष्टि इन सभी प्रवाहों के विश्राम स्थल पर ही जमी रहती है :

चली सुभग कविता सरिता सो राम विमल जस जल भरिता सो
सरजू नाम सुमंगल मूला लोक वेद मत मंजुल कूला
नदी पुनीत सुमानस नंदिनि कलि मल तृन तरु मूल निकंदिनि
श्रोत त्रिभिज समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल
सत सभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल

राम भगति सुरसरितहि जाई मिली सुकीरति सरजु सुहाई
सानुज राम समर जसु पावन मिलेउ महानद सोन सुहावन
जुग बिच भगति देवधुनि धारा सोहति सहित सुविरति विचारा
त्रिविध ताप नामक त्रिमुहानी 'राम सरूप सिंधु समुहानी

तीन धाराएँ इस कविता सरिता मे मिलती है। राम की सुकीर्त्ति रूपिणी सरयू, राम की भक्ति रूपिणी गङ्गा और राम के यश के समान महानद सोन। त्रिताप हरने वाली यह तिमुहानी नदी राम स्वरूप रूपी समुद्र की ओर अग्रसर है। स्पष्टतः सारी कथा का मानचित्र उसके मानस पटल पर चित्रित है। इस रूपक मे भी कवि अपनी कविता सरिता को 'कलिमल तृन तरु मूलनिकंदिनि', भक्ति विरतिदायिनी, त्रिविध ताप हारिणी मानता है और सभी धाराओं को 'राम सरूप सिंधु' की ओर जाती हुई देखता है।

कथा प्रबन्ध की ओर यदि कवि की दृष्टि होती तो अवश्य ही उसकी

कथा का रूप कुछ और ही होता। सप्त काण्डों मे न वह असमानता ही होती, न सम्वादो, प्रसङ्गो, स्तवनो, स्तोत्रों की वह अधिकता जो छन्द प्रबन्ध विधान के अनुचरो को इतनी खटकती है। प्रबंधात्मकता की दृष्टि से तुलसी की असफलता दिखलाने वाले आलोचकों का सुझाव है कि मानस का पहला और अंतिम काण्ड बहुत बडा हो गया है कवि को चाहिये था कि इन काण्डो को दो मे विभाजित कर देता। उनको यह बात भी खटकती है कि पहला और अन्तिम काड दार्शनिक विवेचनों मे बोझिल है और फलतः दार्शनिक पक्ष काव्य के मौलिक स्वरूप अर्थात् कथा पक्ष पर प्रबल हो जाता है। कुछ का मत है कि प्रथम कांड मे नाम रूप संबन्धी चौपाइयॉ और उत्तर कांड मे ज्ञान भक्ति सम्बन्धी विवेचन पीछे से जोड़े गए है अतः यह अंश कथा प्रवाह मे बाधक होते है और कवि की कृति के मौलिक स्वरूप से मेल नही खाते। यदि यह भक्ति और ज्ञान की चर्चा केवल कथा के प्रारम्भ और अन्त मे ही होती तो इन आलोचनाओं मे कुछ चमक भी आ जाती परन्तु कोई भी मानस का पाठक यह जानता है कि सभी काडो मे और बीच वाले काडो मे तो प्रचुर मात्रा मे ईश्वर, माया, भक्ति ज्ञान सम्बन्धी सामग्री भरी पडी है और यह कहना कि काव्य का मौलिक स्वरूप कथा वर्णन है वास्तविकता मे आँखे चुराना होगा। काव्य का मौलिक स्वरूप वही है जिस स्वरूप मे कवि स्वय अपने काव्य को देखता है और कवि के लिये सारी कृति का मूल्य यही है कि वह राम मे अनन्य प्रीति उत्पन्न करती है और यह अनन्य प्रीति ही त्रयतापों को हरने वाली है। तुलसी की कृति की सारी कीर्ति इसी मे है कि वह उसमे विश्वव्यापी तथ्यों को छूता है, अपनी अहता को एक व्यापक अनुभूति की तरङ्गों मे विलीन कर देता है, जन जन के हृदय की मॉग को मुखरित करता है, मानव हृदय को विध्वंसकारी आसुरी शक्तियों के चगुल से निकाल कर एक कल्याणकारी, प्रेममय, आयन्दमय शक्ति के संसर्ग मे लाता है। कवि की रुचि स्पष्टतः राम के उस रूप मे है जिसमे राम मानव की मोह और अज्ञान मे जकड़ी हुई आत्मा को मुक्ति देने वाले हैं।

मुक्तिदाता की वरद मुद्रा और मुक्त आत्मा की प्रणति मे ही उसकी दृष्टि बराबर गड़ी रहती है। यह एक महान कहानी है, मानव आत्मा की ईश्वरीय कृपा के नवप्रभात मे अंकुरित और पुष्पित होने की कहानी। ऐसी कहानी उस ढङ्ग से नही कही जा सकती जिस ढङ्ग से भौतिक जगत मे भौतिक स्तर पर होने वाली घटनाओं की कहानी सुनाई जाती है। सच पूछिये तो यह कहानी भौतिक स्तर पर घटी ही नही है। यह कहानी घटी है उन्मुख प्रेमियों के अन्तस्तल मे, शिव के हृदय मे, याज्ञ-वल्क्य के हृदय में, काकभुशुंडि के हृदय मे, तुलसी के हृदय मे। अतएव बाहर से उसमे चार घाट और सात सीढियाँ भले ही हो, परन्तु अपनी अन्तरात्मा मे वह एक विशाल प्रेम सङ्गीत है। उसके पृष्ठ मे जो प्रेरणा है वह हृदय के उद्गारों को व्यक्त करने की प्रेरणा है, कथा वर्णन द्वारा श्रोता का मनोरञ्जन मात्र करने की प्रेरणा नही।

राम चरित मानस के कथा भाग का सबसे बडा और सबसे महत्व-पूर्ण उपयोग यह है कि उसके द्वारा कवि की सूक्ष्म अनुभूतियां ऐसी सुगमता से, ऐसे प्रभावशाली ढङ्ग से, चित्रित हो उठती है, उन पर सरस प्रेम व्यापार और आत्मीयता का एक ऐसा रग चढ जाता है जिसमे निर्गुण तत्व अत्यन्त सगुण, सजीव और मनहर हो जाते है। कथा कहानी द्वारा नैतिक आदर्शो का प्रतिपादन तो ससार के धार्मिक साहित्य मे बहुत देखने को मिलेगा, परन्तु कथा द्वारा एक गहरी निजी आध्यात्मिक अनुभूति को साकार करने का जो चिरस्मरणीय साहित्यिक प्रयास मानस मे है वह एक ऐसा तरल, निहित परन्तु सफल प्रभाव है जो पाठक के बिना जाने हुए ही उसके हृदय मे घर कर लेता है।

लीला सगुन जो कहहिं बखानी सोइ स्वच्छता करइ मल हानी
प्रेम भगति जो बरन न जाई सोइ मधुरता सुसीतलताई
सो जल सुकृत सालि हित होई राम भगत जन जीवन सोई
मेधा महि गत सो जल पावन सकिलि स्रवन मग चलेउ सुहावन
भरेउ सुमानस सुथल थिराना सुखद सील रुचि चारु चिराना

इस भीतर ही भीतर मानस सुथल मे स्थिर हो जाने वाले जल से राम चरित मानस की कथा सिंचित है। यही उसको पुष्पित पल्लवित करता है।

कथा के महत्वपूर्ण क्षणों का सिंहावलोकन करते समय कवि उस वातावरण, उन मानसिक ऋतुओं का विशेष रूप से ध्यान करता है जिनकी वह क्षण सृष्टि करते हैं और इन चित्रो मे भी कवि की अपनी कृति सम्बन्धी भावनाये प्रतिबिंबित हैं।

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी समय सुहावनि पावनि भूरी
हिम हिमसैलसुता सिव व्याहू सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू
बरनव राम विवाह समाजू सो मुद मंगल मय ऋतु राजू
ग्रीषम दुसह राम बन गमनू पंथ कथा खर आतप पवनू
बरषा घोर निसाचर रारी सुरकुल सालि सुमगल कारी
राम राज सुख विनय बड़ाई विसद सुखद सोई सरद सुहाई

प्रत्येक मार्मिक क्षण कवि के मानस मे अङ्कित है, उसका रस, उसका स्वाद, उसकी विशिष्ट जलवायु। यह ऊपर से स्थूल रूप मे दिखाई देने वाली घटनाएं उसकी अन्तरात्मा में अनुभूतियो के रूप मे घटी है ऐसी अनुभूतियाँ जिन्होने उसे रससिक्त किया है अपने रंग मे रँगा है। इन मार्मिक क्षणों की जलवायु का वर्णन करके वह तुरन्त उस जल के गुणों की ओर जाता है जिसका उसने स्वयं पान किया है और जिसका सेवन करने के लिए वह सभी को आमन्त्रित करता है। उसका विश्वास है कि यह सद्यः फलदायक जल एक प्रकार का आध्यात्मिक कायाकल्प करने वाला जल है। घटनाओ और प्रसंगो से घूम कर उसकी दृष्टि उस आन्तरिक अनुभव की ओर जाती है जो उसकी कृति के मूल मे है।

आसति विनय दीनता मोरी लघुता ललित सु वारि न थोरी
अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी आस पियास मनोमल हारी
राम सुप्रेमहि पोखत पानी हरत सकल कलि कलुष गलानी
भव स्रम सोषक तोषक तोषा समन दुरित दुख दारिद दोषा

काम कोह मद मोह नसावन विमल विवेक विराग बढ़ावन
सादर सज्जन पान किये तें मिटहि पाप परिताप हिए तें
जिन्ह एहि वारि न मानस धोए ते कायर कलिकाल विगोए
तृषित निरखि रविकर भव भारी फिरहहिं मृग जिमि जीव दुखारी

स्पष्टत: कवि को कथा मे जो रुचि है वह प्रधानत· इस लिए कि वह भव भ्रम शोषक है और हृदय के पाप परिताप को मिटाने वाली है। यह बात उसकी कृति के काव्य रूप पर गहरा प्रभाव डालती है। इसके कारण उसकी कृति के वह अंश जिनमे आत्म निवेदन और आत्म समर्पण के भाव है विशेष रूप से जाग उठते है और दूसरे अंशों पर आधिपत्य करते है। यदि हम यह देख सके कि तुलसी की प्रतिभा एक ऐसे सृजनकारी कवि की प्रतिभा है जो अपनी अनुभूतियों के गुण स्वभाव के अनुकूल काव्यरूप स्वयं वनाता है; यदि उसकी कृति मे कथा वर्णन मात्र नहीं है, यदि काव्य रूपों के कृत्रिम कायदों की सीमाओ का अतिक्रमण करके वह ऐसे काव्य रूप का निर्माण कर सकता है जिसमे समग्रता और व्यापकता के साथ साथ तन्मयता और आत्म निवेदन के लिए भी पूरा अवसर हो, यदि उसका पहला और प्रधान उद्देश्य यह है कि वह जन मन मे यह चेतना जागृत कर दे कि अंतर और वाह्य सब राममय है, तो हमे कथा की वह असमानताएँ और अवान्तर प्रसंगों का समावेश जो साधारण दृष्टि से दोष मालूम होते है काव्य के स्वाभाविक और आवश्यक गुण जान पड़ने लगेंगे। तब हम देख सकेंगे कि वह क्यों ऊपर से असंगत और वेमेल लगने वाले प्रसगों को चुन चुन कर इकट्ठा करता है, क्यो परम्परागत कहानी मे अपनी कृति के अभ्यंतर की मांग के अनुकूल काट छांट करता है, बड़े बड़े प्रसंगों को एक पंक्ति मे ही संयेत मात्र देकर छोड़ देता है, एक ही कहानी को क्यों चार चार वक्ताओ से कहलवाता है, बीच बीच मे लम्बे लम्बे अध्यात्म विषयक सवादों को क्यों ले आता है, भक्ति और ज्ञान संबंधी विवेचनों को क्यों इतना महत्व देता है, कहानी के

प्रवाह को क्यों देर देर तक रोके रहता है। स्पष्टतः उसको वह भावभूमि तय्यार करनी है जिसमे प्रभु की महती कृपा और मगलमय विधान का सन्देश लोगों के हृदय मे बैठ जाय। अतएव वह सब कुछ राममय जान कर जीव मात्र की वन्दना करता है, नाम और रूप की व्याख्या करता है, सगुरण और निर्गुण के कृत्रिम विभेदो को मिटाता है, राम चरितमानस के वास्तविक रूप को चित्रित करता है, राम के अवतार के विचित्र और रहस्यमय कारणों को बताता है, प्रभु की कथा को दाशरथी राम की कथा मात्र समझने की भयंकर भूल का पार्वती मोह के लम्बे प्रसंग को लाकर निवारण करता है। यह सब करने की उस कवि को कोई जरूरत नही जिसको केवल दाशरथी राम की परम्परागत कहानी को रोचक साहित्यिक वेषभूषा मे प्रस्तुत करना है। परन्तु उस कवि के लिए जिसे जग मे राम की कृपा के अतिरिक्त कोई दूसरा तत्व दिखाई ही नही देता यह भावभूमि तय्यार करना परम आवश्यक है और इतना ही आवश्यक है रुक रुक कर उन सवादों और स्तोत्रों का लाना जिनमे राम की कृपा और भक्त की भावना के वास्तविक तथ्य खुल सकें और पाठक पर पड़ने वाले प्रभाव मे दृढता और गहराई आ सके।

मानस के काव्य रूप को समझने के लिए हमे यह बात सदैव ध्यान मे रखनी चाहिए कि उसका सच्चा प्रभाव हमारे ऊपर तभी पड़ सकता है जब हम उसको एक इकाई मे देखें और यह न भूलें कि वह एक अनुभव का उद्घाटन है एक कहानी का विस्तार नही। इस अनुभव की छाया कहानी की सभी घटनाओं पर है—जनकपुर के विवाह मण्डप पर, पंचवटी और दण्डकारण्य के भीषण भूभागों पर लंका की समरभूमि पर। काव्य का माध्यम ही ऐसा है कि वह कवि की मनोदशा को प्रतिविम्बित किए बिना नही रह सकता। मानस की प्रत्येक चौपाई का लगाव कवि की अनुभूति से है और उसकी कृति सही अर्थ मे उसके मन को प्रतिबिंबित करती है। नजदीक से देखिए

जो भक्तों के कल्याण के लिए संसार क्षेत्र मे हिलोरें लेती हैं और मोह निशा के अन्धकार को दूर करती है। चरित काव्य मे कथानक चरित्र से निकलता हुआ होना चाहिये। नायक के चरित्र मे निहित कुछ ऐसे गुण अवगुण होने चाहिए जिनसे परिस्थितियाँ रूप धारण करें। मानस में जो परिस्थितियाँ आती है वह चरित नायक पर प्रभाव न डाल कर स्वयं उसकी अपार अनुकम्पा की छाया मे उलझती सुलझती हैं।

परन्तु इसका यह अर्थ नही कि मानस एक वृहद रूपक है, कुछ इस प्रकार का दोहरा अर्थ रखने वाला रूपक जैसा जायसी के पद्मावत जैसे ग्रन्थो मे मिलता है। कुछ सदाशय महानुभावों ने मानस को एक महान रूपक मानकर उसके पात्रों, स्थानों, घटनाओं के रहस्यमय अर्थो का उद्‌घाटन करने की चेष्टा की है। उनके अनुसार अयोध्या पंचकोश है, राम ज्ञान है, लक्ष्मण विवेक, भरत वैराग्य, सीता शान्ति, रावण अज्ञान, हनुमान सत्संग और रामायण शायद एक बडा भारी गोरख धन्धा। इन कुजियो के प्रकाश मे मानस की कथा पढिए उसकी सारी सरसता, उसकी सारी भावभूमि, उसकी सारी अंतर्योजना, उसका सारा हृदय को द्रवीभूत, रससिक्त करने वाला गुण काफूर हो जायगा। एक बार आपके मन मे बैठ गया कि राम और कुछ नही ज्ञान है, तो कवि का आत्मविभोर हो कर राम के मुख छवि का वर्णन करना

विकट भृकुटि कच घूंघरवारे नव सरोज लोचन रतनारे
चारु चिबुक नासिका कपोला हास विलास लेत जनु मोला

एक निरर्थक शब्द योजना सी जान पड़ेगी। भावो के घात प्रतिघात, प्रेम और भक्ति के व्यापार के सहस्रों पक्षों मे कोई रस ही नही रहेगा। परन्तु इन पक्षो मे ही मानस के असली तत्व है। इन तत्वो को एक ओर रख कर केवल प्रतीकों के पीछे पड़ कर कोई उसके असली स्वरूप और प्रभाव को नही पा सकता। जायसी की कृति के किसी कोने मे तो एक कुंजी मिल सकती है जिसके सहारे पद्मावत के गूढ अर्थ का रहस्य खुल सकता है

परन्तु तुलसी ने अपनी कृति मे न तो ऐसी कोई कुंजी रक्खी है न जो कुजियाँ आलोचक बना कर लाते है वह उसके काव्य मे बैठती है।

अतएव तुलसी की महानकृति के काव्य रूप को पहचानना अनेक दृष्टियो से उतना ही आवश्यक है जितना उस परम्परा की उस भीड़ से निकाल कर अलग करना जिसमे वह अक्सर खो जाती है। मानस के वाहरी ढाँचे और कुछ पूर्ववर्त्ती ग्रन्थो के रूप मे वाह्य दृष्टि से एक भुलावे मे डालने वाली समानता है। विशेष रूप से भागवत् और मानस म तो अनेक बातो मे समानता है। दोनो ग्रन्थ सम्वादों मे चलते हैं। दोनो के आरम्भ मे पापियो के अत्याचार और भयत्रस्त जनसमुदाय की करुण दयनीय दशा की चर्चा है। दोनों की समाप्ति लम्वे दार्शनिक आध्यात्मिक विवेचनो से होती है। छोटी वातो, जैसे ग्रन्थ के अन्त में विषय सूची देने या ग्रन्थ का माहात्म्य वर्णन करने मे विचारो का साम्य भी दोनो ग्रन्थों मे पाया जाता है। वैसे तो यह अक्सर कहा जाता है कि तुलसी कृत रामायण का आधार वाल्मीकि रामायण है परन्तु काव्य रूप की दृष्टि से समानता तो भागवत् और मानस मे ही अधिक है। रामचरित मानस और अध्यात्म रामायण की रचना मे तो ऊपर से ऐसी समानता है जैसे एक की कथा सामने रख कर दूसरे की कथा लिखी गई हो। परन्तु मानस की काव्यात्मा पहचानने के लिए यह आवश्यक है कि हम थोड़ी देर के लिए नामो और नमूनो को भूलकर यह देखें कि राम कथा मे तुलसी की रुचि किस प्रकार के लेखक की है और वह कथा को किस धरातल पर चलाता है? क्या उसकी रुचि एक परमात्म तत्व का निरीक्षण करने वाले वेदान्ती की हे? क्या वह राम की कहानी की घटनाओ मे विचित्रता लाकर, साहस और शौर्य का बखान करके रचना के वर्णनात्मक पक्ष को हृदयग्राही बनाना चाहता है? क्या वह अपनी कविता मे एक युग की मान्यताओ, महत्वाकाँक्षाओं, आस्थाओं को मुखरित करना चाहता है? इन सभी तत्वो की झलक आप चाहें तो तुलसी की कृति मे पा सकते है परन्तु उसका हृदय तो उस चमत्कार के रहस्योद्

घाटन मे है जो द्वन्दो को मिटाता है, उस भावभूमि के तैयार करने मे लगा है जिसके द्वारा वह अखिल जगत् के केन्द्र मे स्थित विश्वात्मा को सरस, सुन्दर, मधुर, करुणामय मानवीय गुणों से सम्पन्न बना सके। यही उसकी कृति का रस विशेष है और यही रस विशेष उसकी कृति का रूप निर्मित करता है। अपने महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह कुछ नही उठा रखता। काव्य, संगीत, ज्ञान चर्चा सभी की सहायता वह लेता है। उसका रामरसमग्न आत्मविभोर मन स्वाभाव से तो आत्म निवेदन मे रमता है। लम्बी कथा वर्णन के प्रयास से थक कर वह पग पग पर रुक भी जाता है। किसी न किसी बहाने से वन्दना, प्रार्थना स्तुति करके अपये हृदय के उद्गारों को व्यक्त करता है। कभी कभी भक्ति रस और राम नाम की महिमा समझाने के लिप ज्ञान चर्चा भी करता है। परन्तु जब आलोचक उसकी कृति को अपनी कृत्रिम किताबी कसौटियों पर जाँचते है तो उन्हें इन विविध अशों का समावेश खटकता है। मानस का निचोड़ तो मानस की प्रारम्भिक चौपाइयो और उत्तर काण्ड में है परन्तु यही अंश उन्हे अनावश्यक जोड़-गाठ जैसे दिखाई देते है। उन्होने महाकाव्य के गुणों के विषय मे पढ़ा है कि महाकाव्य की कथा मे प्रवाह होना चाहिये और प्रार्थनाएँ और विवेचनाएँ प्रवाह मे बाधक होती है। अतएव इन आलोचकों की परीशानी तब देखने लायक होती है जब वे मानस का काव्यरूप निर्धारित करने बैठते है। मानस की भागवत्, वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्म रामायण मे समानता तो स्थापित कर दी। परन्तु उसको रक्खा किस वर्ग मे जाय ? वह धार्मिक चरित काव्य है या पौराणिक ? प्रतीकात्मक काव्य है या वीरगाथात्मक या धार्मिक-पौराणिक-प्रतीकात्मक-वीरगाथात्मक ? बरबस अंगरेजी साहित्य से परिचित पाठक को शेक्सपियर के हैमलेट की वह व्यंगपूर्ण पंक्तियाँ याद आ जायँगी जिनमे कुछ नट नाटकों का वर्गीकरण करते है— दुःखान्त, सुखान्त, ऐतिहासिक, ग्राम्य, ग्राम्य-सुखान्त, ऐतिहासिक-ग्राम्य, दुःखान्त ऐतिहासिक; दुखान्त-सुखान्त-ऐतिहासिक-ग्राम्य !

तुलसी की कृति को भी एक विशेष नाम देने, एक विशेष वर्ग मे रखने से इसी प्रकार की कठिनाइयाँ सामने आती है । क्या वह प्रतीकात्मक काव्य है ? प्रतीकों के ढूंढने के प्रयास मे दो चार कदम चल कर ही प्रयास की व्यर्थता प्रगट हो जाती है। क्या वह मूलतः धार्मिक कृति है ? धार्मिक प्रश्नों की समीक्षा तुलसी प्रायः दर्शन के स्तर पर करता है। कुछ बातों को मानता है कुछ को निज अनुभव के आधार पर अपने नम्र मृदुल ढङ्ग से नामंजूर करता है, अधिकतर वाह्य विषमताओ को भेद कर विरोधी दिखाई देने वाली विचारधाराओं मे समन्वय स्थापित करता है, देवी देवताओं के स्वार्थ, पदलिप्सा पर व्यङ्ग करता है। यह मनोवृत्ति उन लोगो की मनोवृत्ति नही है जिन्हे हम आम तौर से धार्मिक कहते है।

अतएव मानस को एक धर्म ग्रन्थ कह कर हम पाठकों को वह संकेत नही देते जो काव्य रूप निरूपण का असली अभिप्राय है।

मानस के काव्य रूप के विषय मे सबसे अधिक प्रचलित धारणा यह है कि वह एक महाकाव्य है और यदि हम एक महान् पाश्चात्य आलोचक वाल्टेयर का यह कथन मान लें कि महाकाव्य नाम के अधिकारी ऐसे ही काव्य ग्रंथ है जिन्हें समाज व्यवहारत· महाकाव्य मानता है तो हम रामचरित मानस को संसार के सभी महाकाव्यों मे सबसे अधिक सर्वमान्य महाकाव्य कह सकते है। परन्तु साहित्य के आचार्य ऐसी व्यापक और अशास्त्रीय परिभाषा को मानने को शायद ही तैयार हों। उन्होने तो महाकाव्य की विशेषताओं की तालिकाएँ बनाई है और उन तालिकाओं की परीक्षा मे जो कृतियाँ उत्तीर्ण होगी उन्ही को आचार्य और उनके उत्तराधिकारी आलोचक महाकाव्य का प्रमाणपत्र देगे । इन आचार्यो के अनुसार महाकाव्य नाम के अधिकारी वही काव्य ग्रंथ है जिनका कथानक लम्बा हो, जो नाटकीय पञ्च संधियो से युक्त हो, जिसकी शैली अलंकृत और उत्कृष्ट हो, जो एक सर्गबन्ध सुखान्त काव्य हो (काव्यालङ्कार);

सर्ग भी थोड़े नही कम से कम आठ या आठ से अधिक तो होने ही चाहिये (साहित्यदर्पण)। वर्णन के विषय में भी विधान हैं, नायक गुण-वर्णन नायक कुल वर्णन, नगरी वर्णन इनका भी होना महाकाव्य मे आवश्यक है। परन्तु यह तो स्पष्ट है कि इन 'आवश्यक' गुणों के होते हुए भी यह आवश्यक नहो कि कोई रचना महाकाव्य के कोटि की रचना हो जाय। कोई महाकवि आवश्यक गुणो को सामने रख कर महाकाव्य की रचना करने नही बैठता। हाँ आलोचक अवश्य महाकाव्यों को सामने रख कर महाकाव्य के आवश्यक गुणो को गढते है।

सच तो यह है कि उच्चकोटि के काव्य की आत्मा की पकड परि-भाषाओं के सहारे नही मिल सकती। महाकाव्य की आत्मा आकार प्रकार मे नही है वह कवि की प्रेरणा, प्रतिभा, उद्देश्य की महानता मे है, उसकी महानता दृटिकोण की व्यापकता मे, उस अन्तर्ज्योति मे है जिसके प्रकाश मे कुछ भी महत्वहीन और असारगर्भित नही है, सब कुछ एक महान चेतना की धारा मे तरङ्गित है। यह दृष्टिकोण, ऐसी अन्तर्ज्योति यदि कवि मे है तो वह सभी नियमों का उल्लंघन करके एक ऐसे महाकाव्य की सृष्टि कर सकता है जिसके वर्ग के विषय में मतभेद हो सकता है परन्तु जिसकी कोटि के विषय मे कोई मतभेद नही हो सकता।

तुलसी के रामचरित मानस मे साहित्य के आचार्यो के बताए अनेक लक्षण है, परन्तु उसकी महानता गिने गिनाये नियमों के पालन मे नही है। उसकी अन्तरात्मा तो उस दिव्य अनुभूति मे, जीवन के रहस्य के उस उद्घाटन मे है जिसके आलोक मे मनुष्य को एक नया आश्वासन, एक नया बल, संसार के द्वन्दों और संघर्षो के ऊपर उठ ने की एक नई शक्ति मिलती है। मानस के पीछे जो प्रेरणा, जो अनुभूति है और उस प्रेरणा और अनुभुति मे जो प्राणवत्ता, सृजनकारी शक्ति है वह निस्सन्देह महती है, विराट है, व्यापक है। और इन विशेषताओं के होते हुए इससे कुछ नही होता जाता कि उसमे सर्गों की संख्या आठ है या सात, उसकी

व्यवस्था विधि विहित पंचसंधियों से युक्त है या मुक्त। अतएव रामचरित मानस की पूर्व परम्परा और उसके काव्यरूप पर विचार करते समय हमे सतर्क रहना चाहिए कि हम परम्पराओं और काव्य रूपो की खोज मे कृति के असली स्वरूप की पकड तो हाथ मे नही जाने दे रहे है क्योंकि ज्यों ही हम तुलसी की कृति को किसी परम्परा या परिभाषा से बाँध देते है त्योंही हमारा दृष्टिकोण स्वतन्त्र और निष्पक्ष नहीं रह जाता हमारी धारणा यह होने लगती है कि तुलसी कुछ हेर फेर के साथ परम्परागत कृतियों की एक अनुकृति तैयार करने मे लगा है और इस लिये जो मापदण्ड उन कृतियों के लिए उपयुक्त है वही मानस पर भी लागू किये जा सकते है। इस मनोवृति के फलस्वरूप तुलसी की कृतियों के मूल्याङ्कन मे जितना दिशाभ्रम हुआ है उतना शायद ही किसी एक अन्य कारण से हुआ हो। बजाय कवि मे सीधे सम्पर्क मे आने के हम अपने को अनेक टेढ़े मेढ़े रास्तों मे खो देते है।

तुलसी के सामने अनेक नमूने थे परन्तु उसका दृष्टिकोण पुराने कथा-कारो से, अपनी प्रेरणा के स्रोतों और काव्य रचना के उद्देश्यों मे इतना अलग है, उसकी अनुभूति इतनी विशिष्ट है कि उसकी रामायण और दूसरो की रामायण मे आकाश पाताल का अन्तर आ जाता है।

नाना भाँति राम औतारा रामायण शत कोटि अपारा
कलप भेद हरिचरित सुहाये भाँति अनेक मुनीसन्ह गाये

उसको स्वयं भी इस बात का ज्ञान है कि जो कथा वह कह रहा है एक विचित्र, अलौकिक कथा है।

कथा अलौकिक सुनहिं जे ज्ञानी नहिं आचरजु करहिं अस जानी
राम कथा कै मिति जग नाहीं असि प्रतीति तिन्हके मन माँहीं

इस कथा की कोई मिति नही है और जैसे अवतार के कारणो के विषय मे वैसे मानस के रूप के विषय में 'इदमित्थं कहि जाइ न सोई'।

संसार के महाकाव्यों मे रामचरित मानस की एक अपनी कोटि है। वह घटनाओ के विस्तार और वाह्य आकार प्रकार के कारण महाकाव्य नही है; उसके महाकाव्य और महान् काव्य होने के प्रधान कारण है, वह अनुभूति जिससे वह अनुप्राणित हे वह एकरसता जिसमे वह सुव्यवस्थित है, वह प्रेरणा जो उसके पीछे क्रियाशील है। इस दृष्टिकोण से देखिये तो यह धारणा अत्यन्त भ्रमात्मक लगेगी कि उसकी रचना किसी काव्यरूप को सामने रखकर की गई है। सच बात तो यह है कि विंभिन्न काव्य रूपों के अनेक गुणों मे मण्डित होती हुई भी उसकी रचना अपना रूप स्वयं धारण करती है। जहां उसमे एक महाकाव्य की गरिमा, विशदता, लोक प्रियता है वहाँ ऐसी भावशीलता, तन्मयता और एकता भी जैसी उच्चकोटि की गीतात्मक कविता के बाहर देखने मे नही आती। तुलसी के लिए कला और काव्य रूप ही सब कुछ नही है। उसका मुख्य उद्देश्य है जीवन और अपने मुख उद्देश्य मे सफलता प्राप्त करने के लिए वह कला और काव्यरूप संबन्धी प्रश्नो को अपनी जगह पर रखता है।

———

दसवाँ अध्याय

मानस का रस विशेष

राम चरित जे सुनत अघाहीं रस विशेष तिन्ह जाना नाहीं

रामचरित मानस के साहित्यिक पक्ष का समुचित अध्ययन तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ मे ही हो सकता है। वर्त्तमान ग्रन्थ मे हमारा उद्देश्य तुलसी काव्य के उन्ही पक्षों का दिग्दर्शन कराना है जो कवि के अन्तर्जगत को प्रकाशित करते है।

तुलसी की कविता का सबसे बडा चमत्कार इसमे है कि कवि एक सूक्ष्म अनुभूति को उपयुक्त वातावरण तय्यार करके, रस विशेष की सृष्टि करके, ऐसी सुगम, सरल स्वस्थ अनुभूति बना देता है कि उसके ग्रहण करने के लिए किसी विशेष साहित्यिक प्रशिक्षण या भारी विद्वत्ता की आवश्यकता नही। उसकी कृति मे सुरक्षित संदेश का मानव मन की एक सहज पुकार से ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध है कि वह हृदय मे अपने आप गूंजने लगता है—'मुनि मन अगम सहज माई बाप सो'।

काव्य और संगीत मे ही वह अलौकिक शक्ति है जो अनुभूतियो को सजो कर रख सकती है। तुलसी ने इस सच्चाई को देखा था। काव्य का सीधा सम्बन्ध हृदय से है मस्तिष्क ने नही, काव्य भावना प्रधान है तर्क प्रधान नही, काव्य सृजनकारी है विश्लेषणात्मक नही, काव्य की भाषा प्रतीकात्मक है, वह कसे बँधे, पिटे पिटाये परम्परागत अर्थो की जंजीरों मे जकडी हुई नही। काव्य अपना संसार स्वयं बनाता है जिसमे प्रवेश करके मनुष्य उन सस्कारो और कुतर्कों से मुक्त हो जाता है जो स्थूल भौतिक बौद्धिक स्तर पर हमारे मन पर छाए रहते है। तुलसी का काव्य संसार तो निस्सन्देह एक मन्त्र शक्ति से संचारित संसार है। हमारी

साधारण चिरपरिचित, पिटीपिटाई सृजनकारी तत्वों से विहीन, व्यवहारिक बुद्धि इस रहस्यमय संसार के जलवायु के लिये सर्वथा अनुपयुक्त है। वह भावुकता, वह भौतिक जगत् के कार्यकारणो का अतिक्रमण करने वाली सहज अन्तर्दृष्टि, वह रसमग्नता जिसमे तुलसी की कविता डूबी हुई है हमारे मन को तब तक नहीं छू सकती जब तक हम कहानी, चरित्र, परम्परा और कृत्रिम मापदण्ड के चक्रव्यूह से बाहर निकल कर उस प्रेम सगीत की लय मे न बँध जाएँ जिसका तुलसी गायक और कवि है।

काव्यमय जगत का एक अपना वातावरण होता है जो उस भौतिक संसार से सौ कोसों दूर होता है जिसके हवा पानी मे अनास्था, अविश्वास, और कुतर्क का साम्राज्य होता है। इस विचित्र संसार की पहली माग यह है कि हम उस अविश्वास और विरोध को ताक पर रख दें जिसके हम दैनिक जीवन मे अभ्यस्त होते है। इस ससार का वातावरण मानव हृदय की वास्तविकता से साक्षात्कार की मौलिक माँग के लिए ऐसा अनुकूल, उसके सूक्ष्म आभ्यन्तरिक अनुभूतियों को स्पष्ट, सजग और क्रियाशील बनाने मे ऐसा सहायक, स्वयं अपने मे सृजनकारी गुणो से ऐसा संयुक्त होता है कि जब तक मनुष्य इस काव्यमय जगत मे रहता है वह अपनी विवशताओ असमर्थताओ, आश्रयहीनताओं को भूला रहता है, उसको ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने असली घर मे है जहाँ का प्रत्येक सकेत उसके हृदय मे घर कर लेता है, जहाँ के प्रत्येक क्षण मे यह भावना बनी रहती है कि हम कम से कम इस क्षण मे तो वह हीन, वहिष्कृत, परित्यक्त व्यक्ति नही है जो हम अपने को समझे हुए थे वरन एक ऐसे परिवर्त्तनकारी, सृजनकारी अनुभव के भागदार है जिसकी अनंत संभावनाएँ है। काव्य का यह द्रवित करके परिष्कृत करने वाला गुण जिस प्रचुर मात्रा मे तुलसी मे है वह साहित्य मे आप अपनी मिसाल है। कोटि-कोटि हृदय जो मानस की चौपाइयों और विनय के पदो से द्रवित और रससिक्त हो जाते है तुलसी की कविता के इन गुणों के साक्षी हैं।

अरसिक, आस्थाहीन व्यक्ति के लिए तुलसी के काव्य जगत् मे प्रवेश कर सकना ऐसा ही असम्भव है जैसे, एक महान वाक्य के शब्दो मे, ऊँट का सुई के छेद से होकर निकल आना ।

यह रससृष्टि कवि कैसे करता है ? और इस विशेष रस का आस्वादन हम कैसे कर सकते है ? इस रस का स्वाद सहृदय साधारण पाठक को भी मिलता है और असाधारण विद्वान को भी जब वह अपनी विद्वत्ता को अलग रख कर उसमे मग्न होता है । सचपूछिये तो यह रसास्वादन भी एक सृजनकारी क्षमता है और टीका टिप्पणियां इस रसास्वादन में विशेष रूप मे सहायक नही होती । परन्तु यह भी न भूलना चाहिये कि उन चीजो पर जोर देकर जो तुलसी के काव्य जगत् के लिये विदेशी हैं हम अर्थ का अनर्थ करते है और रस मे विष घोल देते हैं । इसलिये उन दिशाओं की पहचान तो जरूरी ही है जिनमे कवि की कृतियों का वास्तविक रस है और इस सम्बन्ध मे सब से पहले उस वातावरण से परिचित होना चाहिये जिसमे तुलसी की कविता फलती फूलती है

तुलसी के रामचरितमानस का विशेष वातावरण आशा आश्वासन और महान् सम्भावनाओ का वातावरण है । कथा के प्रारम्भ ही मे हम देखते हैं कि पीडित, त्रस्त आत्माएँ एक पुनर्जागरण, एक नवप्रभात, एक नवजीवन, मुक्ति के एक नवसन्देश के लिए व्याकुल और लालायित है । त्रस्त, संतप्त, भयग्रस्त पृथ्वी गौ का रूप धारण करके ब्रह्मा के पास जाती है ।

सुर मुनि गंधर्वा मिलि करि सर्वा गे विरंचि के लोका
सँग गो तनुधारी भूमि विचारी परम विकल भय सोका
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई
जा करि तैं दासी सो अविनासी हमरेउ तोर सहाई
धरनि, धरहि मन धीर, कह विरंचि हरि पद सुमिरु
जानत जन की पीर, प्रभु भंजिहिं दारुन विपति

सभी देवता चकराए घबराए एक दूसरे से कहते हैं कि कहाँ जायँ किससे जाकर फरियाद करें। कोई कहता है चलो बैकुण्ठपुरी चलें तो किसी की राय होती है कि प्रभु का पता तो क्षीर सागर का है वहाँ चला जाय। इस परिस्थिति मे शिव जो राम रहस्य के अधिकारी व्याख्याता है मुक्ति का वह सन्देश सुनाते है जो तुलसी का भी सन्देश है और मानस के विशिष्ट वातावरण की सृष्टि करता है :

हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम ते प्रगट होंइ मैं जाना
देस काल दिसि विदिसहु माहीं, कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नहीं
अग जग मय सवरहित विरागी, प्रेमते प्रभु प्रगटइँ जिमि आगी

और इस आश्वासन को पाकर जो जय जय कार होती है,

,जय जय सुरनायक जय सुख दायक प्रनतपाल भगवंता,

वह सभी के हृदय मे गूँजने लगती है। सभी के हृदय मे स्वयं प्रभु की यह 'गगन गिरा गंभीर' कि 'हरिहउँ सकल भूमि गरुआई' घर कर लेती है और पृथ्वी सहित सभी के मन को विश्राम मिलता है। यह आवश्वासन और शान्ति का वातावरण काव्य के प्रारम्भ मे ही नही है। ज्यों ज्यो कहानी का विकास होता है प्रभु के आश्वासन के अर्थ संकेत खुलते जाते है और उस ज्योति का भी प्रसार होता है जो प्रेम द्वारा प्रकट होती है।

सब को अपने हृदय में इस ज्ञान की झलकियाँ मिलने लगती हैं कि एक मुक्ति दाता का अवतरण हुआ है जो बाधाओं से, कारागारो से, जड़ता अविश्वास से हमे मुक्ति दिलाने वाला है। विश्वामित्र की विघ्न बाधाएँ, अहिल्या का कारागार, ताड़का की जड़ता, परशुराम का संदेह एक एक कर के सभी टूटते हैं सभी को नव जन्म मिलता है सभी को यह प्रतीत होता है कि एक मुक्त दायिनी शक्ति उनकी जड़ता के बन्धन खोल रही है। केवल परशुराम ही की नही सभी के हृदय की यह पुकार होती है

राम रमापति करधन लेहू-खैंचहु चाप मिटै संदेहू ।

राम विवाह तक तो आशा आनन्द का वातावरण जैसे उमड़ पड़ता है ।

मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस एहि भाँति ।
उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति ॥

परन्तु अयोध्या काण्ड के वियोग और विषाद के वातावरण के भीतर भी भरत की अविकल प्रीति की मंजुल मरीचियाँ चारो ओर फैलकर विषाद के बादलों को चीरती हुई मनुष्य के मन को आलोकित और आत्म विभोर कर देती है ।

अयोध्या काण्ड कहानी की दृष्टि से चाहे जितना वियोग और विषाद का काण्ड हो परन्तु तुलसी ने जान बूझ कर उसको भरत के त्याग का और मानव जीवन के दुख दाह को दूर करने वाली अनन्यता का काण्ड बना दिया है क्यों कि राम वनगमन की असली भावभूमि यही है कि हम अपनी छोटी मोटी आसक्तियों और लालसाओ को एक उच्चतर प्रेम और चेतना के प्रकाश मे भूल जाएँ । इस नवीन चेतना के प्रकाश मे सभी अपने वैयक्तिक दुख दर्द को भूल कर देखने लगते है कि उनकी अपनी असुविधाएँ कुछ भी महत्व नही रखती प्रेम समता और शान्ति के उन महान उद्देश्यो के आगे जिनकी पूर्ति के लिए राम अयोध्या का परित्याग करते है ।

लक्ष्मण कहते है

जहँ लगि जगत सनेह सगाई, प्रीति प्रतीति निगम निज गाई ।
मोरे सबइ एक तुम स्वामी, दीन बंधु उर अंतरयामी ॥

सीता जी की तन्मयता को देख प्रभु स्वयं कहते है ।

नहिं बिषाद कर अवसरु आजू-वेगि करहु वन गवन समाजू

इस आत्म विस्मृति और आत्म समपर्ण के स्वर्णिम वातावरण मे

कैकेयी की क्रूरता और मंथरा की कूटिनीति का काला रंग अपने आप धुलकर विलीन हो जाता है और उस नव जागृति और नवोदय की छटा निखरती ही आती है जो अयोध्या काण्ड के दृश्यों की वास्तविक छटा है। अयोध्या काण्ड की वास्तविक छटा है लक्ष्मण की इस नवचेतना मे कि

जानिअ तबहिं जीव जग जागा-जब सब विषय विलास विरागा
होइ विवेकु मोह भ्रम भागा-तब रघुनाथ चरन अनुरागा
सखा परम परमारथु एहू-मन क्रम बचन राम पद नेहू।

वह दिखाई देती है केवट के इस उद्गार मे

नाथु आजु मैं काह न पावा-मिटे दोष दुख दारिद दावा।
बहुत काल मैं कीन्ह मजूरी आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी ॥

इस रसानुभूति का उल्लास भारद्वाज जैसे विज्ञ, तपस्वी मुनि के शब्दों मे भी गूँज रहा है।

आजु सुलभ तपु तीरथ त्यागू-आजु सफल जप जोग विरागू।
सफल सकल सुभ साधन साजू-राम तुम्हहि अवलोकत आजू ॥

वाल्मीकि की इस अनुभूति में कि

सोइ जानत जेहि देहु जनाई-जानत तुम्हहि तुम्हई होइ जाई।
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन-जानहिं भगत भगत उर बंदन ॥

और उसकी एक अत्यन्त मनोरम झांकी दिखाई देती है उस तेज पुँज तापस के मिलने मे जो प्रभु के दर्शन पाकर

पियत नयन पुट रूप पियूषा-मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा।

भरत को तो जो शान्ति और निश्चिन्तता राम के दर्शन से मिलती है वह तो 'राम भगति रससिद्धि' का मानो मूल मंत्र हो।

पुरजन परिजन प्रजा गोसांई-सब सुचि सरस सनेहँ सगाई।
राउर बदि भल भव दुख दाहू-प्रभु बिनु लागि परम पद लाहू ॥

यह अगाध प्रेम जिसमें प्रभु के लिये भवदुख की ज्वाला मे भी जलना अच्छा है और प्रभु के बिना परम पद का लाभ भी व्यर्थ है उस आशा विश्वास की चरम सीमा है जिसकी जलवायु मे मानस की सारी कहानी फैलती फूलती है और जिसके स्पष्ट संकेत सभी काण्डो मे मिलते है।

अरण्य काण्ड मे प्रभु के अरण्य मे पैर रखते ही आशा, विश्वास और सहज स्नेह की जैसे एक दरिया उमड़ पड़ती है। बड़े बड़े धीर गंभीर ऋषियों के लोचनो से जल बहने लगता है। अत्रि, अगस्त्य, शरभंग, जटायु, शवरी सभी अपने को, प्रभु से अपने संबन्ध को, प्रभु के चरणो मे समर्पित जीवन की सार्थकता को जैसे विद्युत की एक कौंध के आलोक मे पहचान लेते है

मम दरसनफल परम अनूपा जीव पाव निज सहज सरूपा।

प्रभु के शवरी को दिये गए यह आशीर्वचन दण्डकारण्य और जगत रूपी अरण्य के सभी उन्मुख हृदयों को आशा का एक स्वर्णिम-सन्देश देते है।

जब कथा किष्किन्धा और सुन्दरकाण्ड मे प्रवेश करती है और निराशा और अन्धकार की शक्तिया प्रेम और प्रकाश की शक्तियों से लोहा लेने को आगे बढ़ती है तो प्रभु के सन्देश का आकर्षण, उसकी जीवन को संगठित, सार्थक, आशापूर्ण बनाने की शक्ति अपने वास्तविक रूप मे दिखलाई पड़ती है। राम के तरकस के जो तीर इन काण्डो मे सबसे गंभीर घाव करते है वह वे तीर नही है जो निशाचरो के हृदयों को वेवतें है; निशाचर तो पहले ही से मोह और माया के शिकार है, राम के वाण केवल उन्हें मोह और माया के बन्धनो से मुक्ति देते हैं। इन काण्डों मे राम के आयुध है सद्भावना, प्रेम, मैत्री जिनके द्वारा वे साधनों से विहीन, सरल हृदयों मे आशा का संचार करते हैं उन्हे अभय देते हैं उनमे ऐसी उमंग, ऐसा उत्साह भरते हैं कि वह आत्मविभोर हो कर कहते है 'राम काज कीन्हे विना मोहिं कहाँ विश्राम'।

इन काण्डों की सारी भाग दौड़ सारे घन घमंड घन गर्जन के केन्द्र में स्थित प्रभु का जो सन्देश है वह है राम और राम चरित मानस का अन्यतम सन्देश

जौ नर होइ चराचर द्रोही आवै सभय सरन तकि मोही
तजि मद मोह कपट छल नाना । करउँ सद्य तेहिं साधु समाना
जननी जनक बंधु सुत दारा । तन धनु भवन सुहृद परिवारा
सबकै ममताताग वटोरी । मम पद मनहिं बाँध वरि डोरी
समदरसी इच्छा कछु नांही । हरष सोक भय नहिं मन माहीं
अस सज्जन मम उर बस कैसे । लोभी हृदय वसइ धनु जैसे

चराचर द्रोही दुरात्मा के लिये भी इस सन्देश मे जो आश्वासन है वही वह शक्ति है जो राम दल को संगठित करती है और उसमे भौतिक दृष्टि से एक अत्यन्त दुस्साध्य और प्राय: असम्भव कार्य मे सहयोग देने को प्रेरित करती हैं ।

लंकाकाण्ड मानस का सब से अधिक अन्धकारमय, विषाद मय, दु:स्वप्नमय परिच्छेद है । माया, छल, कपट, हिंसा, कुतर्क, द्वेष और घृणा का निविड़ तम सारे वातावरण पर छाया हुआ है । पशुता और अहंकार के दानव इस अन्धकार मे प्रेम और मैत्री के संदेशों पर अट्टहास करते हैं । वाह्य दृष्टि से उनका वैभव उनके शस्त्र आतंक उत्पन्न करने वाले है परन्तु क्या यह अन्धकार और आतंक क्षण भर के लिये भी हमारे मन में यह मोह या डर उत्पन्न करता है कि रावण विजयी हो जायगा ? क्या काण्ड के आरम्भ से ही हम नही देख लेते कि निशाचरी सेना के किलो मे कितनी दरारे है ? इन किलों के जो कोई भी सन्तरी गिरते हैं यह जानते है कि अब उनकी निशाचरता का अन्तकाल आ गया । रावण के घर मे ही उस के पुत्र, उसके भाई, उसके मंत्री, उसकी पत्नी सब जानते हैं कि यह असमान शक्तियों की लड़ाई है ।

काल रूप खल बन दहन गुनागार घन बोध।
सिवविरंचि जेहि सेवहि तासों कवन विरोध ॥

वे लड़ते है इसलिये नही कि उन्हे अपने ऊपर विश्वास है बरन् इस लिए कि वे अपनी निशाचारी प्रवृत्तियों को रोक सकने मे असमर्थ है। स्वभावत: इस काण्ड की विषम परिस्थितियों के भीतर भी आशा विश्वास और अन्तिम विजय की रजत रश्मियां बराबर झलकती रहती है और प्रेम और सत्य के सेनानी घायल भले ही हो जॉय हताश नही होते। सारे रण क्षेत्र के ऊपर प्रभु का वरद हस्त एक आशीर्वाद के समान फैला रहता है। मन्दोदरी समझती है कि वह कौन सी शक्ति है जो लंका मे उतरी है

मुनिवर जतनु करहिं जेहिं लागी। भूपराजु तजि होहिं बिरागी।
सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया ॥

बड़े बड़े राक्षस सेनापति जिनका जीवन ही पाप कर्मो मे बीता रणक्षेत्र मे प्राण त्याग करते है और राम उनको भी अपना परम पद देते है।

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जॉचत जोगी।
उमारामम्रृदुचित करुनाकर। वयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर
देहिं परम गति सो जियॅ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी।
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमन्द ते परम अभागी

मेघनाद, कुंम्भकर्ण आदि रणक्षेत्र मे चाहे जितना पराक्रम दिखलायें परन्तु अपने जीवन की नीरसता का आभास उन्हें भी है और उनकी मृत्यु उनके लिये मुक्ति है, प्रभु की करुणा का वह रूप जो उनके लिये कल्याणकारी हैं।

अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्ह भगवान् ॥

राम रावण युद्ध के पश्चात् लंका की समर भूमि के दृश्य पर जब पटाक्षेप होता है तो जो दृश्य कवि पाठक के मनपर अंकित करता है

वह प्रभु की कृपा दृष्टि का दृश्य है प्रभु की अपार करुणा और अनुकम्पा का दृश्य जिसमे विजयी और विजेता दोनों के लिये शान्ति और मुक्ति का सन्देश है।

सारी कथा मे निहित और प्रतिबिम्बित यह सन्देश कुतर्की मनो मे यदि न बैठा हो तो ऐसी सशंयात्माओं के संतोष के लिए कवि उत्तरकाण्ड मे तर्कों और दृष्टान्तों द्वारा प्रम और भक्ति के उस मूत्र मन्त्र की व्याख्या करता है जिस प्रेम और भक्ति से भगवान् प्रकट होते है।

इस प्रकार पीडित भयत्रस्त पृथ्वी को दिया गया वह मूल मन्त्र चरितार्थ होता है जो शङ्कर द्वारा कवि मानस के आरम्भ मे सामने रखता है।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना-प्रेम ते प्रकट होंइ मैं जाना।
देस काल दिसि विदिसहु माहीं-कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।
अग जगमय सब रहित विरागी-प्रेम ते प्रभु प्रगटहिं जिमि आगी।

वह मंत्रशक्ति जिसके द्वारा तुलसी अपने सूक्ष्म अनुभव को अपने काव्य मे भरता है एक तो उस वातावरण मे निहित है जिसकी वह सृष्टि करता है और दूसरे उस आत्मीयता मे जो वह प्रभु और जन के बीच स्थापित करता है। यह आत्मीयता का भाव उस वातावरण से कम शक्तिसम्पन्न नही है जिसकी हम अभी चर्चा कर चुके है। वह रीति जिससे प्रभु जन को कृतकृत्य करते है प्रीति की रोति है। इस प्रीति की रीति के कुछ निराले ढङ्ग है। यह प्रीति व्यापक, विशुद्ध, अहेतुकी और भेद भाव रहित है और इसी कारण द्वन्द्वो और दुश्चिताओं से मुक्ति दिलाने वाली है। जिस किसी को इस प्रीति की प्रतीत अपने हृदय मे हो जाती है वह आनन्द विभोर हो जाता है क्योकि उसके मन की भाग दौड़ समाप्त हो जाती है और उसकी दृष्टि, राम के नाते, सर्व भूतरत हो जाती है। 'नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लों''। इस प्रीति का जन के हृदय मे उदय मे हुआ नही कि यह प्रतीति दृढ से

दृढ़तर होने लगती है कि मै राम का हूँ और राम मेरे है। इस आत्मीयता के भाव को तुलसी ऐसे मर्मस्पर्शी प्रसंगो को उठाकर अपनी कविता मे भरता है कि प्रभु के प्रेम के एक से एक सूक्ष्म तत्व सरल, सुगम और सुसाध्य हो जाते है और उसकी कविता एक कोरी कहानी या एक दार्शनिक विवेचन न रह कर एक प्रभु प्रेरित प्रेम संगीत का रूप धारण कर लेती है। इस नैसर्गिक प्रेम संगीत मे मानवीय सुकोमल भावनाओ की ऐसी पकड है और उनके लिये ऐसा आदर कि वह कोटि-कोटि दार्शनिक विवेचनों से अधिक सशक्त, सुन्दर और कल्याणकारी साबित होता है। सारी रामायण मे कवि जो कोटि-कोटि मुनियो के यत्नों को, जोग, याग, जप तप को, समस्त साधनो सिद्धियों को सरल, निश्छल प्रेम के सामने हलका और हेय बताता है, वह अकारण नही। उसका दृढ विश्वास है कि राम से आत्मीयता स्थापित करने के लिए सरल हृदय और निश्छल प्रेम से बडी और कोई पात्रता नही है। रामचरित मानस के पात्रो का बनावटी और बाहरी चरित्रचित्रण आप चाहे जितना कीजिए उनका एकमात्र चरित्रचित्रण यही है कि वे सरल हृदय हैं, राम को अपना आत्मीय जानकर उन्ही पर भरोसा करते है, आनन्द और द्वन्द्व रहित निश्चिन्तता के निरापद मार्ग पर आगे बढते जाते है और जो पात्र अपने को उनसे पृथक जान कर अहङ्कार पूर्ण प्रयासों पर भरोसा रखते है अन्धकार दुश्चिन्ता और अध:पतन के गर्त्तों मे गिरते जाते है।

इस निश्छल, विशुद्ध, प्रेम के जो हृदयग्राही अछूते चित्र मानस के पृष्ठों मे देखने को मिलते है वे विश्वसाहित्य मे अद्वितीय है। यह अकारण नही कि तुलसी को स्पष्टतया प्रभु की बाललीला वर्णन मे हार्दिक रुचि है। उस निश्छलता और सरलता का रंग जो तुलसी के अनुसार प्रेम की असली भावभूमि है बाल लीला के प्रसंगो मे खूब खुलता भी है।

परम मनोहर चरित अपारा, करत फिरत चारिउ सुकुमारा
मन क्रम वचन अगोचर जोई, दशरथ अजिर विचर प्रभु सोई
भोजन करत बोल जब राजा, नहिं आवत तजि बाल समाजा
कौशल्या जब बोलन जाई, ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई
निगम नेति शिव अन्त न पावा, ताहि धरै जननी हठि धावा
बाल चरित अति सरल सुहाए, सारद शेष संभु श्रुति गाए।
जिन्हकर मन इन्ह सब नहिं राता, ते जन बंचित किये विधाता ।।

सभी राम की बालोचित चेष्टाओ पर सौ जान से निछावर रहते हैं सभी उनको अपनापा भूलकर अपना समझते है।

कोसल पुरवासी नर नारि वृद्ध अरु बाल।
प्रानहु ते प्रिय लागत सब कहुँ रामकृपाल ।।

विश्वामित्र जब दोनों भाइयों को जनकपुर ले जाते हैं तो वहाँ के लोगो पर भी उनकी प्रेममय मूर्ति का जादू छा जाता है। सभी का मन बरबस उनकी ओर खिचा चला आता हैं।

धाए धाम काम सब त्यागी, मनहुँ रङ्क निधि लूटन लागी।

हियँ हरषहिं वरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचन वृंद।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानन्द ।।

सब सिसु एहि मिस प्रेम बस, परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं अति हरषु हियँ, देखि देखि दोउ भ्रात ।।

यह मन मे स्वतः उत्पन्न होने वाला प्रेम जो दर्शकों के अन्तस्तल को आनन्दमग्न करता है केवल रूप का आकर्षण नही है रूप के आकर्षण के पीछे उस प्रेम का आकर्षण है जिसकी कोई सीमा नहीं है। सहज विरागी जनक जब उन्हें देखते हैं तो कहते है।

इन्हहि विलोकत अति अनुरागा, बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा

और काव्य के अन्त मे जब आत्मा और परमात्मा की बड़ी बड़ी

बातो का विवेचन होता है तब शिव, काकभुशुंडि जैसे ज्ञाता जिस रूप पर निछावर हैं वह प्रभु का बाल रूप ही है :

बरनि न जाइ रुचिर अंगनाई, जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई।
बाल विनोद करत रघुराई, विचरत अजिर जननि सुखदाई॥
मरकत मृदुल कलेवर स्यामा, अंग अंग प्रति छवि बहु कामा।
नवराजीव अरुन मृदु चरना, पदज रुचिर नख सिख दुख हरना॥

और स्वयं कवि के हृदय मे भी यह बाल छवि माधुरी छाई रहे यह उसकी हार्दिक कामना है 'अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर मे बिहरैं'

सहज अनुराग और प्रेम को तुलसी अपने जीवन की और मानव जीवन की सार्थकता मानता है और जिस मधुरता और कौशल से वह इस प्रम तत्व को आत्मीयता पूर्ण, भावपूर्ण, हृदय के कोमल तन्तुओं को छूने वाला, उसकी भूख मिटाने वाला और साथ ही साथ मन को शान्त, उन्नत, परिष्कृत करने वाला बनाता है वह देखते ही बनता है। लक्ष्मण और भरत तो राम के निकटतम है, उस निश्छल, अवोध प्रेम के स्वरूप है जो राम को प्रिय है। लक्ष्मण का सब से बड़ा दावा राम पर यही है।

नरवर धीर धरम धुर धारी, निगम नीति कहुँते अधिकारी।
मैं सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला, मंदरु मेरु कि लेंहिं मराला॥

और दुर्दिन मे भरत का भी सबसे भारी भरोसा यही है

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ, अपराधिहु पर कोह न काऊ।
मो पर कृपा सनेहु विसेषी, खेलत खुनिस न कबहू देखी॥
सिसु पन तें परिहरेउँ न संगू, कबहु न कीन्ह मोर मन भंगू।
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही, हारेहुँ खेल जितावहिं मोंही॥

और प्रभु स्वयं तो इन अन्तस्तल से अन्तस्तल मे पुकार करने वाले प्रेम के स्वरो को सब से अधिक पहचानते हैं, उसके वशीभूत है। भग्त के सामने आते ही

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट, कहुँ निषंग धनु तीरा॥

इस प्रेम के आगे कवि की वाणी भी मूक हो जाती है।

अगम सनेह भरत रघुवर को, जहँ न जाइ मनु विधि हरि हर को।
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती, वाज सुराग कि गाँडर ताँती॥

प्रभु कृपा की यह रीति जो गुण दोष नही देखती हृदय की सरलता देखती है आत्मीयता और आत्म विस्मृति देखती है कवि के मन मे बैठी हुई है। इस आत्मीयता पूर्ण, भेद भाव रहित, हेतु रहित कृपा वारि छालित प्रेम की मंजु मरीचियाँ उसके काव्य संसार पर छाई हुई है और जब राम नगर परिवार के घेरो से बाहर हो कर खुली राहो और निर्जन बनों मे बिचरते है तो और भी स्पष्ट हो जाती है। कोल किरात उन्हे देखते है तो

करहिं जोहार भेंट धरि आगे, प्रभुहि विलोकहिं अति अनुरागे।
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े, पुलक सरीर नयन जल बाढ़े॥

उनकी बातो मे प्रभु जो रस लेते है बह सहज स्नेह की पराकाष्ठा है।

वेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन॥

ग्रध्रपति जटायु के पंखहीन धूल धूसरित शरीर को देखते ही कृपासिधु की करुणा उमड़ पड़ती है।

कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुवीर।
निरखि राम छवि धाम मुख विगत भई सब पीर॥

उसके निश्छल प्रेम की महानता प्रभु को अपना बना लेती है।

परहित बस जिन्ह के मन मांहीं, तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।
तनु तजि तात जाहु मम धामा, देहुँ काह तुम्ह पूरन कामा॥

कवि की इस प्रसंग पर विनय मे एक अत्यन्त मार्मिक टिप्पणी है।

नेह निवाहि देंह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई।
ऐसेहु पितुतें अधिक गीध पर ममता गुन गरुआई ॥

शबरी के आश्रम मे प्रभु आते है तो उनके प्रीति की रीति साकार हो उठती है। शबरी सोचती है मैं अधम हूँ, जड़मति हूँ, पापिनी हूँ और प्रभु तुरन्त उसको आश्वासन देते है कि मै जाति पॉति कुल धर्म बडाई धन बल परिजन गुन चतुराई पर नही रीझता मै तो 'मानउँ एक प्रेम कर नाता' और इस प्रेम के नाते शबरी को वह गति सुलभ हो जाती है जो योगियो को भी दुर्लभ है। वह सारी बानरी सेना जो प्रभु की प्रेम दृष्टि की छत्रछाया मे आत्मोत्सर्ग करती है प्रभु को अपना जानती है और प्रभु उसको अपनो से भी अधिक अपना मानते है। पहली ही भेट मे कपि श्रेष्ठ हनुमान कहते है।

सेवक सुत पति मातु भरोसें, रहइ असोच बनइ प्रभु पोंसे।

सेवक स्वामी के और पुत्र माता के भरोसे हो कर निश्चिन्त हो जाता है। यह आत्मसमर्पण कर चुकने पर सेवक को और पुत्र को कुछ करना नही रह जाता। प्रभु को सेवक का पालन पोषण, उसके कुशल क्षेम का भार ग्रहण करना ही पडता। और प्रभु इस स्थिति और सम्बन्ध को सहर्ष स्वीकार करते है।

तब रघुपति उठाइ उर लावा, निज लोचन जल सींचि जुड़ावा।
सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना, तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना।

सच पूछिए तो लंका मे उतरते उतरते समस्त बनारी सेना राम का एक विशाल परिवार बन जाती है और इस परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने हृदय के अन्तस्तल मे यह अनुभव करने लगता है कि

सेवक सुत पति मातु भरोसें, रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें।

और प्रभु भी सारे नाते रिश्ते भूल कर इन सरल अबोध केवटो, भीलनियों, बानरों, शरणागत राक्षसों की रक्षा करते है।

मानसकार का यह हस्तलाघव जिसके द्वारा वह इहलौकिक, दैनिक जीवन के सरल छोटे मोटे कोमल प्रेम व्यापारों को प्रभु की कृपा और अभयदान की सीढी बनाता है एक ऐसी सफलता है जिसकी ओर हमारा ध्यान बहुत कम जाता है। मानस के पात्रों के व्यवहार अस्थि चर्म से निर्मित मानवों के व्यवहार होते है। वे हैं तो सरल, अबोध, केवल एक कदम आगे तक देख सकने वाले, परन्तु उनके उस एक कदम के पीछे जो निश्छलता है जो आत्मविस्मृति, वह किसी प्रकार के गति अवरोध को स्वीकार नही करती। साधारण मानवी धरातल पर उठाए गए यह कदम ऐसे होते है जैसे आप एक वायुयान मे प्रवेश कर रहे है जो बिना आपके जाने ही जरा देर मे आपको मुक्त, स्वच्छन्द दिव्य आकाश के वायु मण्डल में पहुँचा देता है। एक पंक्ति मे तो मिलन और प्रेमालाप है

अस कहि परेउ चरन अकुलाई, निज तनु प्रकटि प्रीति उर छाई।
तब रघुपति उठाय उर लावा, निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ॥

और वात्सल्य तथा आत्मीयता पूर्ण इन दो पंक्तियो के बाद ही प्रेम और भक्ति की वह ऊँचाइयाँ सामने दिखाई देने लगती है जिनके आगे और कोई ऊँचाइयाँ नही है

सम दरसी मोहि कह सब कोऊ, सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ।
सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मै सेवक अचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥

इस आत्मीयता के भाव से गूढ से गूढ प्रसंग क्षण भर में सुगम और सरस बन जाते है। परन्तु आत्मीयता की यह पुट कठिन और दुरूह भावो को सरल बनाने की केवल एक तरकीब नही है यह आत्मीयता उस प्रेम का एक सहज अग है जिसे वह सारे द्वन्द्वों और कठिनाइयों को दूर करने का एक मात्र उपाय मानता है। अभय, आश्वासन और मुक्ति का जो वातावरण वह बनाता है उसमें यह

आत्मीयता का भाव स्वभावतः खूब घुलता मिलता है खूब गहरे रंग लाता है ।

तुलसी की कविता का जादू केवल भावो के ही स्तर पर नही चलता, एक और जादू वह चलाता है, शब्दो का जादू, उनकी ध्वनियों का जादू; उनकी संगीत और सगीतमयता का जादू । काव्य की आत्मा है लय, तन्मयता, प्रभाव को एकता । आप एक वक्तव्य या एक विचार शैली से असहमत हो सकते है, उसका विरोध कर सकते है उसके ऊपर पिष्टपेषण कर कर सकते है परन्तु एक स्वर लहरी, एक लय, धुन से वहमें नही कर सकते, उसमे तो केवल आप रम सकते है 'बूड़े अनबूडे तरे जिन बूड़े सब अंग' तुलसी के मन मे यह गहरी पकड थी कि मानव हृदय और सारा ब्रह्माण्ड अपनी गहराइयों मे एक लय मे बँधा है ।

यह लय उस तार्किक प्रणालो का ठीक विरोधी ढग है जिसके हम अभ्यस्त है । तार्किक प्रणाली विरोध उत्पन्न करती है, सघर्ष को जन्म देती है शान्ति, स्थिरता, रसमयता की विरोधिनी है । लय मे तन्मयता है वह विरोध विषाद, संघर्ष दूर करती है । तुलसी की कविता मे विषाद, उद्वेग, विरोध को हरने वाली एक विचित्र लय है । यह केवल छन्दो मे नही है यद्यपि उसके छन्दो का अपना ही जादू है जैसा कि हम कवि की भाषा और शैली विषयक परिच्छेदो मे दिखलाने की कोशिश करेंगे । वह लय जो तुलसी की कविता का एक विशिष्ट रस है एक अत्यन्त व्यापक, तरल और अन्तर्निहित तत्व है । समस्त जगत को सिया राममय जान कर, जीवन के सभी व्यापारों को प्रभु की इच्छा और कृपा की अभिव्यक्ति मान कर वह अपनी कविता को एक ऐसी नैसर्गिक लय मे बाध देता है कि आप मे यदि कुछ भी सहृदयता है, सौन्दर्य और प्रेम मे तन्मय होने की कुछ भी क्षमता है तो आप काव्यशास्त्र के सभी सिद्धान्तों से अनभिज्ञ होते हुए भी उसके प्रभाव से अछूते नही रह सकते । उसकी कथावस्तु की व्यवस्था मे सप्तसर्गो के बाँधने में, केन्द्र से परिधि तक उसको विस्तार देने में

और विस्तृत कथानक को फिर केन्द्रस्थ करने मे एक लय है, । इस प्रकार छन्दों की गति मे, भावो मे, कथा वस्तु की व्यवस्था मे एक ऐसा तारतम्य है जैसा उच्च कोटि के संगीत के बाहर देखने मे नहीं आता और इस लय मे वह ऐसा तन्मय है कि आजीवन उसने और कोई लय सुनी ही नही । सभी नाते, सभी अनुभव, सभी आशाएँ एक ही धुन मे बँधी है जो उसकी रामधुन है । राम से पृथक जीवन या साहित्य का उसके निकट कोई न मूल्य है न अर्थ । अनुभव और अभिव्यक्ति की ऐसी एकता पाठक पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती । पाठक भी इस धुन मे अपने हृदय की ही धुन पहचान कर तन्मय हो जाता है और यही रस सृष्टि की चरम सफलता है ।

यह सारी एकरसता उस केन्द्रीय अनुभूति का फल है जिसके कारण वह संसार को राममय देखता है अपने अहं को मिटाकर सर्वभूत रत है राम के प्रेम मे मग्न होकर निश्चिन्त है ।

संसार के अनेक महाकवियों ने अपनी महान् सफलताएँ संसार के दुख और निराशा, नियति की क्रूरता, मनुष्य की असहायता के चित्र दिखा कर प्राप्त की है । उनकी कृतियों को पढिए तो ऐसा जान पडता है कि इस संसार का नियन्ता कोई क्रूर, मदान्ध शासक है जो मानव जीवन के साथ खिलवाड कर रहा है और मानव जीवन पहाडी चोटियों का एक ऐसा मार्ग है जिस पर पग पग पर नियति के ओलों की बौछार हो रही है और पथिक यह नही देख पाता कि वह क्यों और किस ओर जा रहा है । ऐसी शका, निराशा, असहायता, विवशता और अर्थहीनता का वातावरण ऊँची से ऊँची पाश्चात्य और आधुनिक साहित्यिक रचनाओं मे व्याप्त है । तुलसी की कृतियों का वातावरण ठीक इसका उल्टा वातावरण है । वह प्रश्नो को इस लिए नही उठाता कि पाठक को मझधार मे छोड़ दे और वह कृति के पढ़ने के बाद उससे अधिक शङ्का शोकग्रस्त हो जाय जितना कि वह

उसको पढने के पहले था। वह प्रश्नों को उठाता है उनका समाधान करने के लिए, क्योंकि उसने अपने जीवन मे स्वयं उनका समाधान तर्क के स्तर पर नही, अनुभूति के स्तर पर पाया है। यह खोजने और पाने का उल्लास, यह निश्चिन्तता, यह कृतकृत्यता, यह स्वस्थ शान्तिमय वातावरण, यह प्रतिक्षण नवनेह उत्पन्न करने वाला रस तुलसी की कृतियों का विशिष्ट रस है और उसकी कविता मे सर्वत्र व्याप्त है।

सुनि सब कथा हृदय अति भाई, गिरिजा बोली गिरा सुहाई ॥
नाथ कृपाँ ममगत संदेहा, राम चरन उपजेउ नव नेहा ॥
मैं कृत कृत्य भयउँ अब तव प्रसाद विस्वेस।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस।

ग्यारहवाँ अध्याय

चित्र और संगीत

अनुराग तड़ाग में भानु उदै विगसी मनो मंजुल कंज कली

तुलसी की प्रतिभा को यदि हम ठीक पहचान ले तो यह समझने मे कोई कठिनाई नही होगी कि राम चरित मानस जैसे महाकाव्य के रचयिता को अपने साहित्यिक जीवन के प्रौढ काल मे मुक्तको, गीतों, और पदो के लिखने मे क्यों इतना रस मिलने लगा। मानस मे भी सब से उत्कृष्ट अंश वह नही हैं जहाँ कवि वर्णन विवेचन करता है, उसमे भी सब से अधिक मार्मिक अंश वे हैं जहाँ कोई पात्र सम्बादों मे अपने हृदय को खोल कर रखता है, कुछ आत्मनिवेदन, कुछ आत्म निरीक्षण करता है, भावों मे डूब कर अपने को प्रभु के चरणों मे अर्पित करता है। सहृदय पाठक को तो एक एक चौपाई मे तुलसी की आत्मा का स्पन्दन सुनाई देगा क्यों कि कवि की प्रवृत्ति ही स्वान्तः सुखाय रामयश गान करने वाले पुजारी की है। यह भावना कि मै राम सुयश की गंगा मे स्नान कर रहा हूँ अपने प्रभु की उपासना कर रहा हूँ वस्तुतः एक कथाकार की भावना नही है, हाँ, एक गीतकार की हो सकती है। अतएव वह पाठक जो काव्यरूप से अधिक काव्य की आत्मा को महत्व देता है कवि के मानस से गीतावली और विनयपत्रिका की ओर प्रगति को उसकी प्रतिभा के लिए स्वाभाविक और उसकी आन्तरिक प्रेरणाओं के सवर्था अनुकूल मानेगा। ऐसा जान पड़ता है कि मानस की रचना के बाद अभिव्यक्ति के माध्यमों के विषय मे कवि के विचारों ने एक नई मोड़ ली उसका विश्वास होता गया कि काव्य के क्षेत्र मे कथा कहानी की केवल एक बाह्य और नितान्त व्यबहारिक उपयोगिता है, कवि की निधि विचार शीलता नही भावशीलता है, काव्य विवेचन नही, संगीत है। कवि के साधन शब्द चित्र है, कविता का उद्देश्य हृदय की खिड़कियो का खोलना

है। अन्ततोगत्वा कवि की भावशीलता, उसका सहज ज्ञान, उसकी अनुभूति की तीव्रता ही सत्य और सौन्दर्य की सृष्टि मे सहायक हो सकते है। वह रूप की खोज जो समस्त मानस मे व्याप्त है और जिससे प्रेरित होकर उसने प्रभुमूरति की मनोहर झाकियाँ अपनी कृति मे सजाई है कवि के जीवन के प्रौढ काल मे उसके हृदय मे बस गई थी और उसकी आँखों मे छाई हुई थी, जैसे वे सजीव चित्र हो जिनको वह इच्छानुसार जब चाहे अपने मानस पटल पर बुला सकता हो। सच पूछिए तो मानस मे भी उसकी काव्य प्रतिभा जगह जगह पर झाकियाँ तैयार करने मे तन्मय है -फुलवारी लीला की झाँकी, राम वनगमन की झाँकी, चित्रकूट की झाकी, प्रवर्षण गिरि की झाकी, सुबेल पर्वत की झाँकी और सब झाँकियो मे भव्य रामराज्याभिषेक की झाकी। ध्यानपूर्वक देखिये तो कवि की आँखे इन झाकियो मे ही अटकी है

जे ब्रह्म अजमद्वैत अनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं

मानस मे भी जहाँ कही प्रभु की मनोहर छवि, उनकी वरद मुद्रा की रेखाएँ अंकित करने का अवसर कवि को मिला है वह चाहे जिस प्रसंग मे हो, चाहे वेद स्तुति कर रहे हो, चाहे शबरी आरती उतार रही हो, आपको यह अनुभव हुए विना नही रह सकता कि कवि के स्वरो मे आर्द्रता है, विह्वलता है, कृतकृत्यता है अपने इष्ट देव को पहचान कर उसकी आँखों मे जल भरा है, उसका रोम रोम पुलकित हो उठा है

सजल नयन तन पुलकि निज इष्ट देव पहिचानि
परेउ दंड जिमि धरनि तल दसा न जाइ बखानि

वन मार्ग मे मिलने वाले तेजः पुंज तापस की आँखो के समान उसकी भी आँखें प्रभु की मूर्ति से हटाए नहीं हटती ।।

पियत नयन पुट रूप पियूषा मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा

रूपदर्शन की इस भूख को गीतावली के गीतों और कवितावली के छन्दों में कवि ने खूब मिटाया है।

गीतावली

गीतावली के भावपूर्ण चित्रमय गीतों मे कवि को न कुछ समझाना बुझाना है न व्याख्या विश्लेषण करना है। शब्दों के चित्र और संगीत की लय ही उसके मुख्य साधन है। गीतावली की कथा वस्तु की जांच पडताल मे आलोचक अक्सर उलझे रहते है। उसमे वे सात काण्डों की कथा का सिलसिला ढूंढते है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन की कमी पाते है, प्रबन्धात्मकता का अभाव देखते है। यह बात उन्हे बहुत खटकती है कि गीतावली के बालकाड मे तो १०८ पद है और किष्किधाकाड मे केवल दो ही। वे गीतावली मे उन्हीं तत्वों को ढूंढते है जो उसमे न होने चाहिए-प्रबन्धात्मकता, घटनाओ का क्रम, काडो मे संतुलन, चरित्र चित्रण, लोक शिक्षा। इन आलोचको के मन मे एक धारणा सी बन गई है कि गीतावली एक प्रकार की गुटका रामायण है। वही चीज जो रामचरितमानस मे है सक्षिप्त रूप मे टिकिए की शक्ल मे-वे गीतावली मे भी ढूंढते है। परन्तु इन तरीकों से न हम इन गीतो का रूप पहचान सकते है न उनका रसास्वादन ही कर सकते है। उनके रूप रस को पाने के लिये आवश्यक है कि हम गीत काव्य और प्रबन्ध काव्य संवन्धी पूर्व निश्चित और पाश्चात्य नमूनो को सामने रख कर गढी गई धारणाओ को थोड़ी देर के लिये ताक पर रख दें। सच तो यह है कि गीतात्मकता तो एक चीज है जो अनुभूति के एक विशेष गुण की द्योतक है परन्तु गीतों की परीक्षा के लिए नियमावलियाँ तैयार करना एक व्यर्थ प्रयास है। अनुभूति के गुणों की छाप अभिव्यक्ति के माध्यमो पर इतनी गहरी पडती है कि एक कवि के गीतों का रंग दूसरे कवि के गीतों के रंग से सर्वथा भिन्न हो सकता है। गीतो की दुनिया मे नियम, नमूने, समानता निरर्थक शब्द है।

गीतावली के गीतों की भी अपनी विशेषता है। उनका विशिष्ट रूप न तो उन गीतों का है जिनसे हम अपनी पाश्चात्य साहित्य की जानकारी

के कारण परिचित हैं न उन शास्त्रीय तत्वों से युक्त कला गीतों का जिनमें सारा जोर अभिव्यक्ति की सुन्दरता, शब्द चातुरी, कलाकारी और बौद्धिक या अलंकारिक चमत्कार के उत्पन्न करने पर होता है। तुलसी के गीतों का प्रधान गुण उनकी स्वाभाविकता और अकृत्रिमता है। वह मुक्त हृदय से मुक्तक लिख रहा है जिनमे उसका पहला और अन्तिम उद्देश्य अपने हृदय के उद्गारो को, अपने मन मे उठने वाले भावों को विना बनावट के, सहज स्वाभाविक ढंग से व्यक्त करना है। गीति काव्य के अनेक गुण उनमे ढूंढने पर मिलेगे-उनका गेयत्व, उनकी तरलता, उनकी कोमल कान्त पदावली परन्तु यह गुण और प्रभाव यह विना किन्हीं वाह्यय बन्धनो को स्वीकार किए, विना किन्ही कृत्रिम कलात्मक प्रसाधनों का उपयोग किए उत्पन्न करता है क्यो कि उसकी प्रवृत्ति ही गीतात्मक है, क्योंकि उसका हृदय ही एक केन्द्र विन्दु मे रमा है, क्योकि वह अपने वर्ण्य विषय मे तन्मय, आत्मविभोर है।

ऊपर से देखिये तो गीतावली के गीतों मे वर्णन और वस्तुतत्व की स्पष्ट अधिकता दिखलाई पड़ेगी प्राय: सभी गीत किसी प्रसंग को ले कर रचे गये है और कायदे से वर्णन और वस्तुतत्व की अधिकता गीति काव्य के दोष है। गीति काव्य के आचार्यों का कहना है कि गीतों मे चितन, आत्माभिव्यक्ति, भाव तत्व की प्रवलता होनी चाहिए और जब उस पाठक को जो सतर्क नही है गीतावली के गीतों मे वर्णन ही वर्णन दिखाई पड्ता है तो उसके मन मे शुरू ही में यह गाठ पड जाती है कि यह विशुद्ध, ऊँचे किस्म के गीत नही हैं, इनमे कुछ मिलावट है।

यह सही है कि गीतावली के गीतों मे लीला वर्णन है परन्तु यह निर्धारित करने के लिये कि उनमे गीतात्मकता कितनी है हमारे लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनकी ऊपरी वर्णनात्मकता के आवरण को हटा कर उनके भीतर स्पन्दित होने वाली उन सहज रागात्मक वृत्तियों को पहचानें जो इन गीतों की जान है। यह अत्यन्त अर्थपूर्ण है कि कवि जानबूझ कर और चुन-चुन कर उन्ही प्रसंगो और स्थितियों को लेकर

अपने गीत रचता है जिनमे भावों को जगाने की क्षमता है और नीरस प्रसंगों को तो वह दूर से भी नही छूता। उन्ही प्रसंगों को उठाता ही है जिनके द्वारा अपनी निजी आस्थाओ को वह सजग कर सके। गीता-वली मे वह रामायण की कहानी नही अपनी आस्थाओ की कहानी गीतो मे सुना रहा है। लङ्का काण्ड मे भी जिसमे स्वभावतः अप्रीतिकर, कठोर, परुष प्रसंगों की प्रधानता होनी चाहिये कवि चुन-चुन कर उन्ही क्षणो के चित्र उतारता है जो प्रेम और करुणा के रस मे डूबे है। एक गीत मे लक्ष्मण गहरी मूर्छा से जाग कर कहते है 'हृदय घाउ मेरे पीर रघुवीरै' तो दूसरे मे वियोग से व्याकुल माताएँ पूछती है 'आली अब राम लषन कित ह्वै है।' ढाँचा तो सभी उन रचनाओ का जिनमे तुलसी का हाथ होगा रामचरित चर्चा करके ही खड़ा किया जायगा परन्तु गीतो की प्राण प्रतिष्ठा, उनकी आत्मा का सृजन वह भावपूर्ण क्षण करते है जिनसे कवि को प्रेरणा मिलती है, उनका रूप, रंग, व्यक्तित्व वह भावपूर्ण, द्रवित करने वाले तत्व निर्धारित करते है जिनके प्रभाव मे कवि की वाणी मुखरित होती है। असली कसौटी यह है कि इन गीतो की प्रतिक्रिया हमारे मन पर क्या होती है और कवि की वृत्ति एक भावुक गायक की है या एक तटस्थ दर्शक की। कोई भी गीत लीजिए, कहने वाला कोई भी हो वाणी सदैव कवि की है, पुकार कवि के ही हृदय की है। पात्र कोई भी हो प्रभु के चरणो पर अपने को अर्पित करने की, अपना सर्वस्व निछावर करने की लालसा सब को है, चाहे वे मातायें या ग्रामबधुएँ हो, या कोई मुनिवर। माताओ को न यह याद रहता है कि मै माता हूँ, मुनियो को न यह याद रहता है कि मैं ऋषि मुनि हूँ, सब के वचनो की ओट मे कवि के हृदयग्राही आत्मनिवेदन की प्रतिध्वनि सुनाई देती है सब की आँखें प्रभु के चरणो मे अँटकी रहती हैं, झाँकी कोई भी हो परन्तु 'चितवत चित चकोर तुलसी का'

चेष्टा चित्र उतारने की जरूर होती है परन्तु इन चित्रों मे कवि

ऐसा रमा है, उनकी मानसिक पूजा मे वह ऐसा रत है कि चित्र चित्र नही रह जाते देखते देखते अनुभूति बन जाते हैं।

इस भावशीलता के अतिरिक्त तुलसी के गीतो मे एक अजीब निश्छल, सरल, मानवीयता भी है :

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुर बाता।

ऐसे गीतो मे एक ऐसा सरल, सभी माताओ के हृदय मे उत्पन्न होने वाला, सभी के मर्मस्थल को छूने वाला भाव है जो सुनते ही बिना किसी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की माँग किये मन को पकड़ता है। कवि केवल एक व्यापक भाव को संगीत लहरियों की लय मे बैठा देता है। सोरठ के दर्द भरे, आशा उत्सुकता भरे स्वरों मे बँधी हुई माता कौसल्या की आशा, उत्सुकता प्रत्येक माता के हृदय की आशा बन जाती है।

सजीवता तो इन गीतों की देखते बनती है। इन गीतो का कवि एक दृष्टा कवि है दृष्टा इस अर्थ मे कि वह झाँकियाँ बनाता है उनको आमने सामने देखता है, उनका प्रत्यक्ष दर्शन पाता है, उनमे सौ जान से ऐसा लीन हो जाता है कि काव्य चातुरी और उक्ति वैचित्र्य के प्रलोभन उसको भरमाते नही। उसकी सफलता के एक मात्र कारण होते है उसकी अनुभूति की गर्मी और उसके मन मे उठने वाले चित्र की स्पष्टता। अनुभूति की इस स्पष्टता के कारण उसके चित्रके रेखाओ मे एक विचित्र स्वच्छता, तीव्रता, दृढता आ जाती है :

राजत राम जानकी जोरी
श्याम सरोज जलद सुन्दर वर
दुलहिन तड़ित वरन तनु गोरी
ब्याह समय सोहति वितान तरि
उपमा कहुँ न लहति मति मोरी
मनहुँ मदन मंजुल मड़्ल मँह
छवि सिंगार सोभा इकठौरी

मङ्गलमय दोउ अंग मनोहर
　　　　ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी
कनक कलस कँह देत भाँवरी
　　　　निरखि रूप सारद भइ भोरी
इत वसिष्ठ मुनि, उतहि सदानँद
　　　　बंस बखान करैं दोउ ओरी
इत अवधेस उतहि मिथिलापति
　　　　भरत अंक सुखसिंधु हिंलोरी
मुदित जनक रनिवास रहस वस
　　　　चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी
गान निसान वेद धुनि सुनि सुर
　　　　बरषत सुमन, हरष कहै को री
नयनन को फल पाइ प्रेम वस
　　　　सकल असीसत ईस निहोरी
तुलसी जेहिं आनंद मगन मन
　　　　क्यों रसना वरनै सुख सो री

जिस राग केदारा के स्वरों मे यह चित्र कवि के मन में उठता है, उसी राग में इस गीत को गाइये, कलाकारी के लिए नही गीत मे तन्मय होने के लिए, तो आप यह अनुभव किए बिना नही रह सकते कि केदारा के स्वर अपने आप ही चित्र को मूर्तिमान कर रहे हैं, एक मनोदशा की सृष्टि कर रहे है, एक झाँकी वना रहे है, जो केवल चित्रों और स्वरों के सहारे निखर रही है, जिसमे साहित्यिक कलाकारी का हाथ नही है, जिसके सामने वाक्पटुता मूक हो जाती है।

तुलसी जेहि आनन्द मगन मन
　　　　क्यों रसना वरनै सुख सो री

वैसे तो काव्य, विशेषत: भारतीय काव्य, स्वभावत: गेय है। मानस भी अपनी जगह पर एक अत्यन्त गेय रचना है। मानस का

सारा शब्द भाण्डार उसकी गेयता से प्रभावित है मानस की चौपाइयाँ भी अपना पूरा अर्थ संकेत तभी देती है जब हम उनके अर्थ और संगीत मे पूरा ताल मेल बैठा लें। परन्तु गीतावली के गीतो मे कवि अभिव्यक्ति के क्षेत्र मे एक अत्यन्त आकर्षक और अर्थपूर्ण प्रयास कर रहा है। इन गीतो मे उसके प्रधान साधन शब्द और अर्थ नही है। इनमे वह केवल 'अरथ' और 'आखर' के बल पर भरोसा नही करता। यहाँ वह साहित्य संगीत के मेल से उत्पन्न होने वाली उन क्षमताओं को तौल रहा है जिनका बल लय और ध्वनि मे है। यहाँ अर्थो और अक्षरो से अधिक वह लय और ध्वनि से काम लेता है। दो चार शब्दो मे वह एक चित्र खडा कर देता है और यह दो चार शब्द भी प्राय: उन्हीं उपमाओं उत्प्रेक्षाओं से संबंधित शब्द होते है जिन्हे वह बार बार दुहराता रहता है—अरुन राजीव नयन, शतकोटि मनसिज मान भंजन मुखछवि, रूप का वह अपार सागर जिसका वर्णन करते आगम निगम शेषशकर पार नहीं पाते। परन्तु यह शब्द और प्रतीक वाह्य उपकरण मात्र है। रस सृष्टि और भावोद्रेक का गुरुतर भार वह वर्णयोजना, शब्द ध्वनि, संगीत के कन्धो पर डालता है और अगणित विद्वान् अविद्वान् शिक्षित अशिक्षित पाठको के हृदय इस बात के साक्षी है कि उसके गीत हृदय को ऐसा पकड़ते है, अपने रंग मे रंगते है, अन्तस्तल मे गूँजने लगते है कि अपने आप ही उस मनस्थिति, उस भावजगत् की सृष्टि हो जाती है जिसमे कवि की आत्मा विचर रही है। शब्द और उनके अर्थ तो पीछे पड़ जाते है दबे दबे से रहते है और उनका स्थान दूसरे प्रकार के प्रभाव, दूसरे प्रकार की सूक्ष्म शक्तियाँ ले लेती है। इन प्रभावो के स्रोत होते है वर्णो की उनके ध्वनियों के अनुकूल सगति, गीत के भाव के अनुकूल रागिनियो का चुनाव। यदि यह सही है कि गीतावली मे शृङ्गार और करुणरस की प्रधानता है तो इन रसो के परिपाक के लिए ध्वनि और संगीत की शक्ति का जो सदुपयोग इन गीतो मे हुआ है उसका एक ऐसा स्थायी मूल्य है जिसमे केवल कुछ

सदियाँ बीत जाने के कारण कोई कमी नही आ सकती क्योकि वह ऐसा मूल्य है जो साहित्यिक रुचि और भाषा सम्बन्धी प्रगति के उतार चढ़ाव से मुक्त है।

हिन्दुस्तानी संगीत के राग रागिनियों का गीत के विषय से घनिष्ठ सम्बन्ध सभी जानते है; उनका निर्माण ही स्वरों की प्रकृति के आधार पर हुआ है। एक राग का स्वरूप गम्भीर और करुण है तो दूसरे का सरस और सुकोमल। गीतावली के गीतों को कवि ने जिन राग रागिनियो मे बाँधा है उनकी प्रकृति और गीतों के विषय मे बड़ा मेल है। गीतावली मे जिन राग रागिनियों को स्थान मिला है वे अधिकतर कोमल करुण भावनाओं को जगाने वाली और माधुर्य का रूप सँवारने वाली है। केदारा के दर्द भरे स्वर अनेक गीतो मे सुनाई देते हैं क्योंकि कवि के आत्मनिवेदन का यही मनचाहा स्वर है। कान्हरो, आसावरी, गौरी, धनाश्री, रामकली, सोरठ—जिन रागिनियों की बहुलता गीतावली मे है उन सब के स्वर स्वभावतः सरस, ललित मधुर हैं। यह स्वर जैसे गीत के शब्दों को उठा लेते हैं, उन में जान डाल देते हैं, उनको अपने स्वरूप मे ढाल लेते हैं, उन स्वरों के संयोग से विहीन हो कर वे निष्प्रभ, निर्जीव से रहते हैं। उनकी व्याख्या, विश्लेषण जब हम एक छपी हुई पुस्तक के पृष्ठों मे पढ कर करते हैं तो हम उन जीवित व्यक्तित्व पूर्ण गीतों के सम्पर्क मे नही होते जो तुलसी के मनमन्दिर मे गूँजे थे वरन अक्षरों के उस समूह पर पिष्टपेषण करते हैं जो छापेखाने के कारीगरों की करतूत हैं और जिनमे रसस्रष्टा कवि के भाव जगत् की छाया भी नही है।

चित्रों और ध्वनियों की जो लयात्मक अनुभूति गीतावली मे है वह न तो आकस्मिक ही है न अकारण। आध्यात्मिक क्षेत्र में जैसे जैसे तुलसी तर्क और वाक्य ज्ञान का पल्ला छोड कर उत्तरोत्तर एक अनन्य भक्त होता जा रहा था वैसे वैसे सगुण संकीर्तन के लिए उपयुक्त माध्यमों को सँवारने मे भी वह कुशल और सिद्धहस्त होता जा रहा था। केवल वर्णन

विवेचन से वह अब संतुष्ट नही हो सकता था। अब उसे खोज थी ऐसे माध्यमो की जो भावावेगमयी अवस्थाओं को गिने चुने शब्दो में चित्रित कर सकें, ध्वनियों के सामंजस्य से मन को प्रभावित कर सकें, हृदय पर सीधा चोट करके कोमल मार्मिक वृत्तियों को जगा सकें। काव्य अब उसके लिए सच्चे अर्थ मे आत्मानुभूति का संगीतमय, संकेतमय चित्रण होता जा रहा था।

चित्र और संगीत मे कवि की यह रुचि कवितावली के पृष्ठों में अपनी पूरी निखार पर है।

कवितावली

कवितावली के रचना काल के विषय मे विद्वानो ने काफी छान वीन की है और अनेक प्रमाणो को जुटा कर जो रचनाकाल निर्धारित किया है वह कोई ५० वर्षो का नही तो लगभग २५ वर्षो का लम्बा काल तो है ही जो सच पूछिए तो कवितावली के रचना काल के निश्चित होने का नही वरन् उसके अनिश्चित होने का प्रमाण है। परन्तु किसी भी काव्य मर्मज्ञ के लिए यह निश्चित करने के लिये किसी बाहरी साक्ष्य की आवश्यकता नही है कि कवितावली मे कवि की काव्यशक्ति परम उत्कर्ष पर है और जिन विषयों का इसमे समावेश है उनकी विविधिता और विस्तार को देखते हुये वह कवि की आस्थाओं और अनुभूतियों का एक अपूर्व संग्रह ग्रन्थ है।

उन आलोचकों को जो कवितावली को एक प्रकार की कवित्त रामायण समझते है यह देख कर आश्चर्य होता है कि बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड मे २२ और २८ छन्द है परन्तु अरण्य और किष्किन्धा काण्ड मे केवल एक एक ! लंका काण्ड मे राम से अधिक हनुमान का वर्णन है और उत्तर काण्ड मे तो न राम का वर्णन है न हनुमान का वरन् स्वय तुलसी की अपनी ही रामकहानी गाई गई है। ऐसे आलोचक भूल जाते है कि कवि की अपनी समस्त कृतियों मे प्रधानतः रुचि कहानी

वर्णन मे नही है उसकी वास्तविक रुचि स्वान्त. सुखाय आत्म विकास आत्म साक्षात्कार मे है। इन आलोचकों को चकराने के लिए कम कारण होगा यदि वे देख सकें कि यद्यपि कवितावली एक संग्रह ग्रन्थ है और स्वभावत: उसमें विविध विपयो से सम्बन्ध रखने वाले छन्दों की संख्या मे अनुपात की कमी है परन्तु साथ ही साथ यह बात भी है कि जिन विषयों को उसने अपनाया है वह उसके अपने मनचाहे विषय है, ऐसे विषय जो उसकी प्रतभिा, रुचि और आस्थाओं को व्यक्त करने के लिये आवश्यक भी है और उनके समझने मे वहुमूल्य, विश्वसनीय, सन्तोष जनक सहायता प्रदान करते है।

पहली बात तो कवितावली मे साहित्यिक सौन्दर्य की अनुपम छटा है। प्रभु के माधुर्य और ऐश्वर्य की ऐसी मनहर झाँकियां कवितावली मे है जैसी तुलसी की भी रचनाओं मे अन्यत्र ढूंढने ही पर मिलेगी। दूसरे जो लय, गति और चित्रकारी इन कवित्तो मे है उनमे कविकी प्रौढ शैली के अनूठे नमूने देखने को मिलते है। तीसरे, कवितावली मे कवि कथाकार का वाना उतार कर आत्म निवेदन, आत्मसमर्पण, आत्मनिरीक्षण, आत्माभिव्यक्ति के ऐसे सच्चे स्वरों मे गाता है जैसे वह अपना हृदय हथेली मे लिये अपने प्रभु के सामने खड़ा हो। चौथे, सारी मिलावटों के गल जाने के बाद उसकी आध्यात्मिक आशाओ और विश्वासों का निखरा रूप अनेक छन्दों मे ऐसा साफ झलकता है कि कवि की लौकिक जीवन की कोई बात न जानते हुये भी आप उसके वास्तविक जीवनकी सभी बातें जैसे एक दर्पण मे देख सकते है।

साहित्यिक सौन्दर्य के संबध मे पहले तो हमे उन छन्दों को देखना चाहिये जिनको कवि ने चुना है और जिनके कारण कवितावली कविता वली है। कवित्त और सवैए हिन्दी के ऐसे प्राचीन और पिटे हुये काव्य रूप हैं कि सैकडों वर्ष तक कविताई का यश लूटने के इच्छुक कारीगरों के हाथों मे पड़ कर अब कुछ घिसे से दिखाई पड़ते हैं। अतएव न तो हमारी दृष्टि ही उन कारणो पर जाती है जिनके वश मे तुलसी ने

उन्हें अपनाया था और न उस सफलता का ही हम समुचित मूल्यांकन कर पाते है जो कवि ने उस समय मे प्राप्त की जब वे इतने घिसे पिटे नही थे जितने कि अब हो गये हैं। कवित्त और सवैए परम्परा से राज दरबार मे राजे महाराजो का यशगान करने वाले गायकों के प्रिय छन्द रहे है तुलसी को तो किसी राजे महाराजे की प्रशंसा करना नही था उसने तो प्रण कर लिया था कि मै प्राकृत जनों की गाथा गा कर अपने मन और वाणी को दूषित नही करूँगा। परन्तु यदि सांसारिक राजे महाराजों से उसे कुछ लेना देना नही था तो उस राजराजेश्वर के दरबार मे तो उसे बहुत कुछ विनती प्रार्थना करनी थी जिसकी शरण मे आकर उसको परम शान्ति और परम विश्राम की प्राप्ति हुई थी और वह उन छन्दो और स्वरो की क्षमताओ से पूरी तरह परिचित था जो उसकी प्रार्थना और विनती मे वह शक्ति, ओज, गम्भीरता, पैनापन, ला सके जो वह लाना चाहता था। कवित्त सवैयों मे अपने भावो को इकट्ठा करके एक चरण मे ला कर घटाने का जो अनुपम अवसर होता है उसका तुलसी ने सुन्दर उपयोग किया है! भावो की एकाग्रता, अभिव्यक्ति के पैनेपन के साथ साथ उसके कवित्त और सवैयों मे वाणी को उठाकर उसमे अनुभूति की गर्मी और सच्चाई भरने की ऐसी शक्ति है जिसके कारण उनमे एक अपूर्व स्वच्छता, भव्यता और सौम्यता आ जाती है

ईसन के ईस महाराजन के महाराज
देवन के देव, देव, प्रानहू के प्रान हौ
काल हू के काल, महाभूतन के महाभूत
कर्म हू के कर्म निदानहू के निदान हौ।
निगम को अगम, सुगम तुलसीहूँ से हो
एते मान शील सिन्धु करुना निधान हौ।
महिमा अपार काहु बोल सो न वार पार
बड़ी साहिबी में नाथ बड़े सावधान हौ।

ओज, गम्भीरता, उठान, पैनापन कवित्तों और सवैयों के सहज गुण हैं। ऐश्वर्य की छटा उतारने मे इन छन्दों के यह स्वाभाविक गुण बडी सहायता पहुँचाते है। फिर भी अपनी अपूर्व प्रतिभा से तुलसी ने इन छन्दो मे भी वह करुणा, दैन्य, आर्द्रता भरी है जिनमे उसका अपना वैयक्तिक स्वर अन्य सब स्वरों मे ऊपर सुनाई देता है।

भूमिपाल, व्यालपाल, नाक पाल, लोकपाल
कारन कृपालु मैं सबै के जी की थाह ली
कादर को आदर काहू के नाहिं देखियत
सबनि सोहात है सेवा सुजानि टाहली
तुलसी सुभाय कहै नाहीं कछू पच्छपात
कौनै ईस किए कीस भालु खास माहली
राम ही के द्वारे पै बोलाइ सनमानियत
मोसे दीन दूबरे कुपूत कूर काहली

यह सही है कि तुलसी ने इन छन्दो के विषयवस्तु, को जो फैलाव और गहराई दी उसका सदुपयोग परवर्त्ती कवियों ने अधिकतर नही ही किया। भाटों की शैली मे सैकडो कवित्त, सैकडों बरस तक, सैकडों क्षणिक-प्रभुता-प्राप्त शासकों की खुशामद मे हिन्दी के कवियो ने लिखे हैं; उनको पढिए तो अधिकतर कुछ शाब्दिक चमत्कार उत्पन्न करने, कुछ अलंकारों की छटा दिखलाने, किसी बात मे बाँकपन लाने के लिए ही इन कवित्तों की रचना की गई जान पड़ती है। कवि स्पष्ट रूप से यश, गौरव, धन वाहवाही पाने के लिए अपने हाथ उठाता है। परन्तु कवितावली के कवि को न कीर्ति की कामना है, न किसी को खुश करना है; उसे केवल अपने को अपने प्रभु के चरणो पर निछावर करना है और भावना की यह मौलिक विभिन्नता उसके कवित्तों को दूसरी ही कोटि की कविता बना देने के लिए पर्याप्त है। अपने अन्तःकरण के प्रति यह पूरी सचाई, अपनी अनुभूति के प्रति यह ईमानदारी

हो उसके छन्दों के जीवन प्राण है। वाह्य रूपो के पीछे वह नही पड़ता। काव्य रूप उसके छन्दो के भी दरबारी गायकों के जैसे दिखाई पड सकते है, हाथ इसके भी प्रार्थना मे उठते है, परन्तु वह जो माँगता है जिस आस विश्वास, अधिकार, आत्मीयता से मागता है उसके कारण उसके छन्दों और अन्य कवियों के छन्दो मे पृथ्वी आकाश का अन्तर आ जाता है।

रीति महाराज की नेवाजिए जो माँगनो सो
दोष दुख दारिद दरिद्र कै कै छोड़िए
नाम जाको काम तरु देत फल चारि
ताहि तुलसी विहाय कै बबूर रेंड गोड़िए
जाँचै को नरेस, देस देस को कलेस करै ?
दैहै तो प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंड़िए
कृपा पाथ नाथ, लोकनाथ नाथ सीता नाथ
तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िए ?

इसमे सन्देह नही कि तुलसी काव्य रूपो के विषय मे नएपन के लिए नएपन की खोज मे नही था। ऐसा जान पडता है कि उसने जान बूझ कर उन्ही छन्दों को अपनाया जो प्रचलित और लोकप्रिय थे बहुत कुछ इसी लिए ही कि वे प्रचलित और लोकप्रिय थे—उनके लिए प्रियता उत्पन्न करने, नए सिरे से जमीन तय्यार करने की जरूरत नही थी। प्रचलित ढाचो मे ही वह अपना सौदर्य बोध, अपने अनुभूति की संजीवनी शक्ति भर कर अपने प्रभु के प्रेम सन्देश को जन जन के हृदय मे बैठाना चाहता था। अतएव प्रश्न यह नही है कि उसने कौन काव्यरूप अपनाए, प्रश्न यह है कि जिन काव्यरूपो को उसने अपनाया, वीरगाथा के गायकों की छप्पय पद्धति, सूफियो की दोहा चौपाई, विद्यापति, सूर की गीत पद्धति, गंग आदि भाट कवियो की कवित्त सवैया पद्धति उनको कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया। जहाँ तक कवितावली का संबंध है कवित्त घनाक्षरी, सवैया और छप्पय के संकुचित क्षेत्र मे उसने जो जो फूल

खिलाए, जो जो चित्र उतारे, आत्माभिव्यक्ति की जो जो उड़ाने ली वे आप अपनी मिसाले है ।

कवितावली के प्रारम्भ मे ही कुछ ऐसे सुमधुर, संगीतमय काव्य चित्र है जिनमे अनुभूति और अभिव्यक्ति का तालैक्य अपनी चरम सीमा पर है । आज भी वे चित्र पाठको की आँखो मे समाए है और तब तक समाए रहेगे जब तक हिन्दी काव्य का एक भी मर्मज्ञ जीवित रहेगा ।

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि मंजु बनी बनमाल हिए
नवनीत कलेवर पीत झँगा झलकैं पुलकैं नृप गोद लिए
अरविन्द सो आनन रूप मरन्द अनंदित लोचन भृंग पिए
मन मों न वस्यों अस बालक जौ तुलसी जग में फल कौन जिए ?

प्रभु के अपार रूप की एक झाँकी, एक झलक किसी न किसी प्रसंग के बहाने कवि पाता है, उसमे तन्मय हो जाता है और गति, लय, शब्द ध्वनि, चित्रकारी के सहारे रस की उत्पत्ति करता है क्यो कि वह जानता है कि शब्दों के केवल वाच्यार्थ उस रस की सृष्टि नही कर सकते जिसके वश मे वह अपने को प्रेम विह्वल पाता है । सच पूछिए तो इन पक्तियों की वर्ण योजना, उनकी शब्दध्वनि केवल स्मृति चिह्न है उन आनन्द लहरियो के जो कवि के हृदय मे उठती है ।

पुरतें निकसों रघुबीर वधू धरि धीर दए मग में डग द्वै
झलकी भरि भाल कनी जल की पटु सूखि गए मधुराधर वै
फिर बूझति हैं 'चलनो अब केतिक पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै

सारी व्यंजना लय, गति, ध्वनियो के माध्यम से है और इन सब के सामूहिक प्रभाव को वह इतना प्रबल और सफल पाता है कि सारी कवितावली को हम शब्द चित्रों और शब्द ध्वनियों की व्यंजना शक्ति की एक प्रयोगशाला कह सकते हैं ।

दो छन्दों में फैले हुए रससृष्टि के इस प्रयास को देखिए:

सीस जटा, उर बाहु विसाल, विलोचन लाल तिरीछीसी भौहैं
तून सरासन बान धरे, तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं
सादर बारहि बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं
पूछति राम वधू सिय सों कहो साँवरे से सखि रावरे को हैं ?
सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने सयानी हैं जानकी जानी भली
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समझाइ कछू मुसुकाइ चली
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली
अनुराज तड़ाग में भानु उदै विगसीं मनो मंजुल कंज कली

यह हो सकता है कि पहले भी किसी कवि ने इस प्रश्नोत्तर से उत्पन्न होने वाली स्थिति पर कुछ पंक्तियाँ लिखी हों, यह भी हो सकता है कि जिस प्रेम व्यापार को इन पंक्तियों मे चित्रित किया गया है उसकी पुनरावृत्ति रोज ही ग्रामीण जन जीवन मे होती हो, परन्तु जो भाव-व्यञ्जना, जो पद लालित्य, जो शब्द ध्वनि, जो रागात्मक वृत्तियो को जगाने की शक्ति तुलसी की पंक्तियों मे है वह न पहले कोई कवि उत्पन्न कर सका था न आगे कर सकेगा। इन पंक्तियों का चमत्कार उक्ति वैचित्र्य मे नही है उनका सारा चमत्कार उस जादू भरे शब्दों और ध्वनियों के सयोग मे है जो न जाने कैसे, न जाने कहाँ से, न जाने किस रहस्यमयी प्रेरणा के फल स्वरूप काव्य के पृष्ठो पर उतर कर चमक उठता है और फिर अनन्तकाल तक चमकता रहता है।

अनुराग तड़ाग में भानु उदै विगसीं मनो मंजुल कंज कली

कवितावली के सुन्दर और लंका कांड मे वीरता और शौर्य के कुछ ऐसे सजीव और ओजपूर्ण चित्र है कि कुछ आलोचको का यह विचार है कि कवितावली वीररसप्रधान, प्रभु के माधुर्य से अधिक ऐश्वर्य का वखान करने वाली रचना है। कवितावली के पहले छप्पय ही को देखिए :

डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्प पब्बै समुद्र सर
व्याल वधिर तेहि काल विकल दिगपाल चराचर
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर
सुरविमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर
चौंके विंरचि संकर सहित कोल कमठ अहि कलमल्यौ
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिवधनु दल्यौ।

डगमगाते पर्वत, समुद्र, सरोवर, लडखडाते दिग्गयंद, 'सुरविमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर,' जिस दिल दहलाने वाली, ब्रह्मांड में खलवली मचाने वाली परिस्थिति की सूचक है उसमे कम प्रभाव शाली वह शब्दध्वनियों से व्यक्त निर्धोष नहीं है जो' ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि' से प्रतिध्वनित होती है।

लंकादहन की विकरालता, राक्षस समुदाय की खलबली कवि के शब्द चित्रों और ध्वनियों की चोटों से जैसे मूर्त्तिमान् हो उठी है, 'लागि लागि आग. भागि भागि चले जहाँ तहाँ, धीय को न माय, बाप पूत न सँभारही' ऐसी भयंकर अग्नि ज्वाला मे 'हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज, भारी भीर ढेलि पेलि रौदि खौदि डारही'। स्वभावतः लंका निवासियों के घबराहट की सीमा नहीं रहती 'धाओ रे, बुझाओरे कि बावरे, हौ रावरे या औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो।'

इन पक्तियों मे जितनी वस्तु परक सजीवता है उससे कम उल्लेखनीय वह रससृष्टि नही है जिसमे अभ्यास और प्रयास का कोई हाथ नहीं दिखाई देता। कवि स्पष्टतः किसी एक रस के उदाहरण नही तैयार कर रहा है। उसकी सजीव अनुभूति और चित्रित विषय की मांग यदि यह है कि भयानक के साथ अद्भुत का सम्मिश्रण किया जाय तो वह ऐसे सम्मिश्रण से झिझकता नहीं। जलती लपटों और झुलसते निशाचरों के वर्णन के बीच उसकी ऐसी पंक्तिया भी होती हैं

जुग षट भानु देखे प्रलय कृसानु देखे
सेष मुख अनल विलोके बार बार मैं
तुलसी सुन्यो न कान सलिल सर्पी समान
अति अचरज कियो केसरी कुमार है।

निम्नांकित सवैए मे आपको यह निर्धारित करने मे कठिनाई हो सकती है कि इसमे राम की शूरवीरता का वर्णन है या सुन्दरता का परन्तु इस विषय मे कोई सन्देह नही हो सकता कि कवि के हृदय पटल पर प्रभु की जो महाछवि छाई हुई है वह चित्रकारी, संगीतमयता, गति शीलता के पंखो पर उठ कर सभी वर्गो और नियमो का अति क्रमरण करती है :

राम सरासन ते चलें तीर रहे न सरीर हड़ावरि फूटी
रावन धीर न पीर गनी लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी
सोनित छींटि छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहै महाछबि छूटी
मानौ मरक्त सैल विसाल में फैलि चली वर वीर वधूटी।

प्रभु की लीला के सरस चित्र तो तुलसी ने अपनी कृतियों मे बार बार और कई पैमानो मे खीचे है—राम चरित-मानस के विस्तृत चित्र पट पर, गीतावली और विनय पत्रिका के ताल स्वरयुक्त गीतों मे (जिनको आवश्यकतानुसार वह बढ़ा घटा भी सकता था) परन्तु कवित्त और सवैयो की चार पक्तियो की चहार दीवारियो के भीतर रह कर उसने जो सफलता प्राप्त की है वह चिरस्मरणीय रहेगी। इस सफलता की आधार भित्ति केवल साहित्यिक कौशल या करीगरी नही । वह एकाग्रता, एकरसता, सूक्ष्मता और पैनापन, संसार की विषमताओ और प्रलोभनों से सिमट कर एक ठाव पर आई हुई मनोदशा जो तुलसी के प्रौढकालीन अनुभूतियों का स्वाभाविक गुण है स्वभावतः एक सीमित, साफ, सुथरी जमीन माँगती है। आकार जितना सीमित है उतना ही असीम है रूप रस का वाह सागर जो कवितावली की चार पक्तियों वाली गागरों

मे हिलोरें लेता है। कवितावली के छन्दों मे कवि को एक कहानी नहीं विकसित करनी है, केवल एक सुपरिचित कहानी के उन विन्दुओ पर मन को स्थित कर देना है जिनमे प्रभु की महती कृपा, उनके ऐश्वर्य और माधुर्य के अपार सागर का आभास एक बिन्दु मे प्रतिम्बिबित हो जाए। यदि एक पूरे काण्ड की लीला का निचोड एक ही छन्द मे संजो कर रक्खा जा सकता है तो एक ही छन्द मे वह एक पूरा काण्ड समाप्त कर देता है और उन काण्डों मे भी जिनमे छन्दों की संख्या एक से अधिक है उसकी दृष्टि दो एक ऐसे बिन्दुओ पर केन्द्रित है जिनमे उस विशेष कांड संबंधी प्रभुलीला का अर्थ संकेत निहित है।

इसमे कोई सदेह नही कि कवितावली के अधिकतम छन्द उस काल के है जब कवि की मति स्थिर हो कर एकनिष्ठ हो गई थी, जब उसको न कुछ मनवाना था न सावित करना जब वह प्रभु की एक एक भृकुटि विलास मे उसकी महती कृपा और आपार करुणा के सन्देश पाता था। फलत: कवितावली अपने असली रूप मे उत्तरकाड मे देखी जा सकती है। पूरी कवितावली मे ३२५ छंद है जिनमें से १८३ छंद केवल उत्तर कांड मे है, दूसरे शब्दो मे अन्य कांडों मे कुल मिलाकर जितने छंद है उनसे कोई इकतालीस छंद अधिक केवल उत्तरकांड मे है। यह अकारण नहीं है। उत्तरकाड के छंदो मे जो आत्मचिंतन, जो आत्मनिवेदन, जो आत्म-समर्पण है, जगत् को खो कर प्रभु को पाने का जो उल्लास है और तज्जनित निश्चिन्तता और कृतकृत्यत्ता, वह उस आस्था और अनुभूति का सच्चारूप है जिसको मूर्तिमान करने की चेष्टा मे कवि अपनी सभी प्रौढ कृतियो में संलग्न है। अन्य काडो मे कथा कहानी का जो भी बहाना और आवरण था उसको दूर करके वह उत्तरकाण्ड मे अपने अन्तस्तल की बात कहता है। भला, बुरा, ज्ञानी. अज्ञानी, जो कुछ, जैसा कुछ भी वह है अपने प्रभु के श्री चरणों मे है और उन श्री चरणों मे आकर निश्चिन्त और आत्म विभोर है :

वेद न पुरान ज्ञान, जानौं न विज्ञान ज्ञान
ध्यान धारणा समाधि साधन प्रवीनता
नाहिंन विराग, जोग जाग भाग तुलसी के
दया दान दूबरो हौं पाप ही की पीनता
लोभ मोह काम कोह दोष कोष मोसों कौन
कलिहू जो सीखि लई मेरियै मलीनता
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं
रावरे दयालु दीन बन्धु मेरी दीनता ।

उसकी अनन्यता की थाह नही, सभी संघर्षो और झूठी ममताओं को त्याग कर वह अब अपने प्रभु से अभिन्न है :

मेरे जाति पाँति न चहौं काहू की जाति पाँति
मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को
लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब
भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को
अति ही अयाने उपखानों नहिं बूझैं लोग
'साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को'
साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच सोच कहा
का काहू के द्वार परौं जो हौं सो हौं राम को ।

और इस अनन्यता और अभिन्नता के अनुरूप ही उसकी निश्चिन्तता भी है :

जागैं जोगी जङ्गम, जती जमाती ध्यान धरैं
डरैं उर भारी लोभ मोह कोह काम के
जागैं राजा राजकाज सेवक समाज साज
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के
जागै बुध बिद्याहित पंडित चकित चित
जागैं लोभी लालच धरनि धन धाम के

जागैं भोगी भोगही, वियोगी रोग सोग बस
सोवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के

इस निश्चिन्तता की तह मे जो शरणागति जो आत्मानुभूति, प्रभु से जो घनिष्टता है वह अपने रंग मे विनयपत्रिका के पदों के इतने नजदीक है कि कोई आश्चर्य नही यदि इन छन्दो की रचना उसी समय हुई हो जब कवि विनय के अमर गीतों की सृष्टि कर रहा था। इनमे वही आत्मविश्वास, वही मनोदशा वही परिपक्वता है जो विनय के पदों मे कूट कूट कर भरी है। अनेक छन्दो मे तो वास्तविकता की ऐसी पकड़ है जैसे कवि जीवन की पराधीनता से मुक्त हो कर जीवन को सीधे आर पार देख रहा हो।

तौलौं लोभ लोलुप ललात लालची लबार
बार बार लालच धरनि धन धाम को
तब लौ बियोग रोग सोग भोग जातना को
जुग सम लगत जीवन जाम जाम को
तौ लौं दुख दारिद दहत अति नित तनु
तुलसी है किंकर विमोह कोह काम को
सब दुख आपने निरापने सकल सुख
जौ लौं जन भयो न बजाइ राजा राम को।

प्रभु का हो जाने के बाद वह सयोग वियोग, लोभ मोह, काम क्रोध की पराधीनता से मुक्त है और संसार और शारीरिकता को चुनौती दे सकता है क्यो कि अब वह सनाथ है, भयरहित है, वियोग, रोग, सोग, भोग की यातना का मारा वह तुलसी नही है जिसके जीवन का एक एक दिन एक एक युग के समान बीतता था। कवितावली के अन्तिम छन्दों मे तो वह जीवन के आर पार ही नही जीवन के उस पार भी झाँकता हुआ दिखाई देता है। कहते हैं कवि का अन्तिम छन्द यह है।

कुंकुम रंग सुअंग जितो मुखचंद सों चंद सों होड़ परी है
बोलत बोल समृद्धि चुवै अवलोकत सोच विषाद हरी है
गौरी कि गंग विहंगिनि वेष कि मंजुल मूरति मोद भरी है
पेखि सप्रेम पयान समय सब सोच विमोचन छेमकरी है

और इस एक ही छन्द मे उस सारी मधुरता, चित्रमयता, संगीत-मयता, गतिशीलता का निचोड़ खिच कर आ गया है जिनमे कवितावली के छन्दों का रस है। एक अद्भुत परिक्वता है ऐसे छन्दों में, कला की भी और अनुभूति की भी। ऐसा जान पड़ता है जैसे एक सुदीर्घ जीवन काल की संध्या मे शोक और विषाद से विमुक्त कवि मोदभरे, मंजुल, मंगलमय प्रतीको को प्रत्यक्ष देख रहा हो और एक शाश्वत जीवन के अमर सन्देश उसके कानो मे गूँज रहे हों।

प्रभु की रूपमाधुरी के चिन्तन मे, राम नाम के संकीर्त्तन मे, इस जगत की विषमताओं का रहस्य भेद कर एक नित नूतन रसमय जीवन मे, अपने और प्रभु के पारस्परिक सम्बन्ध को स्थापित करने मे ही तुलसी ने अपना जीवन विताया और यही वह विषय है जिनको लेकर कवितावली के सब से सुन्दर, सब से अधिक मर्मस्पर्शी छन्दो की रचना हुई है। फलत: यद्यपि ऊपर से कवितावली एक सग्रह ग्रन्थ दिखाई देता है फिर भी वह कवि की काव्य प्रतिभा और उसकी आस्थाओ और अनुभूतियो को व्यक्त करने वाली एक प्रतिनिध रचना है जिसकी वाह्य अनेकता के भीतर एक आधारभूत और आन्तरिक एकता है।

बारहवाँ अध्याय

शरणागति संगीत

रामराय, बिनु रावरे मेरे को हितु साँचो ?
विनय पत्रिका दीन की बापु आपु ही बांचो
हिए हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूछिए पांचो ।

विनय पत्रिका मे कवि और साधक तुलसी ने सही अर्थ में अपने को पाया है और तुलसी साहित्य मे उससे अधिक सच्ची और मार्मिक कोई कहानी नही जो 'हिए हेरि' उसने अपनी पत्रिका मे लिपिबद्ध की है। रामचरित मानस के अन्तस्तल मे भी राम की शरण मे आकर अमर जीवन और अक्षय आनन्द प्राप्त करने वालो ही की कहानी है परन्तु मानस की मनहर कहानी में हम अपना ही अर्थ पिरोने और अपनी ही मान्यताओं का आरोप करने मे इतने जुटे रहते है कि हमारा दृष्टि कोण विकृत हुये विना नही रहता और यदि हम कहानी के अर्थ को देखते भी है तो एक शीशे के उस ओर धुँधला सा आभास पाते है। इस दृष्टि से विनय पत्रिका का एक विशेष मूल्य है क्यो कि उसमे कवि अपनी खोज और कृतकृत्यता की कहानी विना किसी व्यवधान या दूसरे रंगों की मिलावट के, हृदय खोल कर, कहता है। जीवन के वह सभी प्रश्न, संघर्ष, आस्थाए जिन्होंने कवि के जीवन की रूप रेखाएँ निर्धारित की जैसे एक ही रचना मे एकत्रित होकर मुखरित हो उठी हैं।

अतएव यह विचित्रबात है कि साधारण पाठक के मन मे यह बात जमी हुई है कि विनयपत्रिका ज्ञान, वैराग्य और दार्शनिक समस्याओं से सम्बन्ध रखनेवाले गीतो का संग्रह ग्रन्थ है। विनय पत्रिका कोई अर्थ नही रखती यदि वह विनय नही वैराग्य का ग्रन्थ है और तुलसी की विनय नही वरन् एक सौ एक दार्शनिकों के

सिद्धान्तो का निचोड है। विनय एक अत्यन्त मानवीय, वादविवाद शून्य, निर्मल, सरल हृदय की पुकार है। और इस भ्रान्तिमूलक धारणा का कि उसमे दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन है कुछ कारण तो यह भी है कि हम उस पृष्ठभूमि का अर्थ संकेत नही ग्रहण कर पाते जिस पृष्ठभूमि मे इस ग्रन्थ की रचना हुई है। विदेशी आलोचको की नकल मे रचनाकाल और विषयवस्तु के वर्गीकरण के प्रश्नों की चर्चा करने के हम आज कल बहुत कायल है परन्तु यह चर्चा बिलकुल व्यर्थ और सारहीन होगी यदि तिथियो और पृष्ठभूमियों की छान बीन रचना के वास्तविक स्वरूप को पहचानने मे हमारी सहायता न करे। यदि हम यह धारणा लेकर चलते है कि विनयपत्रिका ज्ञान और वैराग्य सम्बन्धी गीतो की एक पिटारी है जिनमे कवि अपने स्फुट गीतों को समय समय पर डालता गया, तो हम उसको उस सजीव इकाई के रूप मे कभी नही देख सकेंगे जिस रूप मे वह एस अत्यन्त सहृदय कवि की आध्यात्मिक आत्मकथा है। तब तो कतिपय विदेशी आलोचको के मतानुसार उसमे हमें केवल विश्रृंखलता और अनियमन ही दिखाई देगा। परन्तु उस पृष्ठ भूमि के आलोक मे देखिये जिसमे पत्रिका लिखी गई तो उसका मजमून एक दूसरे ही रंग मे दिखाई देगा।

आप को उस अलौकिक कथा मे विश्वास हो या न हो जिसके अनुसार तुलसी से कलि इसलिए रुष्ट था कि वह राम नाम के नाते चुन चुन कर पतितो को पावन बनाता जाता था और अपना प्रभाव घटता देख कर कलिने जब कवि को बहुत सताया तो उसने अपनी विनय पत्रिका अपने और जगत् के प्रभु श्री राम के दरबार मे एक फरयादी की तौर पर पेश की, परन्तु इस बात के तो विनय मे ही निश्चित प्रमाण है कि तुलसी कलि से त्रस्त था कलि से और कलि परिवार काम, मोह, लोभ से सताए जाने के ही कारण उसको इस बात की व्याकुलता थी कि इस जीवन ही में प्रभु उसकी विनती स्वीकार कर लें। अतएव जब वह कहता है 'कलि विलोकि हहरयो

हो' तब वह विनय पत्रिका के रचना की सच्ची पृष्ठ भूमि बताता है।

अतएव तुलसी की विनय पत्रिका सब से पहले संसार और दुःख से पीड़ित, संतप्त, एक आर्त्त आत्मा की विनती, पुकार, प्रार्थना है।

वह लोग जो उपासना, आवाहन पूजन की विधियों से नहीं परिचित हैं अक्सर चकराते हैं कि विनय के प्रारम्भिक बयालीस पदों मे विविध देवी देवताओं की प्रार्थना क्यों है, कवि सीधे अपने विषय, राम स्तुति पर क्यों नही आ जाता। इसका एक सीधा कारण है। उसकी विनय पत्रिका इतना अधिक उसके आध्यात्मिक जीवन मरण का प्रश्न है, उसको ऐसी तीव्र अनुभूति इस बात की है कि यदि प्रभु ने उसकी पत्रिका स्वीकार न की तो दुष्ट कलि उसको अपने जाल मे फँसा लेगा कि वह अपने प्रार्थना पत्र की पैरवी मे कोई कमी नही रहने देना चाहता। अतएव जैसे वह रामचरित मानस के प्रारम्भ मे सभी के आगे नत मस्तक हो कर सभी की सद्भावना और सहायता चाहता है गौरी की, गणेश की, विष्णु की, शकर की, गुरु की, वैसे ही विनय के प्रारम्भ मे एक विशद स्तुति माला से उस वातावरण की सृष्टि करता है जो उसकी अपने जीवन की सबसे सच्ची प्रार्थना के लिए आवश्यक है। इस स्तुतिमाला की सौम्यता, उसके पदों की संस्कृत गर्भित शब्दावली की पवित्रता, उसके विशद सगीत की गम्भीरता में उपयुक्त और वाछित वातावरण तय्यार करने की जो शक्ति है उसको न पहचान कर हम उन्हे अक्सर अनावश्यक और भर्त्ती के पद समझते है और उन आलोचकों की बातों का समर्थन करते है जिनको विनय के पदों मे विशृङ्खलता और क्रमहीनता ही नजर आती है। मंगलाचरण का यदि कोई अर्थ है, पूजा स पहले उपयुक्त वातावरण तय्यार करने की यदि कोई उपयोगिता है, तो ऐसा विषद मंगलाचरण ऐसा सुन्दर आवाहन जैसा विनय के प्रारम्भ मे है और कही नही मिलेगा। सभी देवताओं की

विनती करके वह ग्रन्थ आरम्भ करता है—विघ्न विनाशक गणेश, तेज-प्रताप-रूप-राशि सूर्य, दीन दयालु, भक्त-आरति-हर शिव, दुसह दोष-दुख दलनि भगवती, जगदखिल पावनी सुरसरी निर्भरानन्द सन्दोह कपि केसरी हनुमान। यह सभी देवता प्रभु की खोज मे तुलसी के सहायक रहे है और सबसे उसकी यही एक विनती है। गणेश है तो 'मांगत तुलसी दास कर जोरे-बसहि राम सिय मानस मोरे, शिव' है तो 'देहु कामरिपु राम चरन रति-तुलसिदास कहँ कृपानिधान'; जगज्जननि भगवती है तो 'रघुपति पय परम प्रेम तुलसी यह अचल नेम देहु ह्वै प्रसन्न पाहि प्रनत-पालिका'।

तुलसी चुन चुन कर अनुकूल शक्तियो का ही आवाहन कर रहा है यह इससे भी प्रकट है कि वह उन स्थानो को भी नही भूलता जहाँ उसे अपनी आध्यात्मिक खोज की राह मे विश्रान्ति मिली थी। स्थानों की भी आत्मा होती है जो हमारी आत्मा की प्रगति मे हमारी सहायक होती है और यह अर्थहीन नही है कि जिन दो स्थानों की वह स्तुति करता है वह है चित्रकूट, 'अब चित चेति चित्रकूटहि चलु', और काशी 'तुलसी वसि हरपुरी राम जपु जो भयो चहै सुपासी'।

राम दरवार के अधिकारियो की तो वह भव्य प्रार्थना करता ही है—लक्ष्मण की 'जयति लछमनानंत भगवंत भूधर भुजगराज भुवनेस भूभारहारी,' भरत की, 'जयति भूमिजा-रवन-पदकंज-मकरद-रस-रसिक-मधुकर भरत भूरिभागी', शत्रुघ्न की 'जयति जय सत्रु-करि-केसरी सत्रुहन सत्रुतम-तुहिनहर-किरन केतु', अपने प्रतिपालक हनुमान जी की 'तेरे स्वामी राम से, स्वामिनी सिया रे, तहँ तुलसी के कौनको काको तकिया रे?' परन्तु माता सीता से जब वह विनती करता है तो उसका हृदय इतना द्रवित हो जाता है कि उसकी करुण कथा के मर्म स्पर्शी स्वरों में विनय पत्रिका के असली स्वर गूँज उठते हैं।

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाइ
दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ
नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहाइ
बूझिहैं सो है कौन ? कहिबी नाम दसा जनाइ
सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ
जानकी जगजननि जन की किए बचन सहाइ
तरै तुलसीदास भव तव नाथ गुनगन गाइ।

विनय पत्रिका का यह पद अनेक दृष्टियों मे अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस पद मे न केवल सारी विनयपत्रिका की भावभूमि अंकित है, इसी पद के आस पास स्तुतियों का क्रम समाप्त हो जाता है और विनय पत्रिका आरती और वन्दना की भावभूमि से बाहर निकल कर अपनी असली भावभूमि मे प्रवेश करती है। इस पद मे हमे पत्रिका के सच्चे, पकड़ के स्वरो की पहली प्रतिध्वनि सुनाई देती है—वही करुणा, वही आर्त्तनाद जिसकी प्रतिध्वनियाँ सारी पत्रिका मे गूँजती हैं, 'दीन सब अँग हीन छीन मलीन अघी कहाइ,' वही आशा विश्वास जो कवि का सब से बडा सम्बल है 'सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाय'। इस पद के आस पास पत्रिका अपने असली रंग मे दिखाई देने लगती है। विनय पत्रिका विनय पत्रिका से अधिक एक प्रणय पत्रिका, एक प्रणति पत्रिका का रूप ग्रहण कर लेती है। कवि जैसे आरती के थाल उतार कर रख देता है और दीपके प्रकाश की किरणों को अपने अन्तस्तल की ओर मोडता है। सजी सजाई रोबीली भाषा के बाँध जैसे टूट जाते हैं और कवि के गीतो मे एक अपूर्व आर्द्रता, एक अनुपम आत्मीयता, अनुभूति और प्रतीति से उत्पन्न एक अद्भुत सूझ बूझ आ जाती है। यहाँ से अन्त तक रचना मे एक आन्तरिक एकरसता है। भावों की चाहे जितनी लहरियाँ उठती हों, प्रणय की रीझ खीझ के चाहे जो जो पहलू सामने आते हों, परन्तु एक आध्यात्मिक जीवन के विकास और कृत-

कृत्यता की कहानी के रूप मे रचना मे जो विचित्र, व्याप्त और सूक्ष्म एकसूत्रता आ जाती है उस एकसूत्रता के धागे कलि से सताए जाने पर राजा राम के दरबार मे अर्जी गुजरने और उसकी सही होने के सुन्दर रेशमी धागों से भी अधिक मजबूत है ।

सबमे पहले तुलसी अपने आध्यात्मिक जीवन के मूलमंत्र रामनाम का गुण गान करता है । रामनाम के मंत्र से ही उसके दीन, दुखी, नीरस जीवन में परिवर्त्तन हुआ था और स्वभावतः वह बड़े यत्न से इस रत्न को सम्हालता है, अपने मन को सतर्क करता है अपने मार्ग की आपदाओं और प्रलोभनो पर दृष्टि डालता है । वह जानता है कि जिस मार्ग पर उसने कदम रक्खा है वह एकअग मार्ग है अन्यनता उसकी शर्त है और पपीहे की जैसी कठिन वह परीक्षा है जिसमे उसको उत्तीर्ण होना है :

राम राम रटु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा ।
राम नाम नबनेह मेह को मन हठि होहि पपीहा ॥
सब साधन फल कूप सरित सर सागर सलिल निरासा ।
राम नाम रति स्वाति सुधा सुभसीकर प्रेम पियासा ॥
गरजि तरजि पाषान वरषि पवि प्रीति परखि जिय जानै ।
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर पर परमिति पहिचानै ।
राम नाम गति, राम नाम मति, राम नाम अनुरागी ।
ह्वै गए हैं जो होंहिगे त्रिभुवन तेइ मनियत बड़ भागी ॥
एक अंग मग अगम गवन कर विलमु न छिन छिन छाहैं ।
तुलसी हित अपनो अपनी दिसि निरुपधि नेम निबाहैं ॥

स्वाति बिन्दु के लिए व्याकुल पपीहे का यह चित्र उसके मन में बसा हुआ है क्योंकि उसने स्वयं अपने जीवन मे भी व्याकुलता और विलम्ब के दिन काटे है, छिन छिन राह मे बैठ कर सुस्ताने के प्रलोभन ने उसको बिलमाया है परन्तु उसने यह भी भली भाँति देख लिया है कि

घोर भव नीरनिधि को पार करने के लिये नाम ही एक नाव है, और वह जगत के आकर्षक आकाश कुसुम जो बार बार भुलावे मे डालते हैं केवल धुआं कैसे धौरहर है जिनकी अपनी कोई वास्तविकता नही । नाम सम्बन्धी इन पदों में एक मार्मिक अनुभूति की सचाई है और इस अनुभूति की सचाई से पुष्ट होने वाली एक गहरी आस्था

सुमिर सनेह सों तू नाम राम राय को ।
संबल निसंबल को सखा असहाय को ॥
माय बाप भूखे को, अधार निराधार को
सेतु भव सागर को हेतु सुखसार को

अतएव वह पुकार २ कर अपनी अमर अनुभूति का आश्वासन दूसरों को भी मुक्त हृदय से देता है

भलो भली भाँति है जो मेरे कहे लागिहै
मन राम नाम सों सुभाय अनुरागिहै
राम नाम सों विराग जोग जप जागिहै ।
वाम विधि भाल हू न कर्म दागि दागिहै ॥
राम नाम काम तरु जोइ जोइ मांगिहै ।
तुलसि दास स्वारथ परमारथ न खांगिहै ॥

और यह जो पथ की कठिनाइयों और निराशाओं की बातें हैं यह भी उन्हीं की चलाई हुई है जिन्हों ने पथ पर पैर नही रक्खा और बाहर ही से वाक्य ग्यान के बल पर उसकी थाह लेना चाहते है । जिन्हों ने सहज भाव से रामनाम का आश्रय लिया है वे जानते है कि प्रभु अत्यन्त सुलभ हैं, सुलभ ही नही वह नित्य, सर्वत्र, सभी के साथ, जन के मन की प्रीति पहचान कर सहज स्नेह करने वाले हैं

मुनिमन अगम सुगम माई वापसों ।
कृपा सिंधु सहज सखा सनेही आप सों ॥

ऐसा न होता तो तुलसी के लिये तो कोई गति नहीं थी । और वह अपना यह अनुभव इन गीतों में बार वार दुहराता हे

पतित पावन राम नाम सो न दूसरो
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ॥
बेंचें खोटो दाम न मिलै न राखे काम रे
सोऊ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा राम रे

अपने जीवन के मूलमंत्र और अन्यतम अनुभूति की रूपरेखा खींच कर कवि स्वभावत: अपने और अपने प्रभु के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करता है। वह पाता है कि सच्चा स्वाभाविक, विश्वसनीय सम्बन्ध और सहारा तो प्रभु का है

खोटोखरो रावरो हौं, रावरे सों झूठ
क्यों कहौंगो, जानो सवही के मनकी
करम वचन हिए कहौं न कपट किये ऐसी
हठ जैसी गांठि पानी परे सन की ॥
दूसरो भरोसो नाहि बासना उपासना को।
वासव विंरचि सुर नर मुनिगन की ॥
स्वारथ के साथी मेरे हाथी स्वान लेवा देई।
काहू तो न पीर रघुवीर दीन जन की ॥

वह देखता है कि दुर्दिन और सुदिन प्रत्येक स्थिति मे अकारण कृपा करने वाले तो एक प्रभु श्रीराम ही है

सुसमय दिन द्वै निशान सब के द्वार बाजै।
कुसमय दसरथ के दानि तै गरीब निवाजै ॥
सेवा बिनु, गुन विहीन दीनता सुनाए।
जे जे तैं निहाल किये फूले फिरत पाए ॥

इन सेवाविनु गुनविन निहाल करने वाले प्रभु के अतिरिक्त त्रिभुवन त्रिकाल मे और कोई सत्ता ऐसी नही है जिसमे सब व्याप्त हो

सुर नर मुनि असुर नाग साहब तौ घनेरे
तौ लौं जौ लौं रावरे न नेकु नयन फेरे

त्रिभुवन तिंहु काल विदित वेद वदति चारी
आदि अन्त मध्य राम साहिवी तिहारी

अतएव वह सभी दूसरे नाते रिश्ते भुला कर एक राम को अपना जानता है क्यो कि त्रिभुवन त्रिकाल मे उन्ही से वह सनाथ है

तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी।
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो
मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसों।
ब्रह्म तू हौं जीव, तू ठाकुर हौं चेरो
तात मात सखा गुरू तू सब विधि हितु मेरो।
तोंहि मोहि नाते अनेक मानियै जो भावै
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन शरन पावै।

तुलसी की विनय पत्रिका का साहित्यिक और मानवीय दृष्टिकोण से सब से अधिक मनहर पक्ष वह निश्छल, सरल हृदयमंथन और व्याकुलता है जिसको उसने अनेक पदों मे विना किसी दुराव के अंकित किया है। यह जानते हुये कि उसकी सभी व्याधियों, कठिनाइयो का एक समाधान प्रभु के चरणों मे है उसको स्वभावत: एक नैसर्गिक परन्तु मर्मस्थल को छूने वाली पीडा और व्याकुलता इस बात की होती है कि द्वन्द्व, संशय, तृष्णा, लोभ मोह के संसार से उसका पीछा क्यों नहीं छूटता और अपनी स्वाभाविक सचाई और ईमानदारी से वह इस प्रश्न की गहरी छान वीन करता है। छान वीन का शब्द भी इस व्याकुलता के लिये उपयुक्त शब्द नही। छान वीन वौद्धिक स्तर पर होती है तुलसी के लिए यह प्रश्न उसके अस्तित्व का एक मात्र प्रश्न है उसके आध्यात्मिक जीवन-मरण का प्रश्न है। प्रभु को अपना जानकर वह इस प्रश्न का उत्तर पूछने जाचने और किसी के पास नही जाता। प्रभु के ही चरणों मे वह अपने प्रश्न रखता है और श्रद्धा और विश्वास पूर्वक आत्म प्रकाश की प्रतीक्षा करता है :

दीन बन्धु सुखसिंधु कृपाकर कारुनीक रघुराई
सुनहु नाथ मन जरत त्रिविध जुर करत फिरत बौराई
कबहुँ जोगरत, भोग निरत सठ, हठ वियोग बस होई
कबहुँ मोह बस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई
कबहुँ दीन मतिहीन रंकतर, कबहुँ भूप अभिमानी
कबहुँमूढ़ पंडित विडम्बरत, कबहुँ धर्मरत ग्यानी
कबहुँ देव जग धनमय रिपुमय, कबहुँ नारिमय भासै
संसृति सन्निपात दारुन दुख बिन हरि कृपा न नासै
संजम जप तप नेम धर्म व्रत बहु भेषज समुदाई
तुलसि दास भव रोग राम पद प्रेम हीन नहिं जाई

इस ससृति सन्निपात के मार्मिक और विषद चित्र विनय के पदों मे खीचे गए है और उनकी मार्मिकता और विशदता के कारण भी स्पष्ट है। उनमे कवि की एक अपनी समस्या है जो उस दृष्टि की विशदता के कारण जिससे वह उन पर चिन्तन करता है मानव मात्र की समस्या बन जाती है।

वह देखता है कि उसका जीवन और मानव जीवन रात दिन जन्म जन्मान्तर नाचते और स्वाँग भरते ही बीतता है :

बहु वासना विविध कंचुकि भूषन लोभादि भरयो
चर अरु अचर गगन जल थल में कौन स्वांग उबरयो
मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तो न हरयो
थके नयन पद पानि सुमति बल संग सकल बिछुरयो

इस रात दिन नाचने और स्वाँग भरने की मूर्खता उसको व्याकुल करती है। वह अपने मन मे पछताता है, अपना अपराध स्वीकार करता है, परन्तु उसकी व्याकुलता ऐसी विचार और विवेक की खिड़कियों को खोल देने वाली है कि अपनी व्याकुलता में वह और भी स्पष्ट रूप में देखता है कि सारी विपत्ति का मूल कारण विषय संग है। फिर भी

उसका करुण हृदय अपनी और दुख और शोक से व्याकुल मानव मात्र की दशा से इतना द्रवित है, मानव कठिनाइयों और विवशताओ की उसके भीतर ऐसी अच्छी सूझ बूझ है कि वह मोह पाश को दूर करने के कोई सस्ते, हृदय हीन नुसखे नही बताता। उस संसृति सन्निपात का जिसमे हम एक क्षण योगरत है, तो दूसरे क्षण भोगरत, कभी पाडित्य का ढोग रचते है तो कभी धार्मिकता का, किन्ही वाह्य उपायों से शमन हो सकता है. ऐसी दुराशा तुलसी को नही भरमाती। धर्म, व्रत, जप, तप, संयम रूपी भेषजों की सारहीनता मे वह परिचित है। प्रयास और अभ्यास की असलियत वह देख चुका है।

मोह जनित मल लाग विविध विधि।कोटिहु जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास निरत चित अधिक अधिक लपटाई॥

उसका अनुभव है कि यह 'अभ्यास निरत चित न केवल मोह जनितमल मे अधिकाधिक लिपटता जाता है वरन् केवल अभ्यास ही भर का होता ही है।

तुलसिदास कब तृषा जाय, सर खनतहि जनम सिरान्यो।

और उस सरोवर से कब किसकी प्यास बुझी है जिसके खोदने ही मे सारा जीवन व्यतीत हो जाय? तुलसी उस छिछले पानी मे नही है जहाँ से पर उपदेश कुशल दूसरों को उपदेश देते है। वह एक गहरे मंथन मे संलग्न है, एक नैसर्गिक पीडा से पीडित और उसके प्रश्न और उनके उत्तर उसके अन्तस्तल की गहराइयों की गूँज है। |उसका व्याकुल हृदय मुड मुड़ कर अपने प्रभु से ही पूछता है।

माधव मोह पास क्यों टूटै ?

बाहर कोटि उपाय करिय अभ्यंतर ग्रन्थि न छूटै
घृत पूरन कराह अंतरगत ससि प्रतिबिम्ब दिखावै
ईंधन अनल लगाव कल्पसत औंटत नास न पावै

तरु कोटर मँह बस विहङ्ग तरु काटे मरै न जैसे
साधन करिय विचार हीन मन सुद्ध होइ नहि तैसे
अंतर मलिन विषय मन अति, तन पावन करिय पखारे
मरइ न उरग अनेक जतन बलमीकि विविध विधि मारे
तुलसिदास हरि गुरु करुना बिनु विमल विवेक न होई
बिनु विवेक संसार घोर निधि पार न पावै कोई

एक घी से भरे हुए कडाह मे यदि चन्द्रमा की परछाई पड़ रही है और उसको आप हटाना चाहते है तो चाहे सौ कल्प तक आग और ईधन लगाकर घी औटाते रहिए फिर भी आप का सारा प्रयास निष्फल रहेगा और परछाही बनी रहेगी क्यों कि वाह्य उपाय अभ्यंतर की ग्रन्थि नही खोल सकते। अभ्यंतर की गाठ तो तभी जायगी जब अन्तः करण शुद्ध होगा और अहङ्कार मिटेगा। इसके लिए विवेक की आवश्यकता है। और विवेक के लिए वह प्रभु का ही आश्रय लेता है :

अस कछु समुझि परत रघुराया
बिनु तव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटै माया
वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन भवपार न पावै कोई
निसि गृह मध्य दीप की वातन्ह तम निवृत्त नहिं होई
जैसे कोइ इक दीन दुखित अति असन हीन दुख पावै
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न विपति नसावै
षटरस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै
बिनु बोले संतोष जनित सुख खाइ सोइ पै जानै
जब लगि नहि निज हृदि प्रकाश अरु विषय आस मन माहीं
तुलसिदास तब लग जग जोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं

तुलसी को क्या ग्राह्य है और क्या नही, उसकी अनुभूतियो के मूल स्रोत कहाँ हैं यह निर्धारित करने के लिए इस पद की एक निराली उपयोगिता है। संसार की विषमताओं, साधन प्रयास की असमर्थताओं,

और जन की असहायताओं की खूब छानबीन करने के बाद उसका निश्चित मत है कि मोह से मुक्ति का एक मात्र उपाय है प्रभु की कृपा और कृपा का तत्व अनुभवगम्य है। वाक्य ज्ञान मे निपुणता द्वारा न किसी का तम निवृत्त हुआ है न किसी को आनन्द रस का स्वाद मिला है। विद्वानों की नगरी काशी मे रह कर वाक्य ज्ञान निपुण शास्त्रियों की वाकपटुता और तार्किकों की बौद्धिक दॉव पेचों को उसने खूब देखा होगा और अपने विनम्र ढङ्ग, से ऑखे नीची किए हुए, वह इन विवादियों के तर्को को अपने मन में उलटता पटलता भी रहा होगा। विनय मे कुछ बड़े मार्के के पद है जिनमे वह अपनी गहन विचार शक्ति की तीव्र रोशनी उन तार्किकों की विचार शैली पर डालता है जो अंधेरी कोठरी मे बैठकर दीप की बातें कर कर के तम निवृत्त करना चाहते है और षटरस भोजन का वखान करके रसनाभूति का आनन्द लेना चाहते है। इन पदो मे वह केवल व्यंग नही कर रहा है वरन् तार्किकता और कोरी बौद्धिक विवेचनो की थाहे ले रहा है और स्पष्ट रूप से कहता है कि नित नवीन रसमय जीवन तार्किकता की सीमाओं के आगे है।

केसव कहि न जाइ का कहिए
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए
सून भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे
धोए मिटै न मरै भीति दुख पाइय इहि तनु हेरे
रविकर नीर वसै अति दारुन मकर रूप तेहि मांहीं
वदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै

प्रभु, तुम्हारी विचित्र रचना देख कर वाणी अवाक हो जाती है। कल्पना और विचार की शक्तियाँ व्यर्थ साबित होती है, इस विचित्रता के आगे वर्णन विवेचन जवाब दे जाते हैं, इसको तो समुझि मनहि मन

रहिए। वर्णन विवेचन करना ही हो तो यह कहा जा सकता है कि एक निराकार चितेरे ने एक ऐसी दीवार पर जिसका कोई अस्तित्व नही है ऐसे चित्र बनाए है जो बिना किसी रंग के हैं और इन असम्भव सम्भावनाओं पर एक उल्टी बात और भी है, यह अवास्तविक चित्र धोए नही मिटते, मृत्यु के भय से भयभीत रहते है, इन्हें देख के दुख होता है। एक और कल्पना कीजिए एक दारुण मगर का रूप मृग जल के बीच निवास करता है; यद्यपि उसके मुख नही है फिर भी जो मृगजल पीने जाते हैं उनको वह बिना मुख का मगर खा जाता है। एक वाद विशेष के अनुयायी इसको मिथ्या कहते है, दूसरे वाद वाले सत्य बताते है और एक अन्य मतावलम्बी इसको सत् और असत् दोनों ही मानते हैं परन्तु तुलसी का अपना अनुभव तो यही है कि इन तीनों भ्रमों को त्यागे बिना अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानना असम्भव है और वही अपने को पहचान सकता है जो इन तीनो से ऊपर उठ सके।

तुलसी जान बूझ कर इस पद मे ऐसी असम्भव सम्भावनाओं की भीड़ इकट्ठा करता है जो समझ मे न आ सकें। प्लेटो ने अपनी 'रिपबलिक' मे एक चिरस्मरणीय शब्द चित्र उस दार्शनिक का खीचा है जो खयाली ताने वाने बुना करता है। प्लेटो के शब्दों मे वह 'एक धनुर्धारी है जो धनुंधारी नही है, जो निशाना लगा रहा है परन्तु निशाना नही लगा रहा है, एक पक्षी पर जो पक्षी नही है, और बैठा हुआ है परन्तु नहीं बैठा हुआ है, एक वृक्ष पर जो कोई वृक्ष नहीं है, और उसको मार डालता है परन्तु नही मार डालता, एक बाण से जो बाण नही है।

तुलसी की पंक्ति 'सून भीति पर चित्र रग नहिं तनु विनु लिखा चितेरे' बरबस प्लेटो की विख्यात परिभाषा की याद दिलाता है। उसका उस प्रकार का सीधा व्यंग नही है जैसा सूर का 'निरगुन कौन देश को वासी' न उसकी इच्छा उपहास करने की है परन्तु समस्त पद का स्पष्ट आशय है कि तार्किकता की सीमाएँ है और अपनी सीमा के आगे

उसकी गति नही है। यह चेतावनी उस शरणागति और कृपा की रूप रेखा स्पष्ट करने के लिये अत्यन्त आवश्यक है जो तुलसी की अन्यतम अनुभूति और विनय के हर एक गीत की टेक है। और तुलसी को यह आवश्यक चेतावनी देने से यह बात एक क्षण के लिये नही रोकती कि जिस साम्प्रदायिकता से ऊपर उठने के लिये वह कहता है उसका नाम शंकराचार्य के साथ जुटा है या रामानुज के या निम्वार्क के। साथ ही साथ इस पद मे उन सभो के लिए भी स्पष्ट चेतावनी है जो उसके पदों मे विशेष सिद्धान्तो या दार्शनिक विचारधाराओ की पुष्टि के लिये प्रमाण ढूंढा करते है।

विनय पत्रिका मे हम चाहे तो कवि के आध्यात्मिक जीवन के उतार चढाव की पूरी कहानी पढ सकते है—कैसे एक एक प्रश्न उसके मन मे उठता है, एक हृदयमंथन का रूप ग्रहण करता है, कैसे वह समाधान विकसित, पुष्पित, पल्लवित होते है जिनके फल स्वरूप उसको एक अपूर्व शान्ति मिलती है। यह कहानी उतनी ही रोचक है जितनी मानव मात्र के हृद्गत आशाओ आकांक्षाओं से जुटी हुई। वह जानता है कि मन विकाररहित हो जाय तो वह संकल्प विकल्प 'द्वैत जनित संसृति दुख' से मुक्त हो जाय परन्तु वह यह भी जानता है कि मन के विकारों पर उनसे लड़ कर विजय नही प्राप्त किया जा सकता। 'जोग जाग जप विराग तप सुतीर्थ अटत, बाँधिवे को भव गयन्द रेनु की रज वटत'। अतएव वह धूल की रस्सी तो बटता नहीं और न उनका सहारा लेता है जो स्वयं मोहग्रस्त हैं 'देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया बिबस विचारे, तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपुनपौ हारे।' कलि के अनुचरो से पीछा छुड़ाने के लिये जव वह राम के दरबार में शरण लेता है तो बहुत से दरवाजों को खटखटा चुकने और अनेक सस्ते और खोखले साधनों को जाँच और परख चुकने के बाद। उसकी शरणागति की पृष्ट भूमि मे केवल विवशता नही है वरन विविध साधनों और वादो के भीतर पैठ कर उनकी वास्तविकता को देख सकने वाली विवेक दृष्टि। वह

जानता है कि वह जो छुटकारा चाहता है और जिससे छुटकारा चाहता है दोनों प्रभु मे ही निहित, उसी से प्रेरित है अतएव वह बड़े मार्मिक स्वरो मे कहता है

ताहि ते आयो सरन सबेरे।

ग्यान विराग भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ न मेरे।
लोभ मोह मद काम क्रोध रिपु फिरत रैन दिन घेरे॥
तिनहिं मिले मन भयो कुपथरत फिरै तिहारेहि फेरे।
दोषनिलय यह विषय सोक-प्रद कहत संत स्रुति टेरे॥
जानत हूँ अनुराग तहां अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे।
विष पियूषसम करहु अगिनिहिम तारि सकहु विन बेरे।
तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइयौं हेरे॥
यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुवीर भरोसे तेरे।
तुलसिदास यह विपति बाँगुरो तुमहिं सो बनै निबेरे॥

यह प्रकाश कि सभी कुछ हरि प्रेरित है और विपति बाँगुरे जन की पीर सर्व समर्थ प्रभु के अतिरिक्त और कोई नही हर सकता विनय के सभी चोटी के पदो को प्रकाशित करता है । घूम फिर कर कवि बार बार इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है 'तुलसिदास यह विपति बाँगुरो तुमहि सो बनै निवेरे' 'तुलसिदास प्रभु मोह श्रृंखला छुटिहि तुम्हारेहि छोरे' 'तुलसिदास यह जीव मोह रजु जोइ वाध्यों सोई छोरे' ।

इसको शरणागति की पराकाष्ठा कह सकते है और सच पूछिये तो यही शरणागति का सच्चा स्वरूप है । अपनी सभी आशाओ आकाक्षाओं को प्रभु के चरणो में अर्पित करके जिस निश्चिन्तता, जिस विश्राम जिस कृतकृत्यता का कवि अनुभव करता है उसी मे विनय के पदों की सारी सरसता है । भगवत्कृपा की छत्रछाया मे आकर जैसे सभी आशंकाएँ, सभी भय, सभी उद्वेग समाप्त हो गये हो और बालक अपने माँ बाप के राज्य मे पहुँच गया हो । 'तुलसी सुखी निसोच राज ज्यो बालक माय

बबा के' जो भी नाते रिश्ते उसके इस नाते की राह मे आते हैं वह सब अब उसे खटकते हैं

जाके प्रिय न राम वैदेही

तजिये ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही ।

सभी नाते रिश्ते एक ही नाते मे आकर विलीन हो गये हैं 'नाते नेह राम सों मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौ'; और उसके इस दृष्टिकोण मे जो कुछ भी वाधक है वह चाहे साधन के रूप मे ही आवे तुलसी के लिये उसका कोई मूल्य नही। उस साधन रूपी अंजन को ले कर वह क्या करे जो उसकी दृष्टि को विकृत कर दे 'अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौ' ।

अपने प्रभु के प्रेम और उसकी कृपा के रस मे वह ऐसा रमा है कि न तो उसके हृदय मे कोई कामना है न कर्म के दण्डों का कोई भय। वह उस दुनिया से कही ऊपर उठ चुका है जो कामना, कर्म, ऋद्धि, सिद्धि की दुनिया है ।

यह विनती रघुबीर गुसाँई

और आस विस्वास भरोसो हरौ जीव जड़ताई।
चहौं न सुगति, सुमति, सम्पति कछु रिधि सिधि विपुल बड़ाई
हेतु रहित अनुराग राम पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई।
कुटिल करम लै जाइ मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई
तहँ तहँ जनि छिन छोह छांड़िए कमठ अंड की नाईं।
या जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई
ते सब तुलसिदास प्रभु हीं सो होंहिं सिमिटि इक ठांईं।

प्रभु की कृपा के अतिरिक्त सभी आशाओं, विश्वासों, भरोसों का परित्याग करने वाली, सुगति, सुमति, संपत्ति, ऋद्धि, सिद्धि, मान, प्रतिष्ठा को ठुकराने वाली, कर्म को भी चुनौती देकर आगे बढने वाली यह विनती

प्रभु तक पहुँची होगी इसमे सन्देह नही, क्यों कि ऐसे अनुदिन बढने वाले हेतु रहित अनुराग के पहुँच की कोई सीमाएँ नही है। और न इसमे किसी को आश्चर्य होगा कि (विनय पत्रिका के अन्तिम पदो के अनुसार) जब यह विनती प्रभु के दरबार मे पहुँची तो प्रभु की कृपा और करुणा के सच्चे मर्मज्ञो, हनुमान, भरत, लक्ष्मण सभी को यह विनती बहुत रुची, सभी ने एक स्वर से इस बात का समर्थन किया कि कलिकाल मे भी प्रभु के नाम से प्रीति प्रतीति रखने वाला कोई हुआ, जिसकी प्रीति निभ गई ! पद के अनुसार इस मर्मस्पर्शी प्रेम पुकार को सुन कर भरी सभा मे, सब के देखते देखते गरीबनेवाज राजा राम ने गरीव कवि की बाँह पकड़ी, उसको अपनाया और विहँस कर कहा 'सत्य है सुधि मै हूँ लही है'।

कवि की प्रणति और प्रभु की स्वीकृति का यह अमर गीत विश्व के गीत साहित्य मे अद्वितीय है और अद्वितीय रहेगा क्यो कि वह आत्मीयता, रसमग्नता, सारी प्रीति प्रतीति सगाई का एक ही प्रेमास्पद मे केन्द्रित होना जो विनय पत्रिका के गीतो के जीवन प्राण है सच पूछिये तो गीति काव्य के भी उतने ही जीवन प्राण है। गीति काव्य की इधर उधर के नमूनो के आधार पर गिनाई गई नई नई परिभाषाओ को विनय के पदों पर लागू करके उनके साथ अक्सर बड़ा अत्याचार किया जाता है। गीत विषयीगत होना चाहिए, उसमे एक विशिष्ट और क्षणिक मनोदशा अंकित की जाती है, उसके लिए उपयुक्त विषय मानवीय प्रणय, विरह, आसक्ति, क्षोभ ही हैं इन पिटी हुई परिभाषाओं के आधार पर न जाने कितने सुन्दर मार्मिक गीत गीति काव्य के क्षेत्र से वहिष्कृत किए गए हैं। परन्तु असलियत तो यह है कि गीत की परिभाषा के पीछे न पड़ कर यदि हम गीतात्मकता को ढूंढें तो गीतों की हमारे पास अधिक सच्ची पहचान होगी। क्योंकि गीतात्मक भाव, गीतात्मक अनुभूति तो एक चीज है जो काव्य मात्र की प्रेरक और संजीवनी शक्ति है परन्तु परिभाषाओं की हथकड़ियों वेड़ियों में

जकड़े हुए गीतों का स्वरूप न केवल एकांगी होता है वरन् अक्सर विकृत भी। मानस के काव्य रूप की परीक्षा करते हुए हमने देखा कि यद्यपि मानस का चित्रपट अत्यन्त विशाल है, उसमे प्रसंगों और संवादों की भरमार है, उसका आकार प्रकार एक महाकाव्य का है, फिर भी कवि की स्वाभाविक प्रतिभा इस प्रकार की है, वह अपने अन्तस्तल की आस्थाओं और अनुभूतियों को मूर्तिमान् करने मे ऐसा तल्लीन है कि उसके महाकाव्य ने एक दृष्टि से देखिए तो एक महान् प्रेम संगीत का रूप धारण कर लिया है। इसके विपरीत विनय के पदों मे कवि एक संकुचित क्षेत्र मे काम करता हुआ व्यापक और शाश्वत तथ्यो का उद्घाटन करता है। यह व्यापक और शाश्वत तथ्य विनय मे भी वही है जो मानस मे अर्थात् यह कि राम के प्रेम मे लीन हो कर ही अन्तर्दृष्टि, शान्ति और आनन्द की ;उपलब्धि हो सकती है; परन्तु विनय के पदो मे यह अनुभूति काव्य रूप की माँग के प्रभाव में हृदय पर सीधा चोट करती है। न जाने कैसे अनेक पाठकों के मन में यह धारणा जम सी गई है कि विनय पत्रिका के गीतों में जटिल दार्शनिक प्रश्नों और ज्ञान वैराग्य की बातो को पाठक के गले के नीचे उतराने की कोशिश है। सच तो यह है कि उनमे दार्शनिक जालों को काट कर अनुभव के मुक्त आकाश मे विचरने की ऐसी प्रवृत्ति है, उनको कवि ने अपने और अपने राम के पारस्परिक सम्बन्ध के निवेदन और उद्घाटन का ऐसा सरल रागात्मक माध्यम बनाया है कि जिस काव्यरूप को उसने इस अभिव्यक्ति के लिये चुना है उसमे एक अभूतपूर्व गहराई, एक नवीन क्षमता आगई है और इस काव्य रूप का उसके अनुभूतियों से आन्तरिक और सहज सम्बन्ध देखे बिना हम विनय के पदों को उनकी पूरी सुन्दरता मे नही देख सकते।

कुछ आलोचको का मत है कि गीतों के लिखने वाले कवि की दृष्टि ऐसी वैयक्तिक, सीमित, सापेक्ष होती है कि वह जीवन के व्यापक, सम्पूर्ण सत्य को न देखता है न व्यक्त करता है। ऐसे शास्त्रज्ञों

ने यह धारणा बना ली है कि गीत में जीवन के केवल किसी एक पहलू या स्फुट भावना या क्षणिक मनोदशा ही को अंकित किया जा सकता है। गहरी अनुभूतियों या विश्वव्यापी तथ्यों की ओर गीतकार की न नजर ही जाती है न गीत की सीमित चहार दीवारियो के भीतर महान सत्यों का दर्शन ही किया जा सकता है।

इसमे सन्देह नही कि विनय के पदों मे जीवन और सत्य को पाने की गहरी खोज है, उनमे भौतिक जगत् की विवशताओं का अतिक्रमण करके एक आनन्दमय जगत मे प्रवेश करने और उस जगत के वातावरण को सहज और स्वाभाविक बनाने का खुला और मार्मिक प्रयत्न है। स्वभावतः उनमे गहरे अर्थ संकेत हैं, पाठकी ने उनमे गहरे अर्थ वैठाए हैं और वह गहरे अर्थो से भरे है। उच्च कोटि के काव्य का यह गुण है कि आप उसमें जितने गहरे पैठिए वह उतने ही गहरे अर्थ संकेत देगा क्योंकि उच्चकोटि का काव्य नित नूतन और न घटने वाले आनन्द का स्रोत है। परन्तु यह सब होते हुए भी इन पदों का प्रधान आकर्षण केवल उनकी गम्भीरता नही है, वरन् वह भावशीलता, वह गीतात्मकता, वह सरल आत्माभिव्यक्ति, वह आत्मीयता जिसके कारण पाठक का हृदय अक्सर विना अर्थ की गम्भीरता की छान बीन किए ही उनकी ध्वनि उनके लय, उनके संगीत मे वंध जाता है।

ऐसो को उदार जग मांही
विनु सेवा जो द्रवै दीन पर सम सरिस कोउ नाहीं

पहली ही पंक्ति में गीतात्मकता का रंग तरंगित हो उठता है और पाठक के हृदय को भी तरंगित कर देता है क्योंकि गीतात्मकता एक गुण है जो बरबस हृदय को पकड़ता है। दूसरी बात यह कि विनय के पदों मे कवि की निजी अनुभूति है जिसके कारण उनमे एक विशिष्ट साक्षात्कार की झलक है। कवि ने कुछ देखा, कुछ सोचा, कुछ समझा, सत्य की खोज मे एक नई सूझ का उसके मन में उदय

हुआ, इस सूझ की सचाई से वह पूर्णतया प्रभावित हुआ और यह नवोदित सूझ या अनुभूति जब उसके रोम रोम मे बस गई तो उसने इस एकत्रित और घनीभूत अनुभूति को थोड़े से थोड़े परन्तु सरस संगीतमय शब्दों मे व्यक्त कर दिया। उसकी अनुभूति की गहराई और तीव्रता ऐसी उत्कट होती है कि पद को उठाता तो वह एक केन्द्रीभूत अनुभूति से है परन्तु अन्तिम पंक्ति तक आते आते समस्त पद एक व्यापक अर्थ संकेत देने लगता है। कोई पद ले लीजिये, इस सुपरिचित पद को ले लीजिए :

अस कछु समुझि परत रघुराया,
बिनु तव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटै माया।
वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई,
निसि गृह मध्य दीप की वातन्ह तम निवृत्त नहिं होई।
जैसे कोइ इक दीन दुखित अति असन हीन दुख पावै,
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न विपति नसावै।
षटरस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैन वखानै,
बिनु वोले संतोष जनित सुख खाइ सोइ पै जानै।
जब लगि नहिं निज हृद प्रकास अरु विषय आस मन माहीं,
तुलसिदास तब लगि जग जोंनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं।

पहली ही पंक्ति मे इस जगत की पहेली से चकित खोज करने वाले की विह्वलता गूँज उठती है और दूसरी ही पंक्ति मे प्रश्न का पूरा सुनिश्चित समाधान भी है। आगे की छ पंक्तियों में इस सूक्ष्म खोज और पकड की चित्रमय रूपरेखा ऐसे सुगम सरल हृदयग्राही ढंग से की गई है जैसे खोज करने वाला अपनी खोज के फल को हाथ मे ले कर नचाता हो और फिर अन्तिम दो पंक्तियों मे कवि जो व्यापक तथ्य, प्रकाश हीन मन की पथ भ्रष्टता और विवशता, दिखलाता है वह समस्त पद को एक मनोदशा की अभिव्यक्ति की कोटि से

निकाल कर एक संसार व्यापी हाहाकार का शमन करने वाला आशीर्वचन बना देता है। यह वैयक्तिक उद्गार को व्यापक संकेत देने का कौशल कवि ने विनय के दो चार पदों मे ही नही दिखलाया है यह कौशल विनय के अधिकाश पदो मे दिखाई देगा। एक और बात इन पदो के विषय मे ध्यान रखने की है। हमे चाहिए कि प्रत्येक पद को हम उसकी सम्पूर्णता मे देखें, अलग अलग पंक्तियों का अलग अलग अर्थ करके उस प्रभाव की एकता को विकीर्ण न करें जो निश्चित रूप से प्रत्येक पद मे विद्यमान है। उपरिलिखित पद मे ही आत्मज्ञान और विषय त्याग सम्बन्धी अनेक प्रचलित विचार पद्धतियों के माप दण्ड लगा कर हम उसके प्रभाव को तितर बितर कर सकते हैं परन्तु यदि हमने पकड़ के स्वरों को पहचान लिया 'बिनु तव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटै माया' तो अन्य विषय-त्याग और आत्म-ज्ञान सम्बन्धी स्वर अपने आप ही अपनी ठीक जगह पर बैठ जाँयगे और पद के संगीत में घुल मिल जाँयगे।

यह प्रभाव की एकता गीतात्मक काव्य का एक बहुत बडा गुण है और विनय के पदों में यह अत्यन्त सुस्पष्ट और सुरुचिपूर्ण ढंग से अंकित होता है। सभी पदो की पहली पंक्ति मे जो प्रश्न या जिज्ञासा या विनय, पुकार या उद्गार उठाया जाता है उसका हृदय को तृप्त कर देने वाला समाधान पद के समाप्त होते होते जरूर मिल जाता है और इस समाधान के प्रकाश मे ही पद का प्रभाव हृदय मे अंकित और विकसित होता है। कवि ने अपने जीवन मे जो आन्तरिक अनुभव प्राप्त किया है उसके कारण उसमे जो अनन्यता, जो विश्वास की स्पष्टता और दृढता आगई है उसके प्रकाश मे ही वह अपनी भावनाओं को ढालता और मूर्तिमान करता है। अतएव उन काव्यमय मूर्तियों मे जो वह सँवारता है उसकी आन्तरिक अनुभूति साफ झलकती है और उसके पदो को एक अपूर्व एकरसता देती है।

इन गुणो के अतिरिक्त एक और गुण जो विनय के पदों को

गीतात्मक काव्य की अनुपम रचनाएँ बना देता है उनकी अकृत्रिमता है। गीतात्मक काव्य मे जहाँ बनावट आई उसमे अलंकार, जटिल तार्किकता, चतुरता, आडम्बर लाने की चेष्टा की गई वही उसकी स्वाभाविक सरलता और सद्यः स्फूर्ति विनष्ट हुई। तुलसी के पदों मे ऊँची से ऊँची भावनाएँ ऐसे सरल, स्वाभाविक ढंग से व्यक्त हुई है कि वे कवि हृदय से उठकर पाठक के हृदय मे सीधे बैठ जाती हैं।

वह साहित्य शास्त्री जो विनय के पदो मे विविध अलंकारो के उदाहरण ढूँढते हैं उनका स्वरूप नही पहचानते। गीतों का सबसे बड़ा अलंकार उनकी अलंकारहीनता है और विनय के पद तो स्वाभाविक सरल अभिव्यक्ति के ऐसे अनुपम नमूने है कि अलंकारिक कविता का स्तर इन पदों के नैसर्गिक स्तर से बहुत नीचे छूट जाता है।

वह आत्मीयता का भाव जो गति काव्य की जान है विनय पत्रिका के पदों मे फूटी पडती है। 'जाऊँ कहाँ तजि चरन तिहारे'। यह अपनत्व और निकट सम्बन्ध का स्वर विनय के पदो की ऐसी सच्ची बोल है कि कोई सहृदय पाठक उससे प्रभावित हुए बिना नही रह सकता है।

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ,
मेरियौ सुधि द्याइवो कछु करुन कथा चलाइ।

यह आत्मीयता ऐसी गहरी, सच्ची, वास्तविक है कि वह अनुनय विनय तक ही सीमित नही है वरन् कवि अधिकार पूर्वक आग्रह, हठ, उलहाने, सभी उपायों से अपने प्रिय की कृपा दृष्टि आकृष्ट करता है।

हौं अवलौ करतूति तिहारिय चितवत हुतो न राबरे चेते,
अब तुलसी पूतरो बाँधि है सहि न जात मोपै परिहास ऐते।

और यह प्रेम सम्बन्ध पूर्णतया हेतु रहित प्रेम के लिये प्रेम है।

गीतात्मक काव्य के यह सारभूत गुण विनय के पदों को गति काव्य की उच्चत्तम कोटि में स्थान देने के लिए पर्याप्त हैं और यदि इन गुणों को पहचान कर हमारे साहित्य की गति काव्य परम्परा बनी होती

तो हमारे गति काव्य का रूप रंग कुछ और ही होता। जो तन्मयता, जो आत्मीयता, जो आत्मविस्मृति, जो सद्यःस्फूर्ति, जो प्रभाव की एकता, जो एक वैयक्तिक मनोदशा मे व्यापक अर्थ सकेत भरने की क्षमता विनय के पदों मे है वह न तो फिर किसी हिन्दी कवि को नसीव हुई और न उसके वास्तविक मूल्य को हम आँक ही सके।

इन पदों की भाव भूमि और अपना निजी रस तो हम तभी पा सकते है जब हम उनको उसी सगीतमय रूप मे देखे जिस रूप मे स्वयं कवि के मन मे वह पद उतरे थे और जो रूप गति काव्य का विशिष्ट रूप है। गीतो का संगीतात्मक होना गीतात्मकता की सबसे बड़ी माँग है। तुलसी के मन मे विनय के पद तो संगीत के रूप मे उतरे ही थे। उनके स्वर, उनके राग, उनकी शब्दावली की गुरुता लघुता, उतार चढाव, आरोह अवरोह, सम, विराम उनके हृदय में गूंजे थे। वह छन्दः शास्त्र की त्रुटियां और यतिभंग की गलतियां जो पिगलाचार्य कभी-कभी विनय के पदो मे ढूंढकर निकालते है अकसर इसी लिये दिखाई देती है कि इन कोरे आचार्यो ने कभी उनको अपने उस संगीतमय रूप में देखा ही नही जो उनका अपना असली रूप है। विनय के पदो के निर्माता ने अपने शब्दो का चुनाव उनके संगीतात्मक मूल्य को जाँच कर किया है। सगीत के लय और ताल के साथ वे ऐसे स्वाभाविक नैसर्गिक ढग से बैठते है कि उनके अतिरिक्त और कोई शब्द संगीत की उस माग को पूरी नहीं कर सकते जो कवि के मन मे है। काव्य और सगीत का ऐसा मणि काचन संयोग जैसा इन पदों मे है और कहीं ढूँढे नही मिलेगा क्योंकि इन पदों मे दो प्रकार का संगीत है एक तो वह स्वर, लय तालो का सगीत जिसमे गायक उनको बाँधते है और इससे भी अधिक सूक्ष्म और हृदय ग्राही वह संगीत जो कवि के संगीतमय शब्दों के चुनाव और उनके क्रम से उत्पन्न होता है।

जहाँ तक गीति काव्य के क्षेत्र मे तुलसी की देन का सम्वन्ध है तुलसी के समय तक हिन्दी गीत का स्वरूप बहुत कुछ निखरने और

सँवरने लगा था और इस निखार सँवार में अनेक प्रभावों और कई चोटी के कवियों, सन्तों और गायकों का हाथ था । प्रभाव तो संस्कृत के उन स्तोत्रों का भी तुलसी के गीतों पर है जिनने कवि ने प्रभु की महिमा का विविध छन्दों मे वखान किया है और जिनमें संस्कृत की स्वाभाविक गरिमा दिखाई देती है ।

जयति कोसलाधीस कल्यान कोसलसुताकुसलकैवल्यफल चारुचारी

जयदेव के गीतों की संगीतमयता और कोमल कान्तपदावलो को भी याद तुलसी के कुछ पदों मे आ जाती है ।

कटि तट रटति चारु किंकिनिरव अनुपम वरनि न जाई ।
हेम जलज कल कलित मध्य जनु मधुकरमुखर सुहाई ।।

संस्कृत के स्तोत्र, जयदेव की कोमलकान्त पदावली, विद्यापति के मैथिल लोक धुनो, भजनानन्दी साधुओ सन्तों की वानियों मे जिस गीति काव्य के वसन्त काल के पूर्वाभास मिलते हैं उसकी कलिकाएँ तुलसी के पदापर्ण के पहले ही खिलने लगी थी । इस अनुपम वसन्त काल के अग्र दूत थे कवीर, मीरा, सूर जिनके प्रभु मे निरत जीवन का सुन्दरतम अंश अब भी उनके अमर गीतों मे जीवित है । निस्सन्देह जो आध्यात्मिक और काव्यमय जगत् तुलसी को उत्तराधिकार मे मिला उसके वातावरण मे गीत गूँज रहे थे परन्तु जो परिश्रम आलोचक यह दिखलाने मे करते है कि किसने किसके पद की नकल की या उसे अपना लिया वह परिश्रम यदि यह देखने मे करे कि किस के गीत का क्या विशिष्ट रंग है और किस प्रकार एक कवि के गीतो के रूप का उसकी अनुभूतियों से घनिष्ठ सम्बन्ध है तो काव्य के रसास्वादन के सच्चे अभिप्रायो की अधिक पूर्ति हो सकती है क्योकि इन अमर गीतकारो मे से किसी को कोरी साहित्यिकता इतनी प्रिय नही थी जितनी कि आत्माभिव्यक्ति । कवीर, मीरा, सूर, के गीतो का अपना अपना अलग रंग है उनकी अपनी अपनी अलग विशेषताएँ है । कवीर की अनुभूतियाँ रहस्यमय थी, उनके भीतर एक

ज्ञानी का चिंतन था। स्वभावत. उनके 'प्रियतम' मे उस रूप माधुरी का आकर्षण नही है जो तुलसी के राजीव लोचन राम मे है। मीरा की कविता मे गीतात्मकता का सच्चा स्वरूप जैसे मूर्तिमान हो कर जाग उठा है। जो संगीतात्मकता, सरसता, हृदय का क्रन्दन गीति काव्य की आत्मा है वह मीरा के गीतों के रग रग मे बसा है। ऊँचे से ऊँचा आध्यात्मिक सत्य मीरा के लिए एक मर्मानुभूति बन जाता है, हृदय का एक स्पन्दन, प्रियतम का प्रेम व्यापार, 'हे री मै तो दरद दिवाणी मोरा दरद न जाणै कोय'। फलत· मीरा के पदो मे एक अपूर्व विह्वलता, तीव्रानुभूति की पीर है। सूर के गीत अत्यन्त सुसंस्कृत, शास्त्रीय राग विधान की कसौटियो पर पूरा उतरने वाले, काव्य शास्त्र की छन्द-रस-अलंकार योजना के वशवर्त्ती सरस गीत है। अपने सखा और प्रभु की लीलाओ मे उत्पन्न होने वाली दशाओ की मार्मिक और सूक्ष्म अभिव्यक्ति ही उनके गीतो का परम ध्येय है।

गीत काव्य की यह सारी परम्परा तुलसी के सामने थी, उसके युग मे उसके चारों ओर के वातावरण मे परिव्याप्त थी। तुलसी ने स्वान्त: सुखाय, आत्माभिव्यक्ति के सुख के लिए जो पद विनय पत्रिका मे लिखे हैं उनमे इन सभी परम्पराओ के उच्चतम गुणों की छटा दिखाई देती है। गीति काव्य के विषय वस्तु को जो गहराइयाँ और विस्तार, उसको जो स्फूर्ति और अकृत्रिमता कबीर से मिली वह तुलसी के गीतों मे भी है, मीरा की मर्मानुभूति और विह्वलता ही तो उसके आत्मनिवेदन और आत्माभिव्यक्ति के मूल में है; सूर की संगीतात्मकता सुरुचि, रूप रसमग्नता तुलसी के पदों में भी कम नही है परन्तु इस सारी सामग्री के साथ साथ और उससे अधिक तुलसी के गीतों मे कुछ और भी है और वह और कुछ न केवल समन्वय है न नवीनता वरन् अनुभूति की माँग द्वारा निर्मित ऐसी गीति शैली जिसके न कोई अनुयायी हैं न प्रति स्पर्धी। उसके गीतों की तह मे एक खोज और खोज के अन्त मे पाई जाने वाली विश्रान्ति की अनुपम निर्द्वन्द्वता है—एक ऐसी शरणागति

जिसमे उसका अपना सारा अपनापन विगलित होकर धुल गया है और वाह्य संसार के सभी प्रपंच और प्रयास समाप्त हो चुके हैं। ज्ञान की धूनी रमा कर उसे किसी को सुधारना फटकारना नही है, न उसका भावावेश ऐसा उत्कृष्ट और दुर्दमनीय है कि अपना संतुलन खो बैठे, न उसकी भक्ति किसी पद्धति या मार्ग से सन्तुष्ट और सीमित रहने वाली है। सच तो यह है कि उसकी शरणागति भक्ति भावना तक सीमित नही है। उसका ज्ञान प्रभु की कृपा से उसके हृदय मे स्वतः उत्पन्न होने वाला प्रकाश है।

उसकी व्याकुलता को प्रभु के वरद हस्त की छाया मे आकर एक अपूर्व विश्रान्ति, एक अविचल आश्वासन मिल चुका है उसका भाव न सखा का है न दास का क्यो कि वह सभी नाते रिश्तों को प्रभु के चरणों मे आकर तोड चुका है। फलतः उसके गीतों मे एक अपूर्व व्यापकता है। उसके गीतो मे ज्ञान की गरिमा है, ज्ञान का हठ नही; विरह की वेदना है विरह का उद्वेग नही; भक्ति की भावना है किसी मार्ग विशेष के लिए आग्रह नही। वह शान्त, सौम्य निश्छल प्रणति जो उतनी ही संवेदन-शील हैं जितनी शान्त, उतनी ही सरस भी जितनी सौम्य और उतनी ही आत्मीयता पूर्ण भी जितनी निश्छल गीति और शरणागति दनों को नई विशदता, नए स्तर, नई व्यापकता देती है।

प्रभु की जिस अहेतुकी, करुणामयी, महती प्रीति की रीति को कवि ने अपने जोवन मे परखा और पहचाना था उसके अनुकूल ही वह गीति की रीति भी है जिसे उसने विनय के पृष्ठो मे चलाई है।

तेरहवाँ अध्याय

विविध प्रयोग

कवि न होंहु नहिं चतुर कहावउँ
(राम) सुचरित सुसरित भनहिं अन्हवावउँ

इसमे संदेह नही कि तुलसी के हृदय की सभी गहरी अनुभूतियाँ और आस्थाएँ रामचरितमानस, गीतावली, कवितावली और विनय पत्रिका मे सुरक्षित है। परन्तु इन सुविख्यात कृतियों के अतिरिक्त अनेक ऐसी छोटी बडी रचनायें हैं जो तुलसीकृत कही जाती है और इनमे से कुछ तो ऐसी अवश्य है जिन पर तुलसी के भावों और स्वरों की स्पष्ट छाप है। ऐसी रचनाओं की संख्या कम से कम आठ है—रामललानहछू, पार्वती मंगल और जानकी मंगल; वैराग्य संदीपिनी, रामाज्ञा प्रश्न और दोहावली, तथा कृष्ण गीतावली और बरवै रामायण। विषय और शैली दोनो दृष्टियो से कवि ने इन रचनाओ मे विविध प्रयोग किये हैं और यदि तुलसी साहित्य मे हमारी रुचि केवल सूचियो, तालिकाओं और तिथियो तक नही सीमित है तो हमे इन रचनाओं मे भी तुलसी की अनुभूतियों और आस्थाओ, रुचियो और और प्रवृत्तियों की अनेक झलकें मिलेंगी।

तुलसी के मन ने चाहे जिन ऊँचाइयों को छुआ हो उसका जीवन निस्सन्देह जन समुदाय के बीच, जनजीवन के सम्पर्क मे, व्यतीत हुआ और उसका मन भी ज्यों ज्यों उसकी अनुभूतियो मे गहराई आती जाती थी जन जीवन मे रत होता जाता था। यश प्राप्ति का वह भूखा नही था परन्तु जन मन को अवश्य छूना चाहता था। संस्कृत को छोड कर भाषा को अपने काव्य का माध्यम बनाना उसकी इस प्रवृत्ति का केवल एक परन्तु निश्चित प्रमाण है। रामलला--

नहछू , पार्वतीमंगल, जानकी मंगल उसकी इसी प्रवृत्ति के अन्य सुनिश्चित प्रमाण हैं। शिक्षित, सुसंस्कृत उच्चवर्गीय होने की भावना से पीड़ित आधुनिक समालोचक तुलसी के सोहर छन्द और विहसति नउनिया, मुसुकाति मलिनिया के नाम से चाहे जितना नाक भौं सिकोड़ें परन्तु तुलसी का हृदय तो जन जन के मन में रमा था और वह जी जान से जन जन का मन राम मे रमाना चाहता था। अतएव मानस और विनय के कवि को राम के उपवीत और विवाह के गीत गाने में कोई संकोच नही था यदि इन गीतों द्वारा उन अगणित महिलाओं का मनोरंजन हो सके जिनके जीवन मे काव्य और संगीत के लिये इन मंगल कार्यों से अधिक अच्छा सुअवसर नही होता।

राम लला नहछू सोहर छन्द मे लिखा गया बीस छन्दों का एक छोटा ग्रन्थ है। यह सोहर छंद विविध मंगल कार्यों के अवसर पर अवध और पूर्वी क्षेत्रों मे स्त्रियां गाती है जहा एक अत्यन्त रोचक किंवदंती है कि एक स्त्री की ही प्रार्थना पर कवि ने इन छन्दों की रचना की। तुलसी ने जिस नेहछू के गीत गाये हैं वे यज्ञोपवीत के समय के हैं या विवाह के इस पर विद्वानों ने बहुत विद्वत्ता खर्च की है परन्तु जिस मंगल वातावरण की तस्वीरें एक सीधे साधे छन्द के स्वरो मे कवि ने खड़ी की है उनकी सजीवता के विषय में कोई दो मत नही हो सकते :

> गोद लिए कौसल्या बैठी रामहि वर हो
> सोभित दूलह राम सीस पर आँचर हो
> बतिया सुघर मलिनिया सुन्दर गावहि हो
> कनक रतन मनि मौर लिए मुसुकातहि हो

पार्वती मंगल और जानकी मंगल दोनों मंगल काव्य हैं, दोनों की भाषा अवधी है, दोनों का छन्द सोहर है। यह दोनों काव्य भी स्पष्टत: जनहित की मगल कामना से लिखे गए ग्रन्थ हैं। आज हम इन मगल काव्यों की परम्परा से दूर पड़ गये है परन्तु तुलसी के समय मे यह

परम्परा जीवित थी और अत्यन्त लोक प्रिय भी। कम से कम नन्ददास का रुक्मिणी मंगल तो अब भी एक सुपरिचित नाम है। तुलसी के पार्वती मंगल की कथा शिव पार्वती के विवाह की कथा है। मानस मे भी शिवविवाह की कथा है और वह कथा इस से कुछ लम्बी ही होगी परन्तु उसकी अपनी जगह पर एक विशिष्ट उपयोगिता है। एक स्वतंत्र काव्य के रूप मे पार्वती मंगल का एक अलग अस्तित्व एक अलग आकर्षण है। आरम्भ मे ही कवि की भक्ति भावना फूटी पड़ती है।

गावउँ गौर गिरीस विवाह सुहावन
पापनसावन पावन मुनिमन भावन
कवित रीति नहिं जानउँ कवि न कहावउँ
शंकर चरित सुसरित मनहि अन्हवावउँ
पर अपवाद विवाद विदूषित बानिहि
पावनि करउँ सो गाइ महेस भवानिहि

कहने को कह लीजिए कि यह लोक गीत शैली मे लिखित ग्रन्थ है परन्तु शब्दों की जो सजावट, उनकी जो संगति, उदास भावों को जगाने की जो शक्ति इन पंक्तियो मे है उस पर साहित्यिक भाषा की सैकड़ों पंक्तियाँ निछावर है। उल्लेखनीय क्षण इस रचना के भी वही है जिनका सम्बन्ध वैवाहिक कृत्यों के हर्ष विषाद से है।

मनि चामीकर चारु थार सजि आरति
रति सिहाहि लखि रूप, गान सुनि भारति
सखी सुवासिनि संग गौरि सुठि सोहति
प्रकट रूपमय मूरति जनु जग मोहति
भेंटि विदा करि बहुरि भेंटि पहुँचावहिं
हुँकरि हुँकरि सु लवाइ धेनु जनु धावहिं

कवि को भी अपने मन मे विश्वास है कि जो उद्देश्य उसके सामने है, उनकी उसकी कृति द्वारा पूर्ति होगी :

मृगनयनि विधुवदनी रचेउ मनि मंजु मंगल हार सो
उर धरहु जुवतीजन विलोकि तिलोक सोभा भार सो
कल्यान काज उछाह व्याह सनेह सहित सो गाइहै
तुलसी उमासङ्कर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइ हैं।

भाषा, भाव, छन्द, अवसर, वातावरण मे जानकीमंगल बहुत कुछ पार्वती मंगल से मिलती जुलती रचना है। वही भव्य मगलाचरण :

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति
सारद शेष सुकवि स्रुति संत सरल मति
हाथ जोरि करि विनय सवहि सिर नावौं
सिय रघुवीर विवाहु जथामति गावौं

छन्दो मे वही प्रवाह बल्कि यों कहिए कि गजगामिनियों जैसी मस्ती भरी चाल, जानकी मंगल मे भी है :

परम प्रीति कुलरीति करहिं गज गामिनि
नहिं अघाहिं अनुराग भाग भरि भामिनि

शब्दों की ध्वनि से सुपरिचित कान हों और हृदय मे सरसता तो कुशल कवि किसी छन्द मे जान डाल सकता है। जिनके कल्याण और मनोरंजन के लिए यह मंगल छन्द विशेष रूप से लिखे गए जान पड़ते हैं उन स्त्रियों के हृदय कुमुद तो स्वभावतः इन छन्दों और उनके वर्णय विषय से खिल उठेगे :

करहिं निछावरि छिनु छिनु मङ्गल मुद भरि
दुलह दुलहिनिन्ह देखि प्रेम पय निधि परि
देत पाँवड़े अरघ चली लै सादर
उमँगि चलेउ आनन्द भुवन भुइँ बादर

राम लला नहछ, पार्वती मंगल, जानकी मगल स्पष्ट रूप से जन मन, विशेष रूप से महिलाओ के मन को आह्लादित करने के लिए लिखी

गई रचनाएँ हैं। तुलसी जो कुछ लिखेगा उसी मे उसकी काव्य प्रतिभा, उसका शब्द संगीत, उसकी सद्भावना जाग उठेगी परन्तु इन रचनाओं का मांगलिक वैवाहिक, वातावरण, उनका लोक गीतों का छन्द, उनमे अंकित रीति रिवाजों का तुलसी कालीन समाज, विशेष रूप से अवधवासी समाज से लगाव यह प्रकट करता है कि कवि की काव्य सम्बन्धी आस्थाएँ कितनी सुदृढ थी। काव्य तुलसी के लिए एक सुरसरि धारा है जो सब को सुख देती है कोई बुद्धि-जीवियो का अखाड़ा नही जिनमे चतुर खिलाडी अपनी कलावाजियाँ दिखलाते हैं।

रामाज्ञा प्रश्नावली, वैराग्य संदीपिनी और दोहावली एक दूसरे ढङ्ग की रचनाएँ है। तुलसी केवल कवि ही नही था वह एक व्यक्ति भी था जो संसार और समाज को अपनी पैनी दृष्टि से देखता था, अपने व्यवहारिक जीवन मे नए नए अनुभव प्राप्त करता था, नए नए प्रयोग करता था, कुछ चिंतन कुछ मनन करता था। ऐसी व्यवहारिक, विचार मूलक, विविध प्रसंगों और परिस्थितियों मे प्राप्त हुई जानकारी उसने सूक्तियों के रूप मे अनेक छोटे छोटे चुभते हुए दोहो मे व्यक्त की है। स्वभावतः इन तीनों ग्रन्थों का प्रधान छन्द दोहा है।

वैराग्य संदीपिनी स्पष्टतः एक अप्रौढ रचना है। जो अनुपम, अडिग निश्चिन्तता और विश्रान्ति उसकी प्रौढ रचनाओ मे है अभी वह उनकी राह टटोल रहा है। उसने सुना है कि पठन पाठन, सत्संगति, वैराग्य शान्ति प्राप्त करने के साधन है और वह अपने मन को सिखाता है कि शान्ति अभीष्ट है तो यह सब करो। वह उच्चतर विराग जो प्रभु के चरणों मे अनुराग का स्वाभाविक परिणाम है अभी अपनी सम्पूर्णता मे उदित नही हुआ है। अभी उसके लिए संदीपन की आवश्यकता है। अतएव वैराग्य संदीपिनी मे एक ओर तो ज्ञान, वैराग्य, संत स्वभाव सत महिमा का वर्णन है और दूसरी ओर वेद पुराण आदि सद्ग्रन्थों के सुन्दर विचारों का संकलन :

तुलसी वेद पुरान मत पूजन शास्त्र बिचार
यह विराग संदीपिनी अखिल ज्ञान को सार

अक्सर तो संस्कृत के श्लोकों के भाव सीधे सीधे वैराग्य संदीपिनी के दोहों में चले आए है। ज्ञान की कोठरियों से निकल कर अनुभूति के मुक्त आकाश मे विचरने वाले तुलसी का स्वरूप इस पुस्तिका मे नहीं दिखाई देता।

रामाज्ञा प्रश्नावली शकुन विचार के लिए लिखा गया ग्रन्थ है। डाक्टर ग्रियर्सन ने तुलसी सम्बन्धी नोट्स मे एक कथा लिखी है कि कवि के मित्र गंगा राम ज्योतिषी का एक कठिन परिस्थिति से उद्धार करने के लिए इस प्रश्नावली की रचना हुई।

सगुन प्रथम उनचास सुभ तुलसी अति अभिराम
सब प्रसन्न सुर भूमि सुर गोगन गंगाराम

इस कथा की जो कुछ भी प्रामाणिकता हो यह तो सुनिश्चित है कि तुलसी को ज्योतिष शास्त्र मे रुचि थी। तुलसी की जो भी कृति होती थी अक्सर एक रामायण का रूप धारण कर लेती थी। अतएव रामाज्ञाप्रश्नावली मे भी सात सर्ग हैं और राम चरित चर्चा की एक हल्की सी चेष्टा। परन्तु प्रश्नावली का वास्तविक मूल्य ज्योतिष के क्षेत्र मे कवि के एक प्रयास और प्रयोग का है। प्रत्येक सर्ग मे सात सप्तक हैं प्रत्येक सप्तक मे सात दोहे और उनका क्रम जान बूझ कर इस प्रकार का रक्खा गया है कि प्रश्नकर्त्ता अपने प्रश्न का उत्तर पा जाय। सातवें सर्ग के अन्तिम सप्तक मे शकुन विचारने की विधि भी दी हुई है

सुदिन साँझि पोथी नेवति पूजि प्रभात सप्रेम
सगुन विचारब चारुमति सादर सत्य सनेम।

स्पष्टत: न कवि ने यह ग्रन्थ काव्य कला की दृष्टि से लिखा था न इसमें काव्यकला ढूंढने की कोई जरूरत हैं।,

दोहावली का अवश्य तुलसी साहित्य मे एक विशिष्ट और स्थायी मूल्य है जिसकी ओर हमारा ध्यान कम गया है। यह सही है कि दोहावली एक संग्रह ग्रन्थ है। पूछिये तो वह संग्रह ग्रन्थ के अतिरिक्त और किसी प्रकार का ग्रन्थ हो ही नही सकता था। दोहावली मुक्तकों का संग्रह है और सैकड़ों मुक्तक एक सास मे नही लिखे जाते। उनकी रचना समय २ पर विशिष्ट परिस्थितियो मे होती है। जिन परिस्थितियो मे असली मुक्तकों का जन्म होता है, जो गुण मुक्तकों मे जान डालते है उन पर यदि हम विचार करे तो पाएंगे कि तुलसी के अधिकतर दोहो मे मुक्तकों के अनेक गुण हैं। जैसे मानस प्रबन्ध काव्य के क्षेत्र मे या विनय पत्रिका गीति काव्य के क्षेत्र मे अनुपम है वैसे ही मुक्तकों के लिये दोहावली भी चिरस्मरणीय रहेगी। दोहा छन्द तो तुलसी के समय मे भी काफी प्रचलित हो चुका था। चन्दवरदायी, गोरख, कबीर आदि चारण और सत कवियो ने उसका प्रयोग किया था। तुलसी की यह विशेषता है कि वह जाने पहचाने स्वरों मे ही जन मन को प्रभावित करने के लिये प्रचलित काव्य रूपों को ही अपनाता है। तुलसी की प्रतिभा नए नए काव्य रूपों के गढ़ने मे नही बरन् प्रचलित काव्य रूपो की आत्मा, उनके गुण स्वभाव को पहचान कर उनका पूरा और सच्चे ढंग से उपयोग करने मे है। मुक्तक होने के नाते दोहे का पहला गुण तो यह है कि वह अपने मे सम्पूर्ण और पूर्व प्रसंग से मुक्त हो। तुलसी ने मानस मे भी दोहे लिखे है परन्तु वहाँ वह उनसे एक विशेष काम लेता है। कथा तो चौपाइयों मे चलती है और दोहे या तो एक विराम के रूप मे आते है या कुछ चौपा-इयो की इकाई को दूसरे समूह से अलग करते है या पूर्ववर्त्ती चौपाइयों का सार तत्व अथवा निष्कर्ष देते है, अक्सर वे एक क्रमशः विकसित होने वाले भाव के अर्थ संकेत को केन्द्रीभूत करते हैं। परन्तु एक काव्य रूप की हैसियत मे विशुद्ध दोहे तो वही हैं जो पूर्वप्रसंग से पूर्णतया स्वतन्त्र हों और अपने मे ही पूरी रससृष्टि की क्षमता और शक्ति रखते हों। यह गुण दोहावली के दोहों में प्रचुर मात्रा मे मिलता है। कवि ने

जीवन के किसी पहलू को देखा, किसी अनुभव को परखा, किसी परिस्थिति के अर्थ संकेत को पकड़ा और एक दोहे मे सदैव के लिये चिरस्मरणीय शब्दों में अंकित कर दिया। दोहावली मे हम तुलसी को उस रूप से कुछ अलग रूप मे पाते हैं जिसमे वह अपने को गीतावली या विनय पत्रिका के गीतों मे प्रकट करता है। वहाँ वह आत्म निवेदन और आत्मप्रकाश मे इतना लीन है कि एक तटस्थ दर्शक की भाँति वह चीजों को नही देखता। दोहावली के दोहों मे वह बहुत कुछ एक तटस्थ दर्शक की भांति, एक चिन्तन शील विचारक की तरह जीवन के विविध पहलुओं को देखता है। फलतः दोहावली मे विषय की विविधिता है। उसमे कहने के ढंग का वह निरालापन, बांकपन है जिसके विना अच्छे से अच्छे भाव से भरा दोहा वेमजा हो जाता है। उक्ति का चमत्कार दोहे की जान है। नावक के तीर की तरह उसको निशाने पर ठीक बैठना चाहिये। देखने में छोटा होते हुये भी उसको घाव गहरा करना चाहिये और यह तभी होता है जब उक्ति मे कोई विरोध मूलक चमत्कार, कोई तुलना, कोई अनूठा दृष्टि कोण हो। तुलसी के दोहों मे अनुभव और अभिव्यक्ति में से कोई एक दूसरे से हलके नही पड़ते।

जथा भूमि सब वीजमय नखत निवास अकास
राम नाम सब धरममय जानत तुलसी दास

राम नाम के जिस व्यापक गुण की ओर कवि ध्यान दिलाना चाहता है उसके लिये पहली पंक्ति में उपयुक्त भूमि तैयार कर लेता है।

दृष्टान्त तो एक से एक सच्चे, सादे, सटीक उसके दोहों में दिखाई देंगे :

निगम अगम साहेब सुगम राम साँचिली चाह
अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग माह

विरोधी चित्रों का चमत्कार भी अनेक दोहों मे है :

घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाँय
जे तुलसी तब राम विनु ते अब राम सहाय

तुलसी की दोहावली का सबसे महत्वपूर्ण, अर्थपूर्ण, उल्लेखनीय अंश उन चौतीस दोहों का समुदाय है जिनमे तुलसी की अनुभूतियों का सार-तत्व है। अनन्यता का जो चित्र चातक की वान का वखान करके तुलसी ने खीचा है उसके पीछे तुलसी के जीवन की सारी उपलब्धि छिपी हुई है :

जौ घन बरषै समय सिर जौ भरि जनम उदास
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस
चातक तुलसी के मतें स्वातिहुँ पिए न पानि
प्रेम तृषा बाढ़ति भली घटे घटैगी आनि
रटत रटत रसना लटी तृषा सूखि गे अंग
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग
चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख
उपल वरषि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर
एक अंग जो सनेहता निसिदिन चातक नेह
तुलसी जासों हित लगै वहि अहार वहि देह

चौतीस दोहों के एक क्रम मे तुलसी ने प्रेम के आदर्श और प्रेम संबन्धी दर्शन को चिरस्मरणीय शब्दो मे अंकित कर दिया है-प्रेम की अनन्यता, प्रेम की नित नूतनता, प्रेम की निर्भयता, हित अनहित की भावना से रहित प्रेम की एकरसता।

दोहावली मे कवि की व्यवहारिक जीवन मे प्राप्त की गई अनुभूतियों के सुन्दर नमूने हैं। प्रजा के हित मे रत राजा का गुण बताते हुये वह कहता है :

बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोइ
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सो होइ

कलयुगी लोगो की झूठी चतुराइयों और मूल छोड़ कर पत्तों को सीचने की प्रवृत्ति तो उसने अच्छी तरह देखी थी :

पात पात कै सींचिवो वरी वरी कै लोन
तुलसी खोटें चतुरपन कलि डहके कहु कोन।

दोहावली मे जो सूझ बूझ, जो व्यवहारिक जगत का ज्ञान है उसके कारण तुलसी के दोहे भारतीय जन मन मे बसे है और जवान पर चढ़े है। ऐसे गागर मे सागर भरने वाले दोहों की परम्परा भारतीय काव्य में वहुत दिनों तक चलती रही और कवि की अपने दोहों के बिषय मे इस उक्ति मे कोई अतिशयोक्ति नही है :

मनिमय दोहा दीप जँह उर घर प्रकट प्रकास
तहँ न मोह तम भय तमी कलि कंजली बिलास

दो अन्य कृतिया जो बहुमत से तुलसीकृत मानी जाती हैं और जिनकी चर्चा हम यहाँ करेंगे कृष्ण-गीतावली और बरवै रामायण हैं।

तुलसी की अपनी राम गीतावली है और उसमे चित्रमय संगीत का जो रस है उसकी चर्चा हम अन्यत्र कर चुके हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि जब तुलसी दास जी ने ब्रज की यात्रा की तो श्रीकृष्ण जी से उनकी यही प्रार्थना थी

कहा कहौं छबि आज की, भले बने हो नाथ
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष-बान लो हाथ

और यह भी हम जानते है कि कवि।जो कुछ लिखता था वह चाहे महा-काव्य हो या लोक गीत घूम फिर कर एक रामयश कीर्त्तन का बहाना हो जाता था। यह सब होते हुये भी यदि तुलसी पार्वती मंगल और कृष्ण गीतावली का कवि है तो यह बात उसकी आध्यात्मिक आस्थाओं की व्यापकता और गहराइयों पर एक अत्यन्त मनोरम प्रकाश डालती है। निस्सन्देह साम्प्रदायिक संकीर्णता या असहिष्णुता जैसी कोई चीज उसको छू भी नही गई थी। नन्ददास और बाबा वेणी माधोदास ने सूर

और तुलसी के मिलन संबंधी जो रोचक वृतान्त दिये है उन पर विश्वास करने मे ऐतिहासिक दृष्टि से बाधायें हो सकती है परन्तु दोनो कवियों की आध्यात्मिक अनुभूतियों की गहराई और उनके काव्य कौशल के विषय मे कोई दो मत नही हो सकते । तुलसी ने मुक्त कंठ से कृष्ण के गीत गाए हैं और सूर ने बड़े भाव से राम के गीत गाये है । दोनों मे आध्यात्मिक सजातीयता ऐसी है कि उनके गीतों में भी अक्सर अद्भुत साम्य है । कापीराइट और काव्यापहरण के इस जमाने मे जब एक कवि की रचना दूसरे कवि को फूटी आंखों नही सुहाती यह बात आलोचकों को बड़े चक्कर मे डालती है कि सूर के कतिपय पद ज्यों के त्यो या कुछ परिवर्तन के साथ तुलसी की गीतावली मे भी सुशोभित हैं । परन्तु प्रभु के प्रेम मे अपने को और अपनेपन को मिटा कर, सभी कुछ प्रभु के चरणों मे अर्पित करके प्रभुयश संकीर्तन का विशुद्ध आनन्द पाने वाले संतो के लिये इस बात मे कोई असंगति नही । तुलसी का युग मुद्रण यन्त्रालयों का युग नही था न तब गमनागमन के वह साधन ही थे जो अब है परन्तु साहित्य, संगीत, दर्शन की दुनिया मे विचार और गीत एक स्थान से दूसरे स्थान ही तक नही, एक देश से दूसरे देश तक सत्य और सौन्दर्य की खोज मे रत यात्रियो द्वारा ऐसी क्षिप्र गति से फैलते रहते थे कि यह आश्चर्य का विषय नही कि एक कवि का गीत या एक गायक की रागिनी की प्रतिध्वनि दूसरे कवि या कलाकार की रचना मे सुनाई दे । अतएव सूरसागर के कुछ गीतों की प्रतिध्वनि तो तुलसी की गीतावली में कही कही जरूर सुनाई पड़ती है । सूर कहता है 'झूठेंहि मोहि लगावत ग्वारि' तुलसी का भी उसी तर्ज मे एक गीत हैं ' मो कँह झूठेहु दोष लगावहिं' । परन्तु यह समानता आकस्मिक हो या जान बूझ कर लाई हुई इसमे सन्देह नही कि कृष्णगीतावली का अपना स्वतंत्र आकर्षण है, उसमें तुलसी के अपने स्वर है, उसमे तुलसी की अपनी श्रद्धा भक्ति की गूंज है :

इन्हही के आएते बधाए ब्रज नित नए
नादत वाढ़त सब सब सुख जियो है

नंदलाल बाल जस संत सुन सरबस
गाइ सो अमिय रस तुलसिहु पियो है

ब्रज भाषा पर कवि के आधिपत्य के उसमे अनेक नमूने है। शब्द चित्रो और संगीत की उसमे वही माधुरी है जो गीतावली मे। राग नट मे श्रीकृष्ण चन्द्र की यह झाकी देखिए :

गावत गोपाल लाल नीके राग नट हैं
चलि री आली देखन लोयन लाहु पेखन
ठाढ़े सुरतरु-तर तटनि के तट हैं
मोर चंदा चारु सिर मंजु गुंज पुंज धरे
तनि बन-धातु तन ओढ़े पीत पट हैं
मुरली तान तरंग मोहे कुरंग विहंग जोहैं
मूरति त्रिभंग निपट निकट हैं
अंबर अमर हरषत बरसत फूल
सनेह सिथिल गोप गाइन्ह के ठट हैं
तुलसी प्रभु निहारि जहाँ तहाँ ब्रजनारि
ठगी ठाढ़ी मग लए रीते भरे घट हैं

कन्दर्प अगणित अमित छबि के धाम श्रीराम की जैसी बिशद आरती अपने सुविख्यात पद 'श्रीराम चन्द्र कृपालु भज मन' मे कवि ने उतारी है वैसी ही श्री कृष्ण चन्द्र के प्रति भी वह लिखता है

गोपाल गोकुल वल्लभी प्रिय गोप गोसुत वल्लभं
चरनारविंदमहं भजे भजनीय सुरि मुनि दुर्ल्लभं
घनश्याम काम अनेक छवि लोकाभिराम मनोहरं
किंजल्क वसन किसोर मूरति भूरि गुन करुनाकरं
सिर केकि पच्छ विलोल कुंडल अरुन वनरुहलोंचनं
गुंजावतंस विचित्र सब अँग पातु भव भय मोचनं
कच कुटिलसुंदर तिलक भ्रू राका मयंक समाननं
अपहरन तुलसीदास त्रास विहार वृंदाकाननं

अतएव राजडगर तो तुलसी की राम नाम की ही है परन्तु अपनी सद्भावना, हृदय की विशालता और ऊँची स्थिति के कारण वह कभी कभी वृन्दावन कानन मे विचरने और शंकर चरित सुसरित मे स्नान करने मे संकोच नही करता बल्कि पूरा आनन्द लेता है।

बरवै रामायण की ओर आलोचकों का ध्यान बहुत कम गया है। जिस बरवै रामायण से साधारणतया हम परिचित है वह तो ६९ छन्दों का एक संग्रह है परन्तु कुछ विद्वानों का कहना है कि उसकी बड़ी प्रतियाँ भी है जिनमे रामकथा का क्रमवद्ध वर्णन है। यदि ऐसा है तो यह एक और प्रमाण इस बात का है कि तुलसी जन मन को, जन भाषा जन समुदाय के प्रिय छन्दो द्वारा प्रभावित करने के लिए अत्यन्त प्रयत्नशील था। परन्तु वर्त्तमान रूप मे भी बरवै रामायण के बरवै तुलसी की सौन्दर्य प्रियता और कला प्रियता के मनहर नमूने हैं। यदि श्रीकृष्ण गीतावली के गीतों के लिखने की प्रेरणा सूरदास से मिली तो बरवै लिखने के लिए कवि को एक ऐसे व्यक्ति ने उत्साहित किया जो अपने समय का—अकबर कालीन भारत का—एक अनुपम रत्न था। जीवन के उतार चढाव, मीठे कड़ुवे अनुभव जितने अब्दुर्रहीम खानखाना को मिले थे, संस्कृत, अरबी, फारसी और देशी भाषाओ के के ज्ञान की गलियो की जितनी सैर उसने की थी और बाहरी मान मर्यादा, पद प्रतिष्ठा को भुलाकर मानवीय तत्वो और जीवन रस में जैसी रुचि उसमे थी उसको देखते हुए यह कल्पना करने मे कोई कठिनाई नही हो सकती कि खानखाना ने तुलसी का ध्यान आकृष्ट किया होगा। कवि तुलसी और काव्यमर्मज्ञ रहीम समकालीन थे और दोनों की मित्रता के विषय मे अनेक कहानियाँ है। उनमे से एक रोचक कहानी यह है कि रहीम का एक सिपाही जिसकी नई शादी हुई थी अपने घर पर ज्यादा दिन रह गया। जब वह काम पर लौटा तो उसकी नव विवाहिता पत्नी ने क्षमा माँगते हुए खानखाना की खिदमत में यह बरवै लिख कर भेजा .

प्रेम प्रीति को बिरवा चले लगाय,
सींचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय

इस मर्मस्पर्शी छन्द ने रहीम के हृदय को भी स्पर्श किया और इस तरह रहीम की सरस रचना 'बरवै नायिका भेद' का जन्म हुआ। रहीम ने अपने बरवै तुलसी को भेजे और उन पर मुग्ध हो कर तुलसी ने स्वयं बहुत से बरवै लिखे। बाबा वेणीमाधव दास के अनुसार।

कवि रहीम बरवै रचे पठए मुनिवर पास
लखि तेइ सुन्दर छन्द में रचना किएउ प्रकास

निस्सन्देह बरवै रामायण अपने ढङ्ग की अनूठी रचना है। कलात्मक अलंकारिक अभिव्यंजना की छटा प्रकट रूप मे यदि तुलसी मे कही दिखाई देती है तो वह बरवै रामायण में। छन्दों के विशिष्ट गुण और उनके आन्तरिक स्वभाव की जैसी पकड़ तुलसी मे थी उसको देखते हुए हमे बरवै रामायण के उस रूप पर आश्चर्य न करना चाहिए जिस रूप मे उसे हम पाते हैं। शृङ्गार, करुणा और शान्ति रस की जो तरल तरंगे इन छोटे बरवै छन्दो को रससिक्त करती है उनके कारण इन छन्दों की प्रकृति एकाएक खिल उठती है :

केसमुकुत सखि मरकत मनिमय होत,
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत।
चंपक हरवा अँग मिलि अधिक सोहाइ,
जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ।
सिय तुव अंग रंग मिलि अधिक उदोत,
हार वेलि पहिरावौं चंपक होत।

ऐसे रस के छीटे तुलसी की कृतियों मे और कही नही देखने को मिलते जैसे बरवै मे :

का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि
गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँह
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह
उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन
सिय रघुवर के भए उनींदे नैन।

करुणा के स्वर तो बरवै छन्द मे खूब ही खिलते है :

विरह आगि उर ऊपर जहँ अधिकाइ
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुझाइ
डहकु न है उजयरिया निसि नहिं घाम
जगत जरत अस लागु मोहिं विनु राम।
अब जीवन कै है कपि आस न कोइ
कनगुरिया कै मुंदरी कंकन होइ।

परन्तु वादी स्वर तुलसी का वही स्वर है जो उनकी सभी रचनाओं को झंकृत करता है :

नाम भरोस, नाम बल नाम सनेहु
जनम जनम रघुनंदन तुलसिहिं देहु
जनम जनम जँह जँह तनु तुलसिहिं देहु
तँह तँह राम निबाहिब नाम सनेहु

चौदहवाँ अध्याय

भाषा और शैली

का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहियत सांच

तुलसी की भाषा की चर्चा करते समय हमारी यह प्रवृत्ति अक्सर हुआ करती है कि हम अपनी सम्मति उस प्रश्न के संदर्भ मे प्रकट करें जो विविध सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक कारणो से बर्तमान् काल मे हमारे सामने उपस्थित है। कवि की खोज, उसके लक्ष्य, उसकी आस्थाओं के प्रकाश मे हम उसकी भाषा और शैली के रंग और उसकी सफलता को नही देखते। फलतः यह एक अजीब बात है कि हम उन मोटी २ बातों का भी अर्थ ग्रहण करने की कोशिश नहीं करते जो तुलसी की भाषा के सम्बन्ध मे सामने ही दिखाई देती हैं।

तुलसी की शिक्षा दीक्षा संस्कृत मे हुई थी, उसके मन पर संस्कृत के ललित साहित्य और धार्मिक विचार धाराओं का गहरा प्रभाव था, फिर भी संस्कृत को छोडकर तुलसी ने अपनी साहित्यिक रचनाओ के लिए भाषा को अपनाया। अवध और अवधी उसको सब से अधिक प्रिय थे, परन्तु अवधी के अतिरिक्त ब्रजभाषा, स्थानीय बोलियों, फारसी अरबी संस्कृत के शब्दो का उसने मुक्त हृदय से प्रयोग किया। यह निर्विवाद तथ्य कुछ अर्थ रखते हैं और वह अर्थ यह है कि तुलसी स्वयं एक भाषा का निर्माण कर रहा था जिसका प्रथम और अन्तिम उद्देश्य यह था कि वह उस सत्य और सौंदर्य को व्यक्त करने मे उपयोगी, सक्षम और सफल हो जो उसने देखा और जो उसके जीवन की सब से बड़ी उपलब्धि थी। भाषा के विषय मे उसका दृष्टि कोण विश्व के सभी सच्चे सृजन-कारी कवियों का था जिनकी दृष्टि में भाषा अनुभूति की चेरी है, भाषा

को अनुभूति स्वयं अपने साँचों में ढालती है। अतएव तुलसी के लिये भाषा साधन है साध्य नही, साध्य तो मन का प्रबोध है

भाषा बद्ध करब मैं सोई, मोरे मन प्रबोध जेहिं होई
मत्वातद्रघुनाथ नाम निरतं स्वान्तस्तमः शान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्

कवि की रघुनाथनामनिरत आत्मा की असली खोज तो है अन्तस्तल के तम की शान्ति, स्वभावत: अन्य सभी अभिप्राय, साहित्यिक सफलता, कवि कीर्त्ति उसके मन मे एक गौण स्थान रखते हैं। वह देखता है कि रघुनाथ नाम निरत होने मे और जन मन को रघुनाथ नाम निरत कराने मे संस्कृत से अधिक भाषा ही विशेष रूप से सक्षम, सुलभ, सीधा प्रभाव उत्पन्न करने वाली है तो वह विना किसी ख्याति की आशा या आलोचना के डर के संस्कृत की भडकीली शाल उतार कर भाषा की काम आनेवाली कामरी धारण कर लेता है, 'काम जु आवै कामरी का लै करै कमाच'।

यह काम आने वाला गुण भाषा का पहला और सब से बड़ा गुण हैं। सूक्ष्मतम, कोमलतम, गम्भीरतम भावो को ऐमे सरल, स्वाभाविक, सहज ढंग से व्यक्त करना कि वे सुनते ही हृदय मे उतर आवें और मन को पकड़ लें सृजनात्मक अभिव्यक्ति की असली सफलता है। जिस क्षण कवि इस बात का निश्चय करता है कि वह उस सत्य को दूसरों तक पहुँचाएगा जिसको उसने देखा है उसी क्षण प्रेषणीयता का प्रश्न अपने सारे महत्व के साथ उठ खड़ा होता है। उसकी भाषा यदि इस काम की नही कि उसके मन की बात सभी के हृदय में जहाँ तक हो विना प्रयास के ही बैठती जाय तो वह उसके किसी काम की नही।

तुलसी का विश्वास था कि कविता तो वही है जो जन जन के हृदय को व्याकुल करने वाले अभाव को दूर कर सके। अनुभूति भले। ही कवि की स्वान्तः सुखाय हो अभिव्यक्ति उतनी ही जन हिताय होनी चाहिये जितनी कवि के अन्तः करण के सुख के लिए :

कीरति भनिति भूति भलि सोई सुरसरि सम सब कहँ हित होई

बाबा वेनी माधव दास के मूल गोसांई चरित मे एक अत्यन्त रोचक कथा है जिसके अनुसार गोसाईं जी जब काशी मे आए तो पहले अपनी रचना संस्कृत ही में करते थे परन्तु दिन भर जो कुछ लिख पाते थे रात मे वह सब गायब हो जाया करता था ! विचारे समझ ही नहीं पाते थे कि यह होता क्या है, और करना क्या चाहिये ।

दिन मां जितनी रचना रचते निसि माहि सुसंचित ना बचते
यह लोप क्रिया प्रति द्योस सरै करिहा तो कहा नहिं बूझ परै ।

सात दिन तक यही क्रम चलता रहा । आठवें दिन स्वयं शिव जी ने स्वप्न में कवि से कहा अपनी बोली मे काव्य करो, संस्कृत के पीछे मत मरो

सिव भाषेउ भाषा में काव्य रचो सुर वानि के पीछे न तात पचो
सब कर हित होइ सोई करिये । अरु पूर्व प्रथा मत आचरिये
मम पुन्य प्रसाद सों काव्य कला होइहै सम साम रिचा सफला

वैज्ञानिक ढंग के सुविज्ञ आलोचक तो इस कथा को गप ही मानते हैं और यदि गप न माने तो उनकी वैज्ञानिक ढंग की अलोचकी जाती है । मान लीजिए की यह बाबा वेनी माधव दास की अपनी बटी हुई गप है परन्तु इसमें जरा भी गप नही कि साहित्य रचना करते समय तुलसी को निरन्तर यह ध्यान बना रहता था कि मेरी कविता 'हरि प्रेरित' है, मैं संभु की प्ररणा से साहित्य रचना कर रहा हूँ 'संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी राम चरित मानस कवि तुलसी,' न यही गप है कि उसके मन मे यह बात बसी हुई थी कि मेरी कविता मे शिव की कृपा जगमगाती है 'भनिति मोर शिव कृपा विभाती,' न यही गप है कि उसकी सर्वभूतरत आत्मा की यह पुकार थी कि पूर्व प्रथा छोड़ कर 'सब कर हित होई सोई करिए' और न यही गप है कि उसकी भाषा भनिति की क्षमताओ और प्रभाव मे गहरी आस्था थी :

सपनेहु साचेहु मोंहि पर जौ हरि गौरि पसाउ
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ

तुलसी पहला कवि नही था जिसने इस बात का निश्चय किया कि मेरी कविता की भाषा जनभाषा होगी। जन भाषा मे कविता करने का निश्चय कर चुकने पर उसने अवश्य अपने आस पास मुड के देखा होगा कि जिस जन भाषा को वह अपनाने जा रहा है उसके जाने माने कवि और कर्णाधार कौन है। मानस के आरम्भ मे जब वह कहता है

जे प्राकृत कवि परम सयाने भाषा जिन्ह हरि चरित वखाने
भए जे अहहिं होइहहिं आगे, प्रनवउँ सबहिं कपट सब त्यागे

तब वह सच्चे हृदय से पूर्ववर्त्ती और समकालीन कवियों को प्रणाम करता है और हमे यह न भूलना चाहिये कि इन परम सयाने कवियों मे भाषा के चोटी के कवि थे—कबीर, मीरा, सूर, जायसी। इन हरि गुन गायको ने जनमन को जीता था-कबीर ने अपनी तीखी, चुटीली वानी से, सूर ने अपने रूप रस माते मधुर पदों से, मीरा ने अपने विरह विह्वल मर्मस्पर्शी गीतों से, जायसी ने अपनी कहानी की प्रवाहपूर्ण शैली से। इन महान् कवियों ने भाषा काव्य को जो गुण दिए उनकी गूँज तुलसी की कविता मे भी सुनी जा सकती है। परन्तु तुलसी की कविता की भाषा की आवश्यकताएँ कुछ और भी थीं। तुलसी ने प्रभु की जो व्यापक विराट मूर्ति देखी, जीवन को एक नया अर्थ देने वाली जिस अनुभूति का उसके मन मे प्रकाश फैला, उसके लिये उसकी भाषा एक नई व्यापकता, एक नया पैमाना, भावों और भाषाओं को हल करके उनको एक नया रूप, एक नई शक्ति देने की अभूतपूर्व क्षमता माँगती थी। उसके पूर्ववर्त्ती कवियों के क्षेत्र बहुत कुछ सीमित और सुनिश्चित थे। गीति के क्षेत्र मे भी तुलसी एक अपूर्व व्यापकता लाता है और उसके महाकाव्य की विशदता और विस्तार की तुलना मे तो उसके पूर्ववर्त्ती कवियों की भाषा संबन्धी माँगें और आवश्यकताएँ अवश्य ही सीमित और विशिष्ट हैं। भाषा के विषय मे अपने साधन और साध्य मे उसने एक भारी असमानता देखी :

राम सुकीरति भनिति भदेसा असमंजस अस मोहि अँदेसा

विषय और भाषा संबन्धी इस असामंजस्य को दूर करने में कवि ने जो सफलता प्राप्त की वही उसकी भाषा और शैली संबन्धी सफलता का मापदण्ड है। इस सफलता के मूल मे उसकी भाषा संबन्धी कुछ आधारभूत आस्थाएँ हैं।

उसकी पहली आस्था तो यह है कि भाषा सरल होनी चाहिये, विना किसी आडम्बर या दुरूहता के मन मे बैठ जाने वाली। भाषा की सरलता संसार के सब चोटी के कवियों का सब से बडा गुण रहा है परन्तु सच्ची सरलता इतनी सरल नही जितनी कहने मे सरल लगती है। उसका सीधा संबन्ध कवि के व्यक्तित्व, उसकी अनुभूति की स्पष्टता, विषयवस्तु पर उसके अधिकार से है। यह उच्चकोटि की सरलता तुलसी की कविता मे बसी हुई है। प्रसादगुण उसकी कविता का गुण ही नही स्वभाव ही है।

दूसरी बात जिसका कवि कायल है वह यह कि प्रभावपूर्ण शैली शब्दों की भीड से नही, उनकी संगति से, उनके उपयोग और प्रयोग से, उस जादू भरे संयोग से उत्पन्न होती है जिसकी सृष्टि प्रतिभावान् कवि स्वयं करता है। अनुभूति सच्ची हो, मति विमल हो, अभिव्यक्ति चोट करने वाली हो तो फिर शब्दों की जाति पाँति वंशावली से कुछ नही होता जाता। सिलाई पक्की हो, चुस्त हो, सुहानी हो तो हर कपड़े पर फबेगी। शब्द तो कच्चे माल के समान हैं। अपने मे न भद्दे न शानदार, कवि अपने कौशल से, रसज्ञता से 'भदेस' कहे जाने वाले शब्दो से भी अमर काव्य की सृष्टि कर सकता है और परम्परा की लीक पीटने वाले कवियों से चुनौती देकर कह सकता है :

तुम्हरी कृपाँ सुलभ सोउ मोरें, सिअनि सुहावनि टाट पटोरें !

तीसरी बात यह कि तुलसी भाषा और शैली को कवि के हृदयका दर्पण मानता था। उसके अनुसार निर्मल शैली के लिये विमल मति आव-

श्यक हैं। हृदय विमल न हुआ, उसमे कटुता, दुराव, संकीर्णता, दुराग्रह ने घर कर लिया तो कविता मे दर्पण के समान यह दुर्गुण झलकने लगेंगे। अतएव तुलसी की कविता मे एक निर्मल हृदय की दूसरे निर्मल हृदयों की बात चीत होती है वह हृदयों को जोड़ता है, सहज भाव से सहृदय, साधुहृदय, सज्जनों के हृदयों को छूना, आकृष्ट करना चाहता है :

सरल कवित कीरति विमल सोइ आदरहिं सुजान
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान
सो न होइ बिनु विमल मति......

अतएव उसकी कविता के पीछे एक गहरी सद्भावना है

होहु प्रसन्न देहु वरदानू साधु समाज भनिति सनमानू
जो प्रबन्ध वुध नहिं आदरहीं सो श्रम बादि बाल कवि करहीं

यह आधारभूत आस्थाएँ ही तुलसी की कविता को उसके विशिष्ट गुण प्रदान करती हैं और इन गुणो का वास्तविक मूल्य हम तभी आँक सकते हैं जब उनकी परीक्षा करते समय यह न भूले कि इन आस्थाओ के प्रकाश मे ही कवि की भाषा और शैली के गुण खिलते है।

पहले तुलसी की भाषा का प्रश्न लीजिये। तुलसी की भाषा के रूप रंग को हम तब तक नही पहचान सकते जब तक इस सचाई को न पहचान लें कि कवि की सारी कोशिश यह है कि एक ओर तो उसकी भाषा उसकी कविता के संगीत और गति के ऐसी अनुकूल हो कि उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को पूरी तरह व्यक्त कर सके और दूसरी ओर वह जन भाषा के इतनी निकट कि जन जिह्वा पर चढ जाय, जनमन की भाषा बन जाय।

जब तुलसी मन की मौज और अपनी पंक्तियों की मौज के अनुसार संस्कृत और अरबी फारसी के शब्दो को अपने काव्य में ढालता है, स्मरामि की जगह सुमिरामि, निरखने से निरखंति बनाता है, मित्रता के लिये मिताई और शीतलता के लिये सितलाई लिखता है तो भाषा संबन्धी

विशुद्धता के पुजारियों और कठमुल्लों को यह बात बहुत अखरती है; परन्तु बात तो यही है कि वह यदि शब्दों को तोड़ता मोरड़ता है, उनको ठोक पीट कर दुरुस्त करता है तो इसी लिए कि उनको जन भाषा की प्रकृति और अपने काव्य की गति के अनुकूल बनावे। अपनी कविता की धारा के प्रवाह मे वह इतना रमा है कि ऐसे शब्दों की जो उस प्रवाह के संगीत मे घुल मिल कर एकरस हो जाने के लिये तैयार न हों उसकी कविता मे गुजर ही नही। जरूरत पडने पर एक पंक्ति मे प्राय: सभी शब्दों को अपनी पुरानी वेशभूषा उतार कर पंक्ति की सगीत लहरी मे तरंगित होना पड़ता है, 'एही दरबार मे है गरब ते सरब हानि, लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता', और अपना गर्व और अभिमान तज कर यदि वे कवि के काव्य दरबार मे आते है तो उनका जन्म सार्थक भी हो जाता है।

तुलसी की कृतियों मे संस्कृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी, तुर्की, राजस्थानी, गुजराती, बँगला, मराठी, अवधी, ब्रजभाषा, बुंदेली, भोजपुरी, खड़ी बोली सभी के शब्द और प्रयोग न्यूनाधिक मात्रा मे मिलते है। आप यह कह सकते है कि उनमे अवधी और ब्रजभाषा के शब्द और प्रयोग अधिक है और दूसरी भाषाओं के थोड़े ही, परन्तु भाषा वैज्ञानिकों की राय लीजिए तो वे एक बारीकी और बताएँगे और वह यह कि अवधी के तीन वर्ग है, पश्चिमी, मध्यवर्त्ती और पूर्वी, और इसी प्रकार ब्रजभाषा के भी दो विभाग, पश्चिमी ब्रज भाषा और पूर्वी ब्रजभाषा और इस भाषा वैज्ञानिक आधार पर तुलसी की कृतियों मे आने वाले शब्दों की संख्या का हिसाब किताब कीजिए तो विभिन्न वर्गो के शब्दों की संख्या सम्बन्धी असमानता भी बहुत कुछ दूर हो जायगी!

सौभाग्यवश तुलसी भाषा वैज्ञानिकों की खोज मे सुविधा पहुंचाने के लिये कविता नही करता था और उसे न किसी विशेष शब्द या मुहावरे से अपनापन था न दुराव यदि वह सुगम हो, मधुर हो, प्रचलित और अर्थ पूर्ण हो। शायद उसके मन मे यह बात उठी भी नही कि उसकी कविता

मे इतने विभिन्न क्षेत्रो की इतनी विभिन्न वोलियों के शब्द है जितने कि आज कल के भाषा विज्ञान के ज्ञाता और गणक बतलाते है। सच बात तो यह है कि सृजनात्मक लेखक मे शब्दों के व्यक्तित्व, उनकी मुद्रा, ध्वनि, रूप, रंग की एक सहज पकड होती है और वे अपने चारो ओर व्याप्त सामाजिक और साहित्यिक वायुमण्डल मे से उन शब्दो को ले लेते है जो सफल साहित्यिक अभिव्यक्ति मे सहायक हों। कम से कम तुलसी के विषय मे तो यह पूरी तरह सच है कि उसमे विषय के अनुकूल शब्दो को चुनने की अपूर्व प्रतिभा है। उसके लिए किसी भाषा के शब्द न तो वर्जित है न अस्पृश्य। एक साहित्य सम्राट की भाँति अपने काव्य साम्राज्य को रचने के लिए उसने विविध क्षेत्रों की भाषाओं और बोलियों से कर वसूल किया है। इच्छित रस की सृष्टि के लिये, वातावरण को जीता जागता वनाने के लिये, भावों की मांग पूरी करने के लिये उसे जिस सामग्री की आवश्यकता होती है उसको वह बिना किसी संकोच के ग्रहण करता है, बिना इस वात की परवाह किए कि वह सामग्री किस भाषा क्षेत्र से ली गई है या उस शब्द की जाति बिरदारी, उसके पूर्वजों की वंशावली क्या है; क्यो कि वह सारी सामग्री जो वह लेता है उसकी काव्य प्रतिभा के कारखाने मे अच्छी तरह काटी, छाँटी, छानी बीनी जाने के बाद ही उसकी कविता की भाषा मे जगह पाती है। उसकी कविता की भाषा उसकी अपनी भाषा है, तुलसी भाषा, जिस पर उसकी अपनी ऐसी गहरी छाप है कि उसकी चौपाइयो को हजारों चौपाइयो के बीच छिपा कर रख दीजिये तो भी वह अपने रचियता का नाम स्वय घोषित कर देगी।

उसकी अवधी वैसी ठेठ अवधी नहीं है जो जायसी के पद्मावत की है। उसके काव्य की आवश्यकताएँ ऐसी गहरी और व्यापक है कि वह किसी सकुचित क्षेत्रीय शब्दावली या व्याकरणिक रूप के बन्धनो मे पड कर अपने काव्य की गति, लय और सगीत के रूप को विकृत नहीं कर सकता था। यदि उसको सहज, सुकोमल भावो को व्यक्त करना है

तो उसको अपनी अवधी की 'बतियां, हरवा, उजियरिया' बहुत जँचती हैं केवल इस लिये नही कि वे अवधी के शब्द हैं वरन् इस लिये भी कि उनमे एक अजीब मिठास, अपनापन है

चम्पक हरवा अँग मिलि अधिक सुहाइ
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ
डहकु न है उजियरिया निसि नहिं घाम
जगत जरत अस लागु मोंहि विनु राम

यदि उसके पंक्ति की गति और स्फूर्ति सस्कृत के पर्वत और प्रत्यक्ष के स्थान पर परब्बत और प्रतच्छ की माग करती है तो वह निस्संकोच अपभ्रंश के शब्दों से काम लेता है,

मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक
लसी कपि यों धुकि धायो

और नभ मे प्रत्यक्ष पर्वतो की लीक खींच कर दिखला देता है।

मगर जब वह प्रभु के दरबार मे अपनी अर्जी पेश करता है तब तो सीधे अरबी फारसी के शब्द 'साहब, दरबार, गरीब, गरीब नेवाज शब्दावली मे उतरते चले आते है। सच यह है कि तुलसी को अवधी का कवि कहना भी एक अजीब सी बात मालूम होती है जब कि उसकी सुन्दरतम रचनाएँ—कवितावली, गीतावली, विनय पत्रिका ब्रजभाषा में है, और ऐसी सुन्दर, सरस ब्रजभाषा मे कि किसी ब्रजवासी कवि ने भी वैसी सुन्दर सरस कविता क्या लिखी होगी। यह बात कि तुलसी मानस की ही भाषा का कवि है विनय की भाषा का कवि नही है उन्हीं के गले उतर सकती है जो कविता का मूल्य पक्तियों की संख्या गिन कर और पुस्तक की मोटाई नाप कर निर्धारित करते है। बात तो यह है कि भाषा विज्ञान के विशेषज्ञों ने, डाक्टर ग्रियर्सन और उनके भारतीय चेलों ने, जब तक हमको यह विशेष ज्ञान नही दिया था कि उत्तरी भारत मे ही सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ है तब तक न लेखक ही उस दुराव और

भेदभाव के वशीभूत थे न पाठक ही जिसका पाठ भाषा विज्ञान के विशेषज्ञ अब हमे पढाते हैं। उस समय न तो भाषाएँ अकादमियों मे गढी जाती थी न राजनीतिक सत्ताधारियों के दफ्तरों मे । जनता के बीच उसकी आवश्यकताओं के अनुसार भाषाएँ उगती फूलती फलती थी। तुलसी जैसा शब्दो और भाषाओं की प्रकृति का पारखी भला यह देखे विना कैसे रह सकता था कि ब्रजभाषा कोई क्षेत्रीय भाषा मात्र नही है। उसने यह बात जरूर देखी होगी कि ब्रजभाषा ब्रजभूमि के ही नही भारत भर के भक्तजनों की भाषा हो रही है, मैथिल, बंगाली, गुजराती राजस्थानी कवियों की भाषा हो रही है, पर्यटन करने वाले उन सन्तो की भाषा हो रही है जो प्रभु के नाते भेदो को मिटा कर एक आधारभूत, विशाल मानव एकता की भावना जगाना चाहते हैं। अतएव तुलसी को अवधी और ब्रजभाषा मे से किसी एक का ध्वजाधारी कवि न कह के एक व्यापक जनभाषा का कवि कहना अधिक उचित होगा। अपनी महान् कृति मानस के प्रारम्भ मे जब वह राम कथा को भाषा वद्ध करने की प्रतिज्ञा करता है तो स्पष्टत: उसका संकेत किसी एकदेशीय भाषा की ओर नही है वरन् एक व्यापक, सशक्त, सरल, सर्वजन सुलभ भाषा की ओर है। उसकी भाषा का रंग एक अनुपम सतरंगी भाषा रंग का है जिसमे वैसे तो सभी रंगो का समावेश है परन्तु जिसका अपना निजी गुण है, एक पारदर्शी स्वच्छता। यह दूसरी वात है विषय और प्रसंग के अनुकूल कही एक रंग ज्यादा तेज दिखाई देता है तो कही दूसरा। कृष्ण गीतावली मे तो ब्रजभाषा का ही रग अधिक चटकीला है, 'सिगरियै हौ ही खैहौ बलदाऊ को न दैहौं,' परन्तु ब्रजभाषा का रंग लाने के लिये वह अपनी भाषा की बुनावट नही भूलता :

मैया इन्हहि वानि परगृह की नाना जुगुति वनावहिं
भाजन फोरि वोरि कर गोरस देन उरहनो आवहिं।

इसी प्रकार मानस मे भाषा तो अवधी जरूर है परन्तु ब्रजभाषा की मधुरता का पुट देने से वह नही हिचकता,

मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो वरु सहज सुन्दर साँवरो
करुनानिधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो।

इन पक्तियो मे कितनी प्रतिशत अवधी है कितनी ब्रज भाषा और कितने ऐसे संस्कृत के शब्द है—'करुना निधान, सुजान, सीलु, सनेहु'-जिनको कवि ने विकृत नहीं, विकसित, रससिक्त, काव्य मन्त्राभिषक्त करके अपना बना लिया है, यह तो भाषा विज्ञानवेत्ता ही बतावेगे परन्तु यह प्रत्येक पाठक का मन बताता है कि सामूहिक रूप से इन पंक्तियों की शब्द योजना, शब्द संगीत और छन्दो की गति मे मन को मुग्ध करने की एक विचित्र शक्ति है ।

लोकप्रिय अवधी और कवियों की प्रिय ब्रजभाषा में देववाणी संस्कृत की चाशनी तुलसी बराबर देता रहता है क्यों कि संस्कृत के शब्द उसके सास्कृतिक और बौद्धिक जीवन मे व्याप्त है । कलात्मक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये वह ठेठ सस्कृत के शब्दो का भी प्रयोग करता है । विधि पूर्वक शंकर भगवान् की आराधना करने वाले गुरु ब्राह्मण की भाषा वह संस्कृत ही रखता है :

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं विभुं व्यापकं। ब्रह्म वेदस्वरूपं
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं

परन्तु भावों के साथ साथ भाषा को भी बदलने की अनुपम कला मे वह ऐसा सिद्धहस्त है कि एक ही स्तुति की एक पंक्ति को तो वह संस्कृत से वोझिल कर देता है और दूसरी ही पंक्ति को भावों की माग के अनुकूल सरल हृदय की सीधी सादी भाषा की आर्द्रता से द्रवित:

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं

अतएव भाषा के क्षेत्र में तुलसी एक रसज्ञ निर्माता है, किसी बनी बनाई भाषा का विद्यार्थी नही । भाषा के विषय मे उनके तीन ही ध्येय

है-भाषा सरल हो, सफल हो, मंजुल हो। उसकी भाषा को पूर्व और पश्चिम, अवधी और ब्रज, भाषा और संस्कृत के झगड़ों से बाहर निकाल कर यदि हम उसके जीवित स्वरूप को देखे तो हमे मालूम होगा कि अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिये वह जिन शब्दों की ओर झुकता है उनसे वह यही गुण मागता है—वे सरल हों, सफल हो, मंजुल हों। ऐसे शब्दों की खोज मे प्रतिभा की पवन उसे जिधर ले जाती है वह उधर ही मुड़ता है। हमे यह पवन कभी पछुवा जान पड़ती है कभी पुरवैया परन्तु उसका अपना सब मे बडा गुण यही है कि उसमे भाव उगते है, पनपते है, पुष्पित पल्लवित होते है, वह जीवन दायिनी बसंत बयार है।

काव्य कला की दृष्टि से तुलसी की कविता का मूल्याकन करने के अनेक प्रयत्न हुये हैं परन्तु यह प्रयत्न तभी सफल हो सकते है जब हम याद रक्खें कि उसकी कविता के आधारभूत गुण ऐसे है जो सीमित संकुचित अर्थ मे कला और कलाकारी की पहुँच के बाहर हैं। जब तुलसी दुहाई देता है कि मै 'वचनप्रवीन' नहीं सकल कला सब विद्या विहीन हूँ

आखर अरथ अलंकृति नाना, छंद प्रबन्ध अनेक विधाना
भाव भेद रस भेद अपारा कवित दोष गुन विविध प्रकारा
कवित विवेक एक नहिं मोरें सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे

तो यह केवल विनम्रता नही है। वास्तव मे उसकी कविता का चरमोत्कर्ष कला और कलाकारी मे नही है वरन् एक ऐसी नैसर्गिक सहजता, सरलता, अकृत्रिमता, कला-'विहीनता' मे जिसमे उसकी कला का सारा रहस्य निहित है। इस गहरी कला का स्वरूप पहचाने बिना हम उसकी कला का वास्तविक सौदर्य नहीं देख सकते।

तुलसी की भाषा की सारी सजीवता शब्दों की चकाचौध पर नहीं उनके प्रयोग पर आश्रित है। मुहावरेदार प्रयोग भाषा की जान है बल्कि यों कहिए कि कोई भाषा उसी अंश मे जानदार है ही जिस अंश में वह मुहावरेदार है। ऐसी भाषा के स्रोत कोष और व्याकरण नही होते,

न वह जड़ अचल निमयों का मुँह ताकती है। उसके स्रोत होते है कवि की प्रतिभा और कवि का जन भाषा से सम्पर्क। तुलसी ने भाषा की प्राणशक्ति के इस गुर को पहचाना था और उसकी भाषा मे सुन्दर प्रयोग, मीठी चुटकियो, मनहर मुहावरों की एक अजीब बहार है। अधिकतर वह न तो कोई दूर की कौड़ी लाने की कोशिश करता है, न अलंकारों की छटा दिखाने की। हर्ष, शोक, आवेश मे जिस बोलचाल की भाषा का हम प्रयोग करते है उसी का वह भी प्रयोग करता है परन्तु यही भाषा सीधी साधी होती हुइ भी सजी सजाई, अनजानी, अलकारपूर्ण भाषा से कहीं ज्यादा जोरदार, लचीली, भावपूर्ण हो जाती है, केवल इस लिये कि वह स्वाभाविक है, वक्ता के चरित्र, मनोदशा के अनुकूल है, उसमे ठीक जगहों पर ठीक शब्दों पर जोर डाला गया है। नारद मोह के प्रसंग मे क्रुद्ध मुनि प्रभु को शाप दे रहे हैं :

परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई
भलेहि मंद मंदेहि भल करहू बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू
डहकि डहकि परिचेहु सब काहू अति असंक मन सदा उछाहू
करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा अबलगि तुम्हहि न काहू साधा
भले भवन अब बायन दीन्हा पावहुगे फल आपन कीन्हा।

कैसी सीधी साधी बोल चाल की भाषा है परन्तु कैसी स्वाभाविक, मुहावरेदार, जानदार, चुटीली।

तुलसी की भाषा मुहावरेदार, इसलिए नही है कि उसमे मुहावरों और लोकोक्तियों की भरमार है और यह दिखाने के लिए कि उसकी भाषा मुहावरेदार है उन सूक्तियो और लोकोक्तियो की तालिका बनाने की भी जरूरत नही जो उसकी कविता मे आती हैं। मुहावरेदार होना उसकी भाषा का स्वभाव है। वह अपने विचारो को चौपाई के चरणों मे ऐसे संतुलित ढंग से ढालता है कि साधारण उक्ति भी एक लोकोक्ति जैसी जान पड़ने लगती है।

जिय विनु देह नदी बिनु बारी, तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी

यह संतुलन और चुटीलापन उसकी विचार शैली का भी ऐसा ही गुण है जैसा कि उसकी शैली का । जिन लोकोक्तियो के कुशल प्रयोग के लिये आलोचक, विशेष रूप से विदेशी आलोचक, तुलसी की प्रशंसा करते है उनमे से अधिकतर तुलसी की मौलिक सूक्तियाँ होती है, ऐसी लोकोक्तियाँ नही जो किसी ने बनाई हो और उसने अपनाई हो। उसकी उक्तियो के पीछे उसकी पैनी दृष्टि, उसका चिन्तन, उसकी अनुभूति इतनी सक्रिय रहती है कि उसकी उक्तियो मे एक अनुपम ताजगी, सजीवता होती है जो दूसरों की सूक्तियो को दुहराने वाली शैली से बिलकुल अलग है ।

तुलसी मे जनभाषा की प्रकृति और प्रतिभा की ऐसी सच्ची पकड है, कवि की प्रतिभा ही कुछ ऐसे सगुण रूपो मे रमण करने वाली है, वह भाषा मे सजीवता और मूर्त चित्रो का इतना कायल है कि चित्रमय वाक्य उसकी कविता के ताने बाने बन गये है ।

काशी की दुर्दशा का वर्णन करते समय उसके मन मे एक चित्र खिंचता है :

पाहि हनुमान करुणानिधान राम पाहि
कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई हैं

परन्तु अपने इस विश्वास को कि काशी पर आने वाली कोई विपत्ति बहुत दिनों नही ठहर सकती वह दूसरे ही चित्रों मे अंकित करता है :

कासी में कंटक जेते भए ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो
आजु कि काल्हि परौं कि नरौं जड़ जाहिंगे चाटि दिवारि को दीयो

इन उदाहरणों मे कहना कठिन है कि शैली की खूबी मुहावरो मे है या एक जागता हुआ चित्र सामने लाने मे । और जब वह अपने प्रभु से कहता है :

तुलसी को भलो पै तुम्हारे ही हिए कृपालु
कीजै न विलम्ब बलि पानी भरी खाल हैं

तो 'पानी भरी खाल' मे मुहावरा जो कुछ भी हो कवि की दयनीय दशा मूर्तिमान् हो उठती है।

सजीवता और चित्रमयता के साथ साथ तुलसी की भाषा मे एक अनुपम मितव्ययता है, 'अरथ अमित अति आखर थोरे'। एक स्थिति या तर्क के सार को ग्रहण करके उने कुछ चुने अर्थपूर्ण शब्दों मे, व्यक्त करना उसकी शैली की एक बहुत बड़ी विशेषता है। कही कही तो उसने जटिल से जटिल दार्शनिक तथ्यो को इतने थोड़े परन्तु उपयुक्त और अर्थ पूर्ण शब्दो मे व्यक्त किया है कि आप चाहे तो एक पंक्ति पर दार्शनिक विवेचन की एक पोथी लिख सकते है :

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी, उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी
सो सुतंत्र अवलंब न आना, तेहि आधीन ग्यान बिग्याना

ऐसी अमर अनन्तकाल तक प्रकाशमान् रहने वाली पंक्तियो मे कवि की सार ग्रहण करने वाली बुद्धि की स्पष्ट छाप है। कही कही तो वह बिना कुछ कहे ही इतना कह जाता है जितना कोई कितना भी कहे तो क्या कह पायेगा :

श्याम गौर किमि कहहुँ बखानी गिरा अनयन नयन बिनु बानी

तुलसी की कविता का प्रसाद गुण केवल एक नकारात्मक गुण नही है— कर्णकटु, क्लिष्ट शब्दो, पांडित्यपूर्ण समास योजना, कृत्रिम उपायों द्वारा चमक दमक, रोब दाब लाने की चेष्टा का अभाव। इस गुण के कारण एक ओर तो उसकी कविता मे वे दुर्गुण नही आने पाते जो हिन्दी और भारतीय कविता के बड़े २ कवियो मे भी अक्सर बहुत खटकते हैं, जैसे अनावश्यक शब्दाडम्बर, अलंकारों की भरमार, उक्ति वैचित्र्य के पीछे पड़कर सजीव भावों की निर्मम हत्या, और दूसरी ओर एक ऐसी नैसर्गिक, निर्मल,

स्वस्थ, शान्ति दायिनी सरलता आ जाती है जो साधारण व्याकरणिक और भाषा वैज्ञानिक समीक्षाओं की पकड़ से ऊँची उठ कर प्रसाद गुण को भी एक नया प्रसाद देती है।

कूट, उल्टवासी, कठिन कविता के दाँव पेंच तो तुलसी की कविता मे ढूँढे नही मिलेंगे। कुछ स्तोत्र ढूँढने पर अवश्य मिल सकते है जिनमे संस्कृत के तत्सम शब्दों और समासो का प्रयोग है यद्यपि तुलसी की सम्पूर्ण रचनाओं के अनुपात मे ऐसे स्तोत्रों की संख्या इतनी कम है कि वे तुलसी की कविता शैली की प्रधान धारा मे ऐसे खो जाते है जैसे उनका कोई अस्तित्व ही न हो। फिर भी उन विशेष अभिप्रायों को देखना जरूरी है जिनके वश मे वे लिखे गये है। सारे तुलसी साहित्य पर दृष्टि डालिये तो केवल मानस के मंगलाचरणों और विनय पत्रिका के प्रारंभिक पदों ही पर ध्यान जाता है जहाँ संस्कृत श्लोकों और समासयुक्त भाषा का कवि ने प्रयोग किया है। मानस के मंगला चरण के श्लोक तो ऐसे सुमधुर, सुन्दर, हृदयग्राही है कि क्लिष्टता और दुरूहता के सन्दर्भ मे उनकी चर्चा करना भी पाप है। परन्तु देखने की बात यह है कि मानस के मंगलाचरण और विनय के प्रारम्भिक श्लोक एक विशेष वातावरण की सृष्टि करते है। उनमे कवि का आग्रह संस्कृत भाषा और व्याकरण की विशुद्धता के लिये नही है उनमे जो चीज वह अपनाता है वह है संस्कृत के शब्दों की सौम्यता, उनका लालित्य, उनका नाद सौन्दर्य, उनकी ध्वन्यार्थव्यंजक शक्ति जिनके सहारे वह अपनी प्रार्थना मे गम्भीरता लाता है और अपनी मानसिक पूजा के चित्रो मे रंग रूप भरता है। जहाँ कही तुलसी संस्कृत की गम्भीर शब्दावली अपनाता है वह विशिष्टि अभिप्रायों की पूर्ति के लिये, किसी रस की सृष्टि के लिये, किसी मनोदशा को रेखांकित करने के लिए, मंगलध्वनि करने के लिए, ग्रन्थ को एकान्विति देने के लिये, ऋषियों, देवताओ के गौरव, आचरण, भाव भंगिमा का रंग गहरा करने के लिये। यह सब प्रयोग उसकी शैली की कठोरता नहीं उसके लचीलेपन के उदाहरण है।

मगलाचरण करने के वाद (जैसा हमने विनयपत्रिका के प्रारम्भिक पदों के विषय मे दिखलाया है) वह फिर अपनी सहज, जनभाषा पर लौट आता है। मानस मे एक संस्कृत श्लोक में मंगला चरण कर चुकने के बाद वह भाषा मे एक और मंगलाचरण करता है।

वर्णानामर्थ संघानां रसानां छन्दसामपि
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ

इससे भी सुन्दर भावपूर्ण मंगलाचरण कोई हो सकता है? इसके जोड के संस्कृत साहित्य में भी जो श्लोक आप को याद आएँगे उनकी आभा याद करने पर आपको फीकी पड़ती दिखाई देगी। परन्तु ऐसे सुन्दर मंगलाचरण के बाद भी तुलसी अपनी प्रिय अति मंजुल भाषा मे एक और मंगलाचरण करता है:

जो सुमिरत सिध होइ गन नायक करिवरवदन
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभगुन सदन

जैसे वह कह रहा हो विधि विधान, परम्परा परिपाटी की भाषा और है परन्तु मेरे काव्य की भाषा जिसके मंगलाचरण करोडों की जबानों पर चढ जायँगे और ही है।

अतएव तुलसी की शैली का आधार भूत, मौलिक गुण तो सरलता है और जो भी अलंकार आभूषण, काव्य चातुरी उसकी कविता में दिखलाई जा सकती है वह उसकी कविता की इस माँग के अधीन और वशव-र्त्तिनी है।

अलंकारो के नमूने उसकी कविता में कदम कदम पर मिलेगे परन्तु यह अलंकार, काव्यचातुरी का चमत्कार दिखलाने के लिये परिश्रमपूर्वक लाए गए अलंकार नही है, वे कवि की उच्चकोटि की अनुभूति और उसकी विशिष्ट प्रतिभा के आवश्यक परिणाम हैं। यह एक अजीब बात है कि बिना यह जाने हुए कि उनमें कौन सा अलंकार है पाठक तुलसी की पक्तियों का पूरा आनन्द पाते हैं और यह जान लेने पर कि उनमे

कौन सा अलंकार है उनके आनन्द मे कोई विशेष वृद्धि नही होती बल्कि कभी कभी तो कुछ कमी ही हो जाती है क्योकि एक तो वह आनन्द जिसका आधार अनुभूति, भावना, कल्पना होना चाहिये बौद्धिक विश्लेषण ले लेता है, दूसरे एक विशेष नाम दे देने से रसानुभूति के क्षितिज सीमित और निर्धारित हो जाते है। तुलसी का काव्य सौन्दर्य सृजनात्मक है और सृजनात्मक ढंगो स ही उसका रसास्वादन भी किया जा सकता है।

तुलसी की उपमाएँ, उत्प्रेक्षाएँ लीजिये।

उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ उसकी कविता के चालू सिक्के है, उसकी भाषा के ताने बाने है। परन्तु उसकी दृष्टि मे उपमाएँ भावो को जागरित करने, प्रभाव को मन पर अकित करने के साधन मात्र है। उसकी दृष्टि मे उपमाओ का वह मूल्य नही है जो उन कवियों की निगाह मे होता है जो केवल रोचकता और चमत्कार लाने के फेर मे रहते है। समुचित और अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न करने के लिये वह आवश्यकता होती है तो उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं की झडी लगा देता है और तब तक नही रुकता जब तक वह स्वय सन्तुष्ट नही हो जाता कि अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न हो गया। राम नाम के दो अक्षर उसको कितने प्रिय है यह कैसे कहे? वही उसके जीवन के आधार है, परन्तु जब कहने लगता है तो मूर्तियों और प्रतीको की माला पिरोता चला जाता है जब तक वह स्वयं सतुष्ट नही हो जाता कि उसकी मूर्तियाँ सजीव हो रही है और वह पाठक के मन मे प्रतिष्ठित हुये बिना नही रह सकती। यदि रघुपति भक्ति वर्षा ऋतु है तो राम नाम सावन भादों मास है, यदि वर्णमाला शरीर है तो दोनों मधुर मनोहर अक्षर उस शरीर के दो नेत्र है, इन दोनों अक्षरो का अलग वर्णन ही अनुचित है, क्यों कि दोनों सहज सँघाती हैं :

वरनत विलग प्रीति बिलगाती, ब्रह्म जीव सम सहज संघती।
नर नारायण सरिस सु भ्राता, जग पालक विसेषि जन त्राता।
भगति सुतिय कल करन विभूषन जग हित हेतु विमल विधुपूषन

स्वादुतोष सम सुगति सुधा के कमठ सेष सम धर बसुधा के।
जन मन मंजु कंज मधुकर से जीह जसोमति हरि हलधर से।
एकु छत्र एकु मुकुट मनि सब बरननि पर जोउ
तुलसी रघुबर नाम के बरन विराजत दोउ ।

आप देख सकते है कि कवि उपमा नही दे रहा है वरन् उसका मन रूपी भ्रमर मँडरा रहा है उन राम नाम के दो वर्णों के चारों ओर जिनका रस वह स्वान्तः सुखाय स्वयं भी लेना चाहता है और औरों को भी चखाना चाहता है।

तुलसी की उपमाओं के सम्बन्ध मे कतिपय सुविज्ञ विद्वानों ने यह विचार पेश किया है कि वे प्रायः पुरानी ही परिपाटी का अनुसरण करने वाली होती है उनमे नवीनता की कमी होती है। उनके अनुसार तुलसी इस विषय मे एक रूढ़िवादी कवि है। परम्परागत उपमाओं का परम्परागत अर्थो मे प्रयोग करने का वह इतना आदी हैं कि नए नए पक्षों को देखने के बजाय वह रूढ़ियों का बुरी तरह दुरुपयोग करता है। सुन्दर रूप के लिये मनसिज, सुन्दर चाल के लिये गज, सुन्दर आकृति के लिये चन्द्रमा, और जो चीज भी अच्छी भली मालूम हुई उसके लिए कमल की उपमा का वह इतनी बार और ऐंसी बेपरवाही से प्रयोग करता है कि उन उपमाओं की सारी सरसता ही जाती रहती है। इस दोषारोपण मे कुछ ऐसी ऊपरी चमक भी है कि असावधान पाठक इसे एक बार ठीक भी मान सकता है। अतएव इस आरोप की सचाई की जरा नजदीक से परीक्षा करना आवश्यक है। काव्यगत चित्रो को केवल एक साहित्यिक चमत्कार उत्पन्न करने का साधन मानने के हम ऐसे आदी हो गए है कि उनकी आभूषण और अलंकार से अधिक कुछ और कीमत हम जानते ही नही। परन्तु सच तो यह है कि कवि के हृदय, उसकी अनुभूति के रूप को प्रकाश मे लाने के लिये काव्यगत चित्रों से अधिक अछूता और विश्वसनीय साधन और कोई है भी नही। सृजनात्मक साहित्य के महा-

रथियो मे, शेक्सपियर, कालिदास, तुलसी सभी के मन मे कुछ बार बार आने वाले काव्यचित्रों का कुछ विशेष मनोदशाओं, कुछ विशेष अनुभूतियों के साथ अद्भुत और आन्तरिक साहचर्य है। शेक्सपियर के काव्य चित्रों का आधुनिक आलोचको ने मार्मिक अध्ययन किया है और जहाँ जहाँ उसने चन्द्रमा या मणि या समुद्र आदि चित्रों का प्रयोग किया है वहाँ वहाँ उन चित्रों के साथ उसके मन मे कौन से भाव जगत् जुड़े है इसकी विशद छान बीन ने शेक्सपियर की कृतियो के रसास्वादन मे नये क्षितिजों की ओर पाठको की दृष्टि मोडी है। कमल, कुमुदिनी, चातक, चकोर और चन्द्रमा के साथ भी भारतीय धार्मिक ग्रन्थों और ललित साहित्य मे अनन्त भाव लहरियों और अन्यतम अनुभूतियों का साहचर्य है और इनकी खोज और विशिष्ट कवियों की अनुभूतियों से उनका संबन्ध स्थापित करना एक अत्यन्त हृदयग्राही साहित्यिक समीक्षा का विषय हो सकता है।

जहाँ तक तुलसी का सम्बन्ध है वह जब अपने प्रभु के सन्मुख हो कर कहता है, 'नवकंज लोचन, कंज मुख; कर कंज पद कंजारुणं तो यकीन मानिए जो कमल उसकी आँखों मे छाये है उनकी नित नूतन कोमलता, प्रफुल्लता, अरुणाई का एक अत्यन्त सजग अनुभूति से संबन्ध है, किसी दूसरी ज्यादा चमकदार उपमा के न मिलने की विवशता वश उनका प्रयोग नही हुआ है। यदि हम उस अनुभूति की यथार्थता को न भी पाएं और हमारा दृष्टि कोण केवल एक कला पारखी का ही हो तो भी ऐसी उपमाओ की उपयोगिता जिनसे वक्ता और श्रोता दोनो परिचित हो, स्पष्ट है। हम उपमाओं को श्रोता की बुद्धि को जरा देर के लिये चमत्कृत कर देने का एक साधन मात्र मानते है परन्तु एक प्रभावपूर्ण उपमा में कुछ और गुण होने चाहिये। सुन्दरता की सृष्टि करने वाले सच्चे कलाकार के लिये यह अनिवार्य है वह जो कुछ भी देखे उसका दर्शन उसे सुस्पष्ट हो। अस्पष्ट, अनिश्चित, केवल कुतूहल या उत्तेजना उत्पन्न करने वाली उपमाएँ कभी अपने असली उद्देश्य मे सफल नही होती। यदि

कवि ने जो देखा है, स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष देखा है तो उसके साक्षात्कार की सजीवता उसकी कला की सजीवता की सब से गहरी और दृढ आधार शिला है । अतएव महान् कवियों के काव्यगत चित्र जितने सुस्पष्ट होते है उतने ही वस्तुपरक और वे उन चित्रों को बार बार दुहराने मे कोई संकोच नही करते । दूसरी एक बात यह भी है कि इन उपमाओं या चित्रों द्वारा ऐसे कवि जो समानता या संबन्ध स्थापित करना चाहते है वह एक वाहिरी नही वरन् आन्तरिक और आधार भूत समानता होती है, अतएव वह एक बाहरी छिछली समानता, संगति के पीछे न पड़ कर ऐसे काव्य चित्रों का बार बार प्रयोग करते हैं जो उनकी निजी अनुभूतियों से संचारित होते हैं और अन्त: सुख देने वाले होते है । कुछ चित्रों मे भावों और विचारों को केन्द्रीभूत करने की अदभुत शक्ति होती है । रूप की जो झलक, प्रकाश और सौन्दर्य का जो साहचर्य कमल मे है उसकी शक्ति और सम्पन्नता का कुछ आभास तो तभी मिल सकता है जब कमल के अतिरिक्त और किसी चित्रद्वारा उस रूप माधुरी को व्यक्त करने की कोशिश की जाय जो 'कर कंज लोजन कंज मुख कर कंज पद कजारुणं के भाव जगत और स्वर लहरी मे व्याप्त है । प्रतीकों का वह सारा स्वप्नलोक, शब्द ध्वनियों का वह सारा जादू जो पक्ति की कजमाला मे पिरोया हुआ है क्षरण भर मे टूट जायगा । कवि सोंदर्य की झलके एक अन्त· स्वप्न, एक आन्तरिक दर्शन के रूप मे पाता है । कोई बनावटी चित्रकारी या शब्द चातुरी उसके मौलिक दर्शन का प्रभाव नहीं उत्पन्न कर सकती । अतएव किस काव्य चित्र मे कितनी ताजगी है इसके निर्धारित करने मे कुछ हिस्सा इस बात का भी है कि हमारे मन मे कितनी ताजगी है, हमारे मन मे उस अनुभूति से कितनी सहानुभूति है जिसको कवि चित्रित करना चाहता है । यदि कवि के भावो से आप के मन मे समुचित सहानुभूति है तो आरती के क्षरणों मे जब आप नव कंज लोचन, कंज मुख कर कज पद का ध्यान करेगे तो तुलसी के गीत के कंजो की कोमलता, प्रफुल्लता, अरुणाई आप के हृदय मे भी जाग

उठेगी, वे आपके हृदय के भीतर की कोमलता, प्रभुल्लता और आनन्दो-ल्लास को भी हिलोरे देने लगेगे, क्योकि कवि की पंक्ति मे कमलो की आत्मा, उनकी रसमाधुरी, उनकी आभा, उनकी सारी विश्रान्ति उतर आई है।

सच बात तो यह है कि बजाय परिपाटी और परम्परा की लकीर पीटने के तुलसी ने पुराने उपमानो का कायाकल्प किया है, उनको नवजीवन दिया है, उनके नये पक्षों का उद्‌घाटन किया है, नये नये प्रयोगों द्वारा उनको नए अर्थ संकेत दिए है।

यदि एक जगह वह लिखता है 'नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन वारिज नयन' तो दूसरी जगह 'कमल' ही द्वारा ऐसी तरल तंरगित, विद्युत लहरियो की भी सृष्टि करता है जो वेजोड़ है :

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता कँह गये नृप किसोर मनु चीता
जहँ विलोकि मृगसावक नैनी जनु तहँ वरिस कमल सित स्रेनी।

इन श्वेत कमलो की वर्षा मे यदि कल्पना की नवीनता और ताजगी नही है तो और कही नही है। नए नए पक्षों का उद्‌घाटन तो तुलसी अपनी कृतियों मे कदम कदम पर करता है—कर कमल-'सोहत जनु जुग जलज सनाला ससिहिं सभीत देत जयमाला; चरण कमल—'राम चरन पंकज मन जासू लुबुध मधुप इव तजेउ न पासू; सकुचाए कमल—'सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने, मुरझाए कमल—'इन्द्रिय सकल विकल भई भारी जनु सर सरसिज वन बिनु बारी, और वे कमल जो अनुराग के सरोवर मे उत्पन्न होते है और अपार रूप की रश्मियों के आलोक मे एकाएक विकसित हो उठते है—अनुराग तड़ाग मे भानु उदै बिगसी मनो मंजुल कज कली!

अलंकारो के विषय मे तुलसी एक ही कसौटी रखता है, वे सफल हों और अधिक से अधिक अर्थसंकेत देने वाले हों, यदि नई उपमाओ से

भाव मूर्तिमान होता है तो नई मूर्त्तियाँ बनाता है, यदि पुराने चित्रो की सहायता से वह भाव को सफलता पूर्वक व्यक्त कर सकता है तो रूढिगत चित्रों को अपनाता है, परन्तु किसी कीमत पर भी वह जटिलता, दुरूहता निर्जीवता नही आने देता।

तेहि पुर वसत भरत बिनु रागा, चंचरीक जिमि चम्पक बागा

अनासक्त भरत की इससे अधिक जीती जागती तस्वीर और कौन हो सकती है, चाहे चंचरीक और चम्पक कितने भी रूढिगत हो। रूढिगत चित्रों द्वारा वह भरत की निस्पृहता और विरक्ति को भी दर्शाता है :

भरतहिं होहि कि राजमदु विधि हरि हर पद पाइ
कबहुँ कि कांजी सीकरनि छीर सिन्धु विनसाइ

चित्रो की नवीनता प्राचीनता मे कुछ नही होता जाता, उनके आघात, उनकी तीव्रता, उनके अर्थ सकेत मे ही उनकी सारी शक्ति निहित है :

भरत महा महिमा जलरासी मुनिमति ठाढ़ि तीर अबला सी

सागर तट पर खड़ी असहाय अबला का यह चित्र उतना ही नवीन और वस्तुपरक है जितना अर्थपूर्ण। उससे केवल भरत की महामहिमा और मुनिमत मे अन्तर ही नही प्रकट होता, वह भक्ति रूपी जलरासि की गहराई और गम्भीरता और गहराई की थाह लेने की कोशिश मे चकराई मुनिमत की असमर्थता का भी द्योतक है।

तुलसी की कविता मे आने वाले काव्यालंकारों को गौर से देखिवे तो उनकी प्रकृति अक्सर बिलकुल आधुनिक, नवीनतम काव्यालंकरो की है। मानवीकरण आधुनिक काव्य का एक अत्यन्त प्रचलित और प्रिय अलंकार है, जड पदार्थो या सूक्ष्म गुणो के विषय मे इस प्रकार लिखना जैसे वे चेतन हों। तुलसी की कविता मे इस अलंकार के अनेक अछूते नमूने हैं :

सीदति साधु साधुता सोचति खल विलसत हुलसति खलई है।

ऐसा साफ मार्मिक 'मानवीकरण, साहित्य के पृष्ठो मे बहुत ढूँढने से मिलेगा ।

हय गय कोटिन्ह केलि मृग पुरपसु चातक मोर
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर
राम वियोग विकल सब ठाढ़े जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े

इस प्रकार की अमानव मे मानव भावनाओ से सहानुभूति दिखलाने की प्रवृत्ति के लिये कोई विशेष नाम हो या न हो, (अँग्रेजी साहित्य मे भी विगत शताब्दी ही मे जान रस्किन ने ऐसे भावाभास के लिये एक नया नाम पैथेटिक फैलेसी निकाला था) परन्तु इस प्रकार की अभिव्यक्ति तुलसी के लिए स्वाभाविक है ।

तुलसी की कविता मे अलंकारो की खोज एक अजीब पकड़ मे न आने वाले गुण की खोज जैसी जान पडती है और इसका एक विशेष कारण है । तुलसी की कविता मे अभिव्यक्ति के अनेक ऐसे गुण है जो विशेष रूप से उसके व्यक्तित्व, उसकी अनुभूति मे सम्बन्ध रखते है । उसकी कविता मे अनुभूति और अभिव्यक्ति का ऐसा घनिष्ट सबंध है, अनुभूति अभिव्यक्ति को इतने प्रबलरूप से प्रभावित, निर्धारित, संगठित करती है कि जिनको हम अलंकार समझते है वे उसके भाव रूपी शरीर पर ऊपर से पहनाये गये वस्त्राभूषण नहीं हैं, उनको उसके भावो की त्वचा कहना अधिक उपयुक्त होगा । तुलसो की कृतियों का अनुवाद करने की, उनका 'रूपान्तर' करने की बहुत कोशिशें की गई है, परन्तु कोई रूपान्तर, अनुवाद आज तक वह भावलहरी, वह प्रतिक्रिया, प्रभाव नही उत्पन्न कर सका जो मूल कृति करती है ।हम यह समझते है कि तुलसी का उद्देश्य कुछ अच्छे विचारों को आकर्षक भाषा म पहना कर उन्हे ग्राह्य, लोकप्रिय बनाना है और यह विचार अनुवाद द्वारा भी वितरित किये जा सकते है । हम इस आधार-भूत सत्य को भूल जाते है कि उसकी भाषा उसकी खोज का अभिन्न अग है । जिस भाषा और शैलीमे वह अपने को व्यक्त करता है उसी के सहारे वह अपनी खोज मे भी सफलीभूत हुआ है । उसकी भाषा और शैली

केवल एक माध्यम मात्र नही है वल्कि वही एक मात्र माध्यम है जिसके द्वारा उसकी अनुभूति मूर्तिमान, सजग हुई है। वास्तव मे जो अलंकार हम ढूँढ कर तुलसी की कविता मे निकालते है उनमे अधिकतर ऐसे है जिनका सीधा सम्बन्ध किसी अलंकार प्रियता से नही है वरन् काव्य के क्षेत्र मे उसकी अपनी विशेषताओ से है। इसकी कल्पना ऐसी वस्तुपरक है, अपनी अनुभूतियो को मूर्तिमान् रूप मे देखना उसके लिये इतना स्वाभाविक और सुगम है कि उसकी कविता मे उपमा, उत्प्रेक्षा रूपी चित्रो का अपने आप ही बनते जाना अनिवार्य है। अपनी कृति ही को वह मूर्त्त रूप मे देखता है। मानस उसके मानसिक चक्षुओ में एक सरोवर है, सातकाण्ड सरोवर की सात सीढियाँ है, प्रभु की अगुन अगाध महिमा जल की अथाह गहराई है, उपमाएं, तरंगे है, चौपाइया, पुरइन है, युक्तियाँ, सीपियां; छन्द सोरठे दोहे, कमल; अर्थ, भाव, भाषा, पराग, मकरन्द, सुगन्ध! स्वभावत: वह विवेचन विश्लेषण मे अधिक प्रतीकों का सहारा लेता है, व्याख्यात्मक वाक्यो से अधिक उपमाओ, रूपको पर भरोसा रखता है, तर्क मे अधिक हमारे मन मे बसी हुई गति, लय सम को जागरित करता है।

तुलसी की कविता के आधुनिक आलोचको को यह बात बहुत खटकती है कि अक्सर वह बड़े लम्बे २ रूपक बाँधता है। साधारण काव्य कौशल तो इन रूपकों के प्रसार और विस्तार को सम्हाल भी नही सकता। यदि भावों की सूक्ष्मता रूपक का सहारा मागती है तो किसी भी सहृदय पाठक को न यह बात खटकती है न याद ही रहती है कि रूपक छोटा है या लम्बा हुआ जा रहा है। बन मे श्री राम और राजा जनक के मिलन का दृश्य है। सहज स्नेह और भावातिरेक, शान्त और करुण रसों को शब्दों मे उठाना है :

आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु
सेन मनहुँ करुना सरित लिये जाहिं रघुनाथु
बोरति ज्ञान विराग करारे, वचन ससोक मिलत नद नारे

सोच उसास समीर तरंगा, धीरज तट तरुवर कर भंगा
विषम विषाद तोरावति धारा, भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा
केवट बुध विद्या बड़ि नावा, सकहिं न खेइ एक नहिं आवा
वनचर कोल किरात विचारे, थके बिलोकि पथिक हियँ हारे
आश्रम उदधि मिली जब जाई, मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई

करुना सरिता और आकुल अंबुधि की करुणा और आकुलता जैसे अपने आप अपना स्वरूप ग्रहण करने लगती हो, उसमे रूपक उत्प्रेक्षा ढूँढना व्यर्थ की चेष्टा हो। भुक्ति, माया, ज्ञान पर बडी बडी पोथियाँ रँग डालिए परन्तु तुलसी अपनी रगीन भाषा मे एक ही दृष्टान्त मे सारी स्थिति स्पष्ट कर देता है :

ग्यान बिराग जोग बिग्याना ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती अवला अवल सहज जड़ जाती
मोह न नारि नारि के रूपा पन्नागारि यह रीति अनूपा
माया ।भगति सुनहु तुम दोऊ नारि वर्ग जानै सब कोऊ

सच तो यह है कि तुलसी की पक्तियो मे विविध अलंकारो का एक साथ ही ऐसा सम्मिश्रण होता है कि आप निश्चित रूप से यह कह ही नही सकते कि किस एक गुण के कारण वह आपके हृदय को पकडती है। आप ढूँढते है उपमा और उत्प्रेक्षा और मन मे वे गूँजने लगती है किन्हीं दूसरे ही कारणो से, एक नैसर्गिक गति के कारण, ध्वनियो की शक्ति के कारण, सद्य स्फूर्ति के कारण :

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि, कहत लखन सन राम हृदय गुनि
मानहु मदन दुन्दुभी दीन्ही, मनसा बिस्व बिजय कँह कीन्ही

भाषा और ।शैली के विषय मे भी तुलसी एक स्रष्टा है, एक अन्तर्दर्शन द्वारा सत्य और सौन्दर्य को ग्रहण और मूर्तिमान करने वाला कवि, बनावट, जोड़ गाठ करने वाला कवि नही। एक आशीर्वचन की भाँति उसकी अमृत वाणी हृदय को तृप्ति और मन को शान्त करती है परन्तु

इस नैसर्गिक रस मे कौन कौन सी अलौकिक सामग्रियाँ पडी है यह कहना कठिन है :

ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी गहि न जाइ अस अद्भुत बानी

एक बात और उसकी कविता मे है जिसकी व्याकरण, आलोचना और छन्द:शास्त्र के ग्रन्थो मे कोई चर्चा नही होती । उसकी कविता मगलमय है । वह 'सरल कवित कीरति विमल' का स्रष्टा कवि तो है ही, अपनी कविता के लिए वह यह भी चाहता है कि वह मंगलमय हो, उसके पढने वाले 'सहज बैर विसराय' एक मगलमय दैवी विधान से सयुक्त हो । सच पूछिए तो तुलसी की दृष्टि वाद्ययन्त्रो पर नही है उसका मन सगीत मे रमा है, एक ऐसे संगीत मे जिसके स्वर उसके अन्तस्तल मे बराबर गूँजते रहते है । उसने सियाराममय जीवन मे और सियाराम-मय जीवन के दाता राम के चरित मे, एक सुन्दरता देखी है और उस सुन्दरता को शब्दो मे व्यक्त करने का प्रयास उसके लिये काव्यरचना से अधिक प्रभु की आराधना है । 'कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ,' 'कवित रीति नहिं जानउँ, कवि न कहावउँ' ऐसे उद्गारों मे न विनम्रता है न गर्वोक्ति, वरन् अपने हृदय की बात है, 'मन अनुरूप राम जस गावउँ' 'चरित सुसरित मनहि अन्हवावउँ' । जिस सुन्दरता को उसने देखा है, उसका ऐसा स्पष्ट, साक्षाद् रूप उसके हृदय पर अकित है, उसका इतने समोप स उसने दर्शन पाया है कि अनुभूति की सचाई ने अभिव्यक्ति की समस्या अपने आप हल कर दी है । प्रतिभा का दीपक ले कर तुलसी जैसे सत्य और सौन्दर्य की चित्रशाला मे घूम रहा हो और अपने काव्य के आलोक से कोने कोने को आलोकित कर रहा हो :

सुन्दरता कँह सुन्दर करई, छवि गृह दीप सिखा जनु बरई